आप्तवाणी

श्रेणी-६

दादा भगवान कथित

आप्तवाणी

श्रेणी-६

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : श्री अजीत सी. पटेल
महाविदेह फाउन्डेशन
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसायटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - ३८००१४, गुजरात
फोन : (079) 27540408

प्रथम संस्करण : ३००० प्रतियाँ, मई २०१३

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : ७० रुपये

लेज़र कम्पोज़ : दादा भगवान फाउन्डेशन, अहमदाबाद

मुद्रक : महाविदेह फाउन्डेशन
पार्श्वनाथ चैम्बर्स, नई रिज़र्व बैंक के पास,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद-३८० ०१४.
फोन : (079) 27542964

समर्पण

अनादिकाल से

आत्मसुख की खोज में खोए हुए,

अतृप्ति की जलन में,

इस कलिकाल में भी

दिग्मूढ़ बनकर तप्तहृदय से भटकते हुए

मुक्तिगामी जीवों को

परम राह पर पहुँचाने के लिए,

दिन-रात झूझते हुए,

कारुण्यमूर्ति श्री 'दादा भगवान' के

विश्वकल्याणक यज्ञ में

परमॠणीय भाव से

समर्पित।

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं,
पढमं हवइ मंगलम् १
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय २
ॐ नमः शिवाय ३
जय सच्चिदानंद

‘दादा भगवान’ कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छह बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन। प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर ‘दादा भगवान’ पूर्ण रूप से प्रगट हुए । और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घण्टे में उनको विश्व दर्शन हुआ। ‘मैं कौन ? भगवान कौन ? जगत कौन चलाता है ? कर्म क्या ? मुक्ति क्या ?’ इत्यादि जगत के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सन्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करने वाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से । उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात बिना क्रम के, और क्रम अर्थात सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात लिफ्ट मार्ग। शॉर्ट कट!

आपश्री स्वयं प्रत्येक को ‘दादा भगवान कौन ?’ का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ‘‘यह दिखाई देनेवाले दादा भगवान नहीं हैं, वे तो ‘ए.एम.पटेल’ हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं, और भीतर प्रकट हुए हैं, वे ‘दादा भगवान’ हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं। सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और ‘यहाँ’ संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।’’ ‘व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं’, इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया।

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय के बाद नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवाते थे, जो नीरूमाँ के देहविलय के पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हजारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

आप्तवाणियों के लिए
परम पूज्य दादाश्री की भावना

'ये आप्तवाणियाँ एक से आठ छप गई हैं। दूसरी चौदह तक तैयार होनेवाली हैं, चौदह भाग। ये आप्तवाणियाँ हिन्दी में छप जाएँ तो सारे हिन्दुस्तान में फैल जाएँगी।'

- दादाश्री

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के श्रीमुख से वर्षों पहले निकली यह भावना अब फलित हो रही है।

आप्तवाणी-६ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। भविष्य में और भी आप्तवाणियों तथा ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होगा, इसी भावना के साथ जय सच्चिदानंद।

पाठकों से...

- 'आप्तवाणी' में मुद्रित पाठ्यसामग्री मूलतः गुजराती 'आप्तवाणी' श्रेणी-६ का हिन्दी रुपांतर है।
- इस 'आप्तवाणी' में 'आत्मा' शब्द को संस्कृत और गुजराती भाषा की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है।
- जहाँ-जहाँ 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ पाठक स्वयं का नाम समझकर पठन करें।
- 'आप्तवाणी' में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानीपुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, परंतु यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में कईं जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जब कि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिये गए हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

संपादकीय

आप्तवाणी श्रेणी-६, वह एक अनोखी प्रतिभा की धनी है। एक तरफ व्यवहार में पल-पल के प्रोब्लम्स और दूसरी तरफ स्व-मंथन से झूझता हुआ अकेला, खुद। इन दोनों की रस्साकशी में दिन-रात उत्पन्न होनेवाले संघर्ष का सोल्युशन खुद को कहाँ से मिलेगा? कौन देगा वह? वह संघर्ष ही अंदर कुरेदता रहता है, और गाड़ी यार्ड में ही घूमती रहती है!

जो कोई भी अपने जीवन के संघर्षों का हिसाब लेकर दादाश्री के पास आता है, उसे दादाश्री ऐसी कड़ी दिखा देते हैं कि जिससे वह व्यक्ति संघर्ष में से संधि प्राप्त कर लेता है!

ज्ञान, वह तो शब्द से, सत्संग से या सेवा से, जैसा है वैसा प्राप्त किया जा सके, ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञानी के अंतरआशय को समझने की दृष्टि को विकसित करने से साधा जा सकता है, जो हर किसी की अनोखी अभिव्यक्त अनुभूति है।

इन वीतराग पुरुष को, यथार्थतः पहचानना है। उन्हें किस तरह पहचाना जा सकेगा? आज तक ऐसी कोई दृष्टि, ऐसा कोई मापदंड ही नहीं मिला था कि जिससे उन्हें नापा जा सके। वह दृष्टि तो पूर्वजन्म की कमाई के रूप में, आत्मा के अनंत में से एकाध आवरण को ठेठ तक हटाकर, अंतरसूझ की निर्मल किरणों द्वारा प्राप्त की जा सकती है कि जिससे ज्ञानी की पारदर्शकता प्राप्त हो सके! क्या वह निर्मल दृष्टि अपने पास है? दृष्टि निर्मल किस तरह से होगी? आज तक जन्मोंजन्म की भावनाएँ की हुई हों कि, 'वीतराग दशा की प्राप्ति करवानेवाले ज्ञानीपुरुष को प्राप्त कर ही लेना है। उसके अलावा अन्य किसी चीज़ की कामना अब नहीं है,' तभी ज्ञानी के अंगुलीनिर्देश से ज्ञानबीज का चंद्रमा उसकी दृष्टि में खिल उठता है!

जहाँ पर पुण्य नहीं या पाप नहीं, जहाँ पवित्रता नहीं और न ही अपवित्रता है, जहाँ कोई द्वंद्व ही नहीं, जहाँ आत्मा संपूर्ण शुद्ध रूप से प्रकाशमान हुआ है, ऐसे ज्ञानी को कोई विशेषण देना खुद अपने आप के

लिए ही 'गुनहगार है' ऐसा लगता है! जिन्होंने निर्विशेष पद को प्राप्त किया है, उन्हें विशेषण से नवाज़ना अर्थात् सूर्य के प्रकाश को मोमबत्ती से अलंकृत करने जैसा है और फिर भी मन में अहम् को पोषण देते हैं कि मैंने ज्ञानी का कितना अच्छा वर्णन किया! इसे क्या कहना? क्या करना?

ज्ञानी की प्रत्येक बात मौलिक होती है। उनकी वाणी में कहीं भी शास्त्र की छाप नहीं है, अन्य उपदेशकों की छाया मात्र भी नहीं है और न ही है किसी अवतारी पुरुष की भाषा! उनके उदाहरण-सिमिलीज़ भी मौलिक हैं। अरे, उनकी सहज स्फूर्ति-मज़ाक में भी सचोट मार्मिकता और मौलिकता देखने को मिलती है। यहाँ पर तो प्रत्येक व्यक्ति को, खुद की ही भाषा में खुद अपनी ही उलझनें निकाल रहा है, ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है!

अनुभवज्ञान तो ज्ञानी के हृदय में समाया हुआ है। वह ज्ञान प्राप्त करने के लिए तो जब तृषातुर ज्ञानी के हृदयकूप में खुद का समर्पणता रूपी घड़ा डूबो देगा, तभी वह परमतृप्ति को प्राप्त करेगा!

ज्ञानी की ज्ञानवाणी, उनके अनुभव में आनेवाले कथन, और खुद की भूलों के लिए सामने से हृदयग्राही होती हुई चाबियाँ कि जो किसी को मिल पाएँ ऐसी नहीं हैं। उनकी शिशुसहज निखालिसता और निर्दोषता स्वयं आगे आकर, उनका ज्ञानी के रूप में परिचय देती है!

ज्ञानी के एक-एक शब्द से अंतर का आंगन झूम उठता है!

जो कोई भी ज्ञानी के पास खुद की अंतरव्यथा लेकर गया, ज्ञानी उसकी अंतरव्यथा जैसी है वैसी, उसी क्षण पढ़कर, उसे ऐसी सहजता से शांत कर देते हैं कि प्रश्नकर्ता को पलभर में ही हो जाता है कि ओहोहो! बस इतना ही दृष्टिभेद था मेरा? ऐसे बाहर देखने के बदले दृष्टि को १८० डिग्री घुमा दिया होता तो कभी का हल आ गया होता! परंतु १८० डिग्री तो क्या, एक डिग्री भी खुद अपने आपसे कैसे घूम सकता है? वह तो सर्वदर्शी ज्ञानी का ही काम है।

आत्मविज्ञान जहाँ संपूर्ण रूप से प्रकट हुआ है, जहाँ हमारी अनंतकाल की 'आत्मखोज' को विराम मिल सकता है, वहाँ पर उस मौके

को चूककर फिर से अनंत भटकन भोगें, वह तो कहीं पुसाता होगा?

आत्मविज्ञान ही नहीं, परंतु जहाँ पर साथ-साथ प्रकृति का साइन्स भी प्रकट हुआ है, कि जैसा कहीं भी नहीं हुआ है, वह यहाँ पर अनुभव में आता है। तो वहाँ पर उसका पूरा-पूरा लाभ उठाकर, पुरुष और प्रकृति का एक्ज़ेक्ट भेदांकन करके, प्रकृति के जाल में से क्यों नहीं छूट जाएँ? इस प्राकृत शिकंजे से कब तक दबते रहेंगे? प्रकृति से पार जाने का विज्ञान नज़दीक ही है, तो फिर खुद की प्रकृति का वर्णन ज्ञानी के सामने क्यों नहीं रखें? जिसे छूटना ही है, उसे प्रकृति की विकृति का रक्षण क्यों करना चाहिए?

ज्ञानी पूरी तरह से कब पहचाने जा सकते हैं?

जब ज्ञानी का 'ज्ञान' जैसा है वैसा, पूर्ण रूप से समझ में आ जाएगा तब! तब तो शायद पहचाननेवाला खुद ही उस रूप हो चुका होगा!

ऐसे ज्ञान के धर्ता ज्ञानी को जगत् समझे, पाए और अहोभाव में आकंठ डूब जाए, तब संसार का स्वरूप समझ में आएगा और उसमें असंगतता अनुभव में आएगी।

वीतरागों की वाणी की विशालता को कागज़ की सीमा में सीमित करने में उद्‌भव हुईं क्षतियाँ, वे संकलन की ही हैं, जिसके लिए क्षमाप्रार्थना।

- डॉ. नीरूबहन अमीन के जय सच्चिदानंद

उपोद्घात

कुदरत क्या कहती है कि तुझे मैं जो-जो देती हूँ, वह तेरी ही बुद्धि के आशय के अनुसार है। फिर उसमें तू हाय-तौबा किसलिए करता है? जो मिला उसे सुख से भोग न! बुद्धि के आशय में 'चाहे कैसी भी पत्नी होगी तो भी चलेगी, परंतु पत्नी के बिना नहीं चलेगा', ऐसा हो तो उसे चाहे कैसी भी पत्नी ही मिलेगी। फिर आज पराई स्त्री को देखकर खुद को अधूरा लगता है, परंतु संतोष तो खुद की घरवाली से ही होता है। उसमें तू चाहे जैसी धमाचौकड़ी करेगा, फिर भी तेरा कुछ भी नहीं चलेगा। इसलिए समझ जा न! समभाव से *निकाल* कर डाल न! कलह करने से तो नई प्रतिष्ठा होती रहेगी और उससे संसार कभी भी विराम नहीं पाएगा। इस संसार की भटकन से हार, थक गया, अंत में जब एक ही चीज़ का निश्चय हो जाए कि अब कुछ छुटकारा हो जाए तो अच्छा, तब उसे ज्ञानीपुरुष अवश्य मिलेंगे ही, जिनकी कृपा से खुद के स्वरूप का भान होता है, खुद का आत्मसुख चखने को मिलता है। फिर तो उसकी दृष्टि ही बदल जाती है। फिर वह दृष्टि निजघर छोड़कर बाहर नहीं भटकती। परिणाम स्वरूप नई प्रतिष्ठा खड़ी नहीं होती।

किसी को झिड़क दिया और फिर यदि मन में ऐसे भाव हों कि ऐसे किए बगैर तो सीधा नहीं होगा तो 'झिड़कना है' ऐसे कोडवर्ड से वाणी का चार्जिंग भी वैसा ही हो जाता है। उसके बजाय मन में ऐसा भाव हो कि झिड़कना गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए, तो 'झिड़कना है' का कोडवर्ड छोटा हो जाता है और वैसा ही चार्ज होता है। और 'मेरी वाणी कब सुधरेगी?' सतत वैसे भाव होते रहें तो उसका कोडवर्ड बदल जाता है। और 'मेरी वाणी से इस जगत् के किसी भी जीव को किंचित्मात्र दु:ख नहीं हो', ऐसी भावना से जो कोडवर्ड उत्पन्न होते हैं, उनमें तीर्थंकरों की देशना की वाणी का चार्जिंग होता है!

इस काल में वाणी के घाव से ही लोग दिन-रात पीड़ित रहते हैं। वहाँ पर लकड़ी के घाव नहीं होते, सामनेवाला वाक्बाण चलाए तब, 'वाणी पर है और पराधीन है', ज्ञानी का दिया हुआ वह ज्ञान हाज़िर होते ही, वहाँ

पर फिर क्या घाव लगेंगे? सामनेवाले को दु:ख हो जाए, खुद वैसी वाणी बोल ले तो वहाँ पर प्रतिक्रमण ही खुद का और परिणाम स्वरूप सामनेवाले का, सर्व प्रकार से सोल्युशन ला देता है।

इस जगत् में हर एक बात को पॉज़िटिव लेना है। नेगेटिव की तरफ मुड़े कि खुद उल्टा चलेगा और सामनेवाले को भी उल्टा चलाएगा।

व्यवहार, वह पहेलियों का संग्रहस्थान है। एक पूरी होती है और दूसरी पहेली मुँह फाड़कर खड़ी ही होती है। खुद स्वयं को पहचान ले, वहाँ पर जगत् का विराम होता है। यह जगत् दूसरों के झमेले में पड़ने के लिए नहीं है। खुद की 'सेफसाइड' कर लेने के लिए यह जगत् है।

जब तक खुद को ऐसी बिलीफ़ पड़ी हुई है कि 'मुझसे सामनेवाले को दु:ख होता है।' तब तक सामनेवाले को उन स्पंदनों के परिणाम स्वरूप दु:ख होगा ही। और ऐसे जो दिखता है, वह खुद के ही सेन्सिटिवनेस के गुण के कारण है। वह एक प्रकार का अहंकार ही है। वह अहंकार रहे तब तक सामनेवाले को दु:ख के परिणाम अनुभव होंगे ही। वह अहंकार जब विलय होगा, तब किसी को भी हमसे दु:ख परिणाम उत्पन्न होंगे ही नहीं। हम चोखे (स्वच्छ, अच्छा, शुद्ध, साफ) हो गए तो जगत् चोखा ही है।

ज्ञानी जिस मार्ग द्वारा असर से मुक्त हुए वही, उनका देखा हुआ, जाना हुआ और अनुभव किया हुआ है, यह मार्ग हमें जगत् से छूटने का रास्ता बता देता है।

आ चुकी वेदना से मुक्त होने के लिए दूसरे रंजित करनेवाले पर्यायों का सहारा लेकर जगत् दु:खमुक्त होने के लिए प्रयत्न करता है और नया जोखिम मोल लेता है। ज्ञानी इस तरह आत्मवीर्य को भुना नहीं देते, वे तो 'समभाव से *निकाल*' करते हैं।

'ज्ञानीपुरुष' को कोई चाहे जितनी गालियाँ दें फिर भी ज्ञानी उन्हें कहते हैं, 'कोई हर्ज नहीं है, तू यहाँ आता रहना। एक दिन तेरा हल आ जाएगा।' यह तो कैसी ग़ज़ब की करुणा और समता!

इस जगत् में एक क्षणभर के लिए भी अन्याय नहीं हुआ है। जगत् की कोर्टों में अन्याय होता है! फाँसी पर चढ़ाए, वह भी न्याय है और निर्दोष छोड़ दे, वह भी न्याय है। इसलिए कहीं भी शंका करने जैसा यह जगत् नहीं है। इस जगत् में ऐसा कोई जन्मा ही नहीं कि जो आपका नाम दे सके, और नाम देनेवाला होगा, वहाँ पर लाखों उपाय करने से भी कुछ होगा नहीं। इसलिए दूसरी सब चीज़ों को एक ओर रखकर आत्मा की ओर जाओ।

कौन-से ज्ञान के आधार पर किसी पर शंका कर सकते हैं? यह आँखों से देखा हुआ भी क्या गलत सिद्ध नहीं होता। शंका का कभी भी समाधान नहीं हो सकता! सच्ची बात का समाधान होता है! जहाँ पर शंका नहीं रखता, वहाँ पर शंका होती है। और जहाँ विश्वास रखता है, वहीं पर ही शंका होती है। जहाँ शंका है, वहाँ कुछ भी नहीं होता। कमरे में साँप घुसा, उसे देखा और वह ज्ञान हुआ। जब तक उसके निकल जाने का ज्ञान नहीं होगा, तब तक शंका जाएगी नहीं। नहीं तो फिर ज्ञानीपुरुष के विज्ञान के अवलंबन से वह नि:शंक बनेगा।

जो कुछ भी याद आता है, उसका मतलब यह कि उसे आपसे शिकायत है। इसलिए वहाँ तो प्रतिक्रमण कर-करके चोखा (खरा, अच्छा, शुद्ध, साफ) करना पड़ेगा।

आपने औरों को दु:ख दिया, वे यहाँ पर दु:ख में तड़पें और आप मोक्ष में जाएँ, ऐसा होगा क्या? जो स्वयं दु:खी है वही दूसरों को दु:ख देता है। दु:खी मनुष्य मोक्ष में जाएगा? इसलिए उठो, जागो, और निश्चय करो कि, 'आज से इस जगत् में किसी भी जीव को किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं देना है।' फिर मोक्ष आपके सामने आता हुआ दिखेगा। सामनेवाला दु:ख दे, वह हमें नहीं देखना है, उसे पूरी छूट है। उसकी स्वतंत्रता आप कैसे छीन सकते हैं?

एक तरफ विश्वकोर्ट में से निर्दोष छुटकारा चाहिए और दूसरी तरफ 'इसने मुझे ऐसा क्यों किया? क्यों कहा?' ऐसे दावे करते रहना है, तो कैसे

छूटा जा सकेगा? और भूलचूक से यदि दावा दायर हो जाए तो वह वापस ले लेना, प्रतिक्रमण करके ही तो न!

पत्नी के साथ का व्यवहार, उसके भीतर परमात्मा देखकर पूरा करना है, न कि साधु बन जाना है। व्यवहार, व्यवहार में बरतता है, उसमें शुद्ध स्वरूप दिखे, वही शुद्ध उपयोग है।

आपसे होनेवाले असंख्य दोष, क्या ज्ञानी की दृष्टि में नहीं आते? आते तो हैं ही, परंतु उनका उपयोग शुद्धात्मा की तरफ होता है। इसलिए ज्ञानी को राग-द्वेष के परिणाम उत्पन्न ही नहीं होते।

अपने खुद के परिणाम बदलते हैं, इसीलिए सामनेवाले के परिणाम बिगड़ते हैं। ज्ञानी के परिणाम किसी भी संयोग में नहीं बदलते।

सामनेवाले को सुधारना हो तो सामनेवाला चाहे जितना दुःख दे, फिर भी उसके लिए एक भी उल्टा विचार नहीं आए, तो वह सुधरेगा ही। यही एक, सुधरने का और परिणाम स्वरूप सामनेवाला सुधरे, ऐसा रास्ता है!

सामनेवाले को 'यह तेरी भूल है', ऐसा मुँह पर कह दें, तब वह एक्सेप्ट नहीं करेगा। बल्कि भूल को ढँकेगा। उसे कहें, 'तू ऐसा करना।' तब वह कुछ अलग ही करेगा। उसके बदले उसे यदि ऐसा कहा हो कि 'ऐसा करने से तुझे क्या फायदा होगा?' तो वह खुद ही वैसा करना छोड़ देगा।

अर्थी में कौन साथ देता है? बहते हुए पानी में कौन से बुलबुले को पकड़कर रखा जा सकता है? कौन किसका साथ देता है?

खुद को भान नहीं कि जिनके लिए संघर्षण होता है, वह वस्तु खुद की है या पराई? यह सब मैं कर रहा हूँ या कोई मुझसे करवा रहा है? देह की क़ीमत पर भी संघर्ष तो होना ही नहीं चाहिए! भीतर भाव बिगड़ें, अभाव हो या थोड़ी सी आँख भी ऊँची हो जाए, तो वही संघर्ष की शुरूआत है। खुद से दूसरा टकराए परंतु खुद किसी से भी नहीं टकराए, तो वैसे संघर्ष होने के संयोगों में घर्षण होना रुक जाता है और बल्कि कॉमनसेन्स प्रकट हो जाता है, नहीं तो अजागृति से उसी घर्षण में अनंत आत्मशक्तियाँ

आवृत हो जाती हैं। संसार में भी सेफ्टी चाहिए और मोक्ष का मार्ग भी पूरा करना है, फिर घर्षण को स्कोप क्यों दें?

जिस ज्ञान के कारण ज्ञानी जगत्‌जीत बने हैं, वह ज्ञान कभी सुना होगा तो काम आएगा। अंत में जगत्‌जीत ही बनना है न!

जगत् में आप सभी को पसंद आएँगे तभी काम होगा। जगत् को यदि आप पसंद नहीं आए, तो वह किसकी भूल? अपने साथ सामनेवाले को मतभेद हो जाए तो वह अपनी ही भूल है। ज्ञानी तो वहाँ पर बुद्धिकला और ज्ञानकला से मतभेद होने से पहले ही टाल देते हैं।

'मेरा स्वरूप शुद्धात्मा है' ऐसा भान होने के बाद 'अनुकूल-प्रतिकूल' के द्वंद्व नहीं रहते। जब तक विनाशी स्वरूप में वास था तब तक 'अनुकूल-प्रतिकूल' रहता था, जो निरा संसार ही है। 'मीठा' जब तक 'मीठा' लगता है, तभी तक 'कड़वा' 'कड़वा' लगता है। 'मीठे' का वेदन नहीं करें, तो 'कड़वे' में वेदन नहीं रहता। 'मीठे' में जानपना रहे तो 'कड़वे' में जानपना आसानी से रहेगा, यह तो 'मीठा' भोगने की पुरानी आदतें पड़ी हुई है, इसलिए 'कड़वा' कलेजे को खोखला कर देता है।

अनुकूल परिस्थितियों में उत्पन्न होनेवाले कषाय ठंडकवाले होते हैं, मीठे होते हैं। वे राग कषाय-लोभ और कपटवाले कषाय हैं, उनकी गाँठें टूटती नहीं। वे कषाय रस गारवता में डूबो देते हैं और अनंत जन्मों तक भटका देते हैं।

जो दान देता है, उसे लोग वाह-वाह का भोजन खिलाए बगैर छोड़ेंगे ही नहीं। वाह-वाह की भूखवाला तो लोगों के फेंके हुए वाह-वाह के टुकड़े धूल में से बीन-बीनकर खा जाता है। जब कि ज्ञानी तो, उन्हें बत्तीस प्रकार का भोजन परोसें तो भी उसे 'स्वीकार' नहीं करते, फिर रोग पैठने का डर ही कहाँ रहा?

कोई भी काम करें, तो उसमें काम की क़ीमत नहीं है। परंतु उसमें यदि राग-द्वेष हों तो उससे अगला जन्म खड़ा (सर्जित) हो जाता है। और राग-द्वेष नहीं हों तो अगले जन्म की ज़िम्मेदारी नहीं रहती।

जब दूसरों का एक भी दोष नहीं दिखेगा और खुद का एक-एक दोष दिखेगा, तब छूटा जा सकेगा। 'खुद के दोषों के कारण मैं बँधा हुआ हूँ' जब ऐसी दृष्टि हो जाएगी, तब सामनेवाले के दोष दिखने बंद हो जाएँगे। इसलिए मात्र दृष्टि ही बदल लेनी है। हरकोई अपने-अपने कर्मों के अधीन भटक रहा है, उसमें उसका क्या दोष? व्यवहार ऐसा नहीं कहता कि सामनेवाले के दोष देखें! व्यवहार में तो 'ज्ञानीपुरुष' भी रहते ही हैं न! फिर भी वे जगत् को निर्दोष ही निहारते हैं न!

चोर चोरी करता है, वह उसके कर्म के उदय से करता है। उसमें उसे चोर कहने का, हमें क्या अधिकार है? चोर में परमात्मा देखें तो चोर गुनहगार नहीं दिखेगा। भगवान महावीर ने पूरे जगत् को निर्दोष देखा! वह क्या इसी दृष्टि के आधार पर ही तो नहीं?

भयंकर अपमान के उदय में अंत:स्करण तपकर लाल हो जाए, तब उस तप को अंत तक तन्मयाकार हुए बिना समतापूर्वक 'देखता' रहे तो वह तप मोक्ष में ले जाएगा!

तप तो वह कहलाता है कि जिसकी किसी को गंध भी नहीं आए। अपने तप को दूसरे जान जाएँ, दूसरे लोग आश्वासन दें और हम उसे स्वीकार लें तो, उस तप में से 'कमीशन' दूसरे खा जाएँगे।

बाह्य संयोगों का असर अंत:स्करण में सर्वप्रथम बुद्धि को होता है। बुद्धि में से फिर वह मन को पहुँचता है। बुद्धि यदि बीच में स्वीकार करनेवाली नहीं रहे तो फिर मन भी नहीं पकड़ेगा। परंतु बुद्धि स्वीकारती है, इसलिए मन पकड़ता है और फिर मन खलबली मचा देता है।

बुद्धि की दख़ल बंद किस तरह हो? बुद्धि के बखेड़े सुनना बंद कर दें, अपमान करे, तब बुद्धि बंद। और बुद्धि को मान दें, उसे एक्सेप्ट करें, उसकी सलाह मानें तो बुद्धि चलती रहेगी, फुल फॉर्म में!

जिससे अपने मन में बवंडर उठे हो, उस बात को बंद कर देना। मन में बवंडर उठे तो फिर अंदर अपना सुख आवृत हो जाता है। फिर असुख लगता है, फिर दु:ख होता है, जलन होती है और घबराहट होती

है और अंत में चिंता होती है। परंतु वह अंकुर उखाड़ दें तो वृक्ष बनने से रुक जाएगा!

खुद के हिताहित का भान नहीं रहा, इसलिए मन का जैसा-तैसा उपयोग हुआ, और मन आउट ऑफ कंट्रोल हो गया! इस प्रकार मन की चंचलता बढ़ी, उसमें किसका दोष? जब तक अज्ञान है तब तक मन पर अहंकार का नियंत्रण है, इस वजह से मन पर कंट्रोल नहीं है। आत्माज्ञान होने से 'खुद का' नियंत्रण आता है और पुरुषार्थ प्रकट होता है और मन वश में हो जाता है।

'देखना और जानना', दोनों प्रत्येक पल में साथ हों तो, वहाँ परमानंद के अलावा और क्या हो सकता है? स्वयं सबकुछ जानता ही है कि मन में ऐसा हुआ, वैसा हुआ, वाणी ऐसी बोली गई, वर्तन ऐसा हो गया, परंतु पद्धतिपूर्वक नहीं देखते कि किसे हुआ और हम खुद कौन? और उससे परमानंद का आस्वाद रुक जाता है।

खुद के बोल से 'किसका किसका, किस प्रकार प्रमाण *दुभता है*' उसे देखना, वही कहलाता है, वाणी पर उपयोग!

अपनी वाणी सामनेवाले को चोट पहुँचाती है, क्यों? वाणी जो शब्द के रूप में है, वह चोट नहीं पहुँचाती, परंतु उसके पीछे जो अहंकार है उसकी आँच लगती है। 'मैं सच्चा हूँ' वही अहंकार का रक्षण। अहंकार का रक्षण नहीं करना चाहिए, अहंकार खुद ही रक्षण कर ले ऐसा है!

एक भी शब्द का उपयोग मज़ाक उड़ाने के लिए नहीं करना चाहिए। एक भी शब्द का उपयोग गलत स्वार्थ के लिए या लूटने के लिए नहीं करना चाहिए। यदि शब्द का दुरुपयोग नहीं किया हो, मान की चटनी खाने के लिए शब्दप्रयोग नहीं हुए हों, तब वचनबल उत्पन्न होता है।

'इसने मेरा बिगाड़ा' ऐसा थोड़ा सा भी भाव हो, तो उसके साथ पूरा ही दुःख देनेवाला वाणी का व्यवहार उत्पन्न हो जाता है। जिसकी वाणी सुधरी, उसका संसार सुधर गया। इस दुनिया में किसी के पास आपका कुछ भी बिगाड़ने की शक्ति ही नहीं है।

धमकाने से सामनेवाला कभी भी वश में नहीं हो सकता। वह तो खुला अहंकार है। जगत् निर्अहंकारी के सामने झुकता है!

अपनी बात हर किसी को फिट हो जाए, वह समझदारी कहलाती है। टकराव हुआ, वहाँ पर नासमझी की काई फैल गई है, ऐसा समझना। नासमझी पैदा होने का रूटकॉज़ अहंकार है और अहंकार भूत की तरह रात-दिन परेशान करता रहता है, बाह्य कोई निमित्त नहीं हो फिर भी! इसके बजाय 'मैं कुछ भी नहीं जानता' वह भाव आया तो पूरा हो गया।

अच्छा करवाता है वह भी अहंकार, गलत करवाता है वह भी अहंकार। अच्छा करवानेवाला अहंकार, वह कब पागलपन करके गलत करवाएगा, उसकी क्या गारन्टी?

बुद्धि के अभाववाले से 'ऐसा करूँ या नहीं करूँ' की द्विधा में डिसीज़न नहीं लिया जा सकता, ऐसे संयोगों में क्या करना चाहिए? 'करने' की तरफ का अंदर से ज़ोर अधिक है या 'नहीं करने' की तरफ का ज़ोर अधिक है, वह देख लेना। यदि 'नहीं करने' की तरफ का ज़ोर अधिक है तो उस पलड़े में बैठ जाना। फिर 'करने' का होगा तो व्यवस्थित वापस उसे मोड़ेगा।

जल्दबाज़ी करना, वह सिंगल गुनाह है और जल्दबाज़ी नहीं करना, वह डबल गुनाह कहलाता है। इसलिए जल्दी से धीरे चलो।

राग करे, वह सिंगल गुनाह है और निरागी बन जाए, वह डबल गुनाह है। संसार व्यवहार में 'मैं आत्मा हूँ, मुझे क्या लेना-देना?' ऐसा करके बेटे की फ़ीस नहीं दे तो वह भयंकर गुनाह है। वहाँ निःस्पृह नहीं होना है। नाटकीय रूप से रहकर *निकाल* करना है।

सामनेवाले को खुश करना है, उसके रागी नहीं बनना है। पुलिसवाले को खुश करते हुए क्या उसके रागी बनते हैं?

घर में, व्यवसाय में, कहीं भी कम से कम टकराव खड़ा करे, उस प्रकार से व्यवहार करे, वह असल बुद्धिशाली!

आपसे कोई भी घबरा जाए तो उसमें आपका क्या बड़प्पन? आपके धमकाने से सामनेवाले में परिवर्तन हो तो नुकसान उठाकर भी आपका धमकाना काम का!

आपमें जब कपट नहीं रहेगा, तब आपके साथ कोई भी सामने से कपट करने नहीं आएगा। जगत् खुद अपना ही प्रतिबिंब है। अपना ही फोटो है यह सारा! हमारे खुद के निष्कपट भाव का प्रभाव ही सामनेवाले को कपट रहित कर सकता है!

'सामनेवाले का समाधान करना, वह अपनी ही ज़िम्मेदारी है' ऐसा जब भीतर फिट हो जाएगा, तब कोई भी बाह्य प्रयत्न किए बिना स्वयं की सूझ से आज नहीं तो कल, परंतु सामनेवाले को समाधान होगा ही। खुद बदलना है, न कि सामनेवाला बदले उसकी राह देखते-देखते 'क्यू' में बैठे रहना है।

खुद आज शुद्ध हुआ, अहंकार रहित हुआ, परंतु अभी तक के पिछले अहंकार के प्रतिस्पंदन लोग किस तरह एकदम से भूल जाएँगे? वे प्रतिस्पंदन तो रहेंगे ही। जब तक प्रतिस्पंदन स्वयं बंद नहीं हो जाएँ, तब तक इंतज़ार करने के अलावा चारा नहीं है।

दर्पण तो, जो कोई उसके सामने चेहरा रखे, उसका प्रतिबिंब दिखाता है। ऐसा, दर्पण जैसा 'क्लीयर' हो जाना है। *अटकण* के कारण दर्पण जैसा क्लीयरेन्स नहीं हो पाता। इसलिए लोगों को आपकी तरफ अट्रैक्शन नहीं होता। अट्रैक्शन होने के बाद तो उसका एक-एक शब्द ब्रह्मवाक्य बन जाएगा।

अरे, इस *अटकण* के कारण तो आपनी सच्ची बात भी लोगों को अच्छी नहीं लगती। उसके कारण मुक्त हास्य भी नहीं निकलता और वाणी में भी खिंचाव रहता है!

अनंत जन्मों की भटकन किसलिए हुई? *अटकण* से! आत्मसुख चखा नहीं, इसलिए विषयसुख की *अटकण* पड़ गई! 'ज्ञानीपुरुष' की कृपा और खुद का ज़बरदस्त पराक्रमभाव, उससे *अटकण* टूटती है। *अटकण*

टूटे तो अनंत समाधिसुख प्रकट होते हैं और *अटकण* को नहीं उखाड़ेंगे तो, वह तो ज्ञान को भी और ज्ञानी से भी आपको उखाड़कर अलग कर देगी।

आप पर जिसकी छाया पड़े उसका रोग आपमें आए बगैर रहेगा ही नहीं। सामनेवाले के चाहे जितने सुंदर गुण दिखें, परंतु अंत में तो वे प्राकृतगुण ही हैं न? प्राकृत गुण विकृत हुए बगैर नहीं रहेंगे? सुंदर हाफूज़ आम हो, परंतु वह सड़कर दुर्गंध देगा न?

जहाँ-जहाँ विषयसंबंधी आकर्षण खड़ा हो, उसका तुरंत ही प्रतिक्रमण होना चाहिए, और उसके शुद्धात्मा के पास माँग करना कि मुझे इस अब्रह्मचर्य के विषय में से मुक्त करो। स्त्री-पुरुष के विषय से बैर खड़ा होता है। वह बैर ही कितने जन्म बिगाड़ देता है।

प्रतिक्रमण से सर्वप्रथम तो खुद का अतिक्रमण रुकता है और उल्टे भाव टूटते हैं। सामनेवाले को तो वह बाद में पहुँचता है और नहीं पहुँचे, तब भी वह नहीं देखना है। यह तो अपने खुद के लिए ही है सारा!

बाघ के प्रतिक्रमण हों, तो वह बाघ भी अपने कहे अनुसार करेगा। बाघ में और मनुष्य में कुछ भी फर्क नहीं। अपने स्पंदनों के फर्क के कारण बाघ पर उसका असर होता है। बाघ हिंसक है, ऐसा जब तक आपके ध्यान में है, बिलीफ़ में है, तब तक वह हिंसक ही रहेगा और बाघ 'शुद्धात्मा' है, ऐसा ध्यान रहे तो वह 'शुद्धात्मा' ही है!

खुद की तरफ से छेड़खानी बंद हुई, खुद के स्पंदन रुके, तो सामने कोई भी स्पंदन करनेवाला नहीं मिलेगा और पूर्वाभ्यास से स्पंदन फिंक जाएँ तो प्रतिक्रमण द्वारा धो डालना, वही पुरुषार्थ है!

कर्मरूपी पच्चड़ को फ्रेक्चर किस तरह किया जाए? 'फाइलों का समभाव से *निकाल*' करके। हमें फाइलों को देखते ही मन में पक्का करना चाहिए कि 'मुझे समभाव से *निकाल* करना ही है।' तो उस अनुसार सबकुछ प्रबंधित हो ही जाएगा और शायद कभी *चीकणी फाइल* हो, वहाँ ऐसा करने के बाद भी *निकाल* नहीं हो पाए, तो फिर आप गुनहगार नहीं हैं, व्यवस्थित गुनहगार है।

चीकणी फाइल *चीकणी* किसलिए है? खुद ने ही *चीकणी* की है इसलिए। *चीकणी* फाइल की चिपचिपाहट देखने से बदले खुद की प्रकृति की चिपचिपाहट दिखेगी, तब फाइल को देखने की दृष्टि ही बदल जाएगी!

खुद की 'प्रकृति का फोटो' पुरुष हो जाने के बाद ही खिंचता है। अहंकाररूपी केमरे से कहीं फोटो खिंचते हैं? उसके लिए तो मौलिक केमरा चाहिए।

जो उलझ जाता है, वह अपना स्वरूप नहीं है। 'यह मेरा है' ऐसा माना जाता है, वही भूल करवाता है। प्रकृति को सिर्फ देखना ही है। 'अच्छी-बुरी' नहीं कहना है। प्रकृति लाख लेप चढ़ाने जाए, फिर भी खुद का परमात्मस्वरूप लेपायमान नहीं हो सकता। आत्मा की शुद्धता को जगत् का कोई भी प्रयोग अशुद्धि में परिणामित कर ही नहीं सकता और वही अपना खुद का स्वरूप है!

प्रकृति का हिसाब चुकाने के लिए 'हमें' कुछ भी नहीं करना है। वे हिसाब तो अपने आप ही पूरे होते रहेंगे। 'हमें' तो 'देखते रहना' है कि कितना हिसाब बाकी रहा!

प्रकृति की सभी कमियाँ अपने आप ही पूरी हो जाएँगी, 'खुद' यदि दख़ल नहीं करे, तो! प्रकृति खुद की कमी खुद ही पूरी कर देती है। उसमें 'मैं कर रहा हूँ' कहता है, इसलिए डखो (दख़ल, हस्तक्षेप) हो जाती है।

यह 'अक्रम विज्ञान' पूरी दुनिया के सायक्लोन को खत्म कर दे, वैसा है, परंतु यदि हम लोग उसमें स्थिर रहें तो!

- डॉ. नीरूबहन अमीन

अनुक्रमणिका

❖ ❖ ❖ ❖ ❖

आप्तवाणी
श्रेणी – ६

[१]
प्रतिष्ठा का पुतला

'मैं चंदूभाई हूँ', 'यह मैंने किया', 'वह मैंने किया' ऐसी प्रतिष्ठा की कि तुरंत ही फिर से नई मूर्ति खड़ी हो जाती है और वह मूर्ति फिर फल देती है। जिस प्रकार हम पत्थर की मूर्ति में प्रतिष्ठा करें और वह फल देने लग जाती है, उसी प्रकार हम यह प्रतिष्ठा खड़ी करते हैं। जिस रूप से प्रतिष्ठा करते हैं, उसी रूप का 'प्रतिष्ठित आत्मा' बनता है। यह पुराना 'प्रतिष्ठित आत्मा' नई प्रतिष्ठा खड़ी करता है। आज जो 'चंदूभाई' है, वह पूरा ही पुराना 'प्रतिष्ठित आत्मा' है, वह फिर वापस प्रतिष्ठा करता रहता है कि 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ', ऐसी सब प्रतिष्ठा करता है, यानी वापस आगे चला! और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कहा तो प्रतिष्ठा बंद हो गई। इसलिए हम कहते हैं कि शुद्धात्मपद प्राप्त हो जाने के बाद कर्म बंधने बंद हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा स्पष्ट विवरण किसीने नहीं किया है?

दादाश्री : विवरण होगा, तभी हल आएगा, आत्मज्ञान होना चाहिए। आत्मज्ञान नहीं है, वर्ना वह तो आरपार दिखा सकता है। इसलिए हमने 'प्रतिष्ठित आत्मा' (शब्द) दिया, वह कभी भी किसीने दिया ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : यानी वह प्रतिष्ठा के अनुसार सारी क्रियाएँ करता है, काम करता रहता है?

दादाश्री : हाँ, वह भी जैसी प्रतिष्ठा की हो, वैसा। जैसे मूर्ति में प्रतिष्ठा

करते हैं और मूर्ति फल देती रहती है, वैसे ही ये प्रतिष्ठा करता है, उसके फलस्वरूप बच्चे पढ़ते-करते हैं, पहले नंबर से पास भी होते हैं।

बुद्धि का आशय

प्रश्नकर्ता : इसमें खुद का कोई पुरुषार्थ नहीं है?

दादाश्री : नहीं, वह तो खुद प्रतिष्ठा करता जाता है और मूर्ति बनती जाती है और फिर, उसकी बुद्धि के आशय में हो, उस अनुसार उसका 'फिटिंग' होता जाता है। बुद्धि के आशय में क्या है? तब कहे कि, मुझे तो बस पढ़ाई में ही आगे बढ़ना है, यदि ऐसा बुद्धि का आशय हो तो वैसा ही फल देगा। यदि किसी को ऐसा हो कि, मुझे भक्ति में आगे बढ़ना है, तो वैसा फल आएगा।

यदि बुद्धि के आशय में ऐसा हो कि 'मुझे झोंपड़ी में ही रास आएगा', तो फिर करोड़ रुपये हों, फिर भी उसे झोंपड़ी के बगैर अच्छा नहीं लगेगा और किसी के बुद्धि के आशय में, 'मुझे बंगले के बिना अच्छा नहीं लगेगा', ऐसा हो, तो उस पर यदि पाँच करोड़ रुपये का उधार हो, फिर भी बंगले में ही रहना अच्छा लगेगा। और इस भक्त बेचारे को क्या होता है कि, मुझे तो जैसा हो वैसा चलेगा। तब उसे जैसा हो वैसा, लेकिन सबकुछ मिल जाता है!

प्रश्नकर्ता : यानी वहाँ भाव काम करते हैं?

दादाश्री : नहीं, वह बुद्धि का आशय है, भाव नहीं करना पड़ता। बुद्धि के आशय के अनुसार ही भीतर सबकुछ सेटलमेन्ट हो चुका होता है। खुद प्रतिष्ठा करके पुतला तैयार करता है और फिर बुद्धि के आशय के अनुसार सेटलमेन्ट होता है।

प्रश्नकर्ता : बंगले के बगैर अच्छा नहीं लगेगा, उसे बुद्धि का आशय कहा, तो इसमें फिर प्रतिष्ठा कौन सी?

दादाश्री : प्रतिष्ठा तो आप अपने आप करते हो कि 'मैं चंदूभाई हूँ, यह मैंने किया, इसका ससुर हूँ, इसका मामा हूँ' ऐसा करके पुतला

तैयार करते हैं। फिर भाव क्या-क्या होते हैं? तब कहे, 'बुद्धि के आशय के अनुसार सारा चित्रण हो जाता है। बुद्धि के आशय के बाद भीतर परिवर्तन होता रहता है।'

प्रश्नकर्ता : प्रतिष्ठा कौन करता है?

दादाश्री : वह अहंकार करता है कि, 'यह मैं हूँ, मैं ही चंदूभाई हूँ और यह मेरा चाचा है, मामा है।'

प्रश्नकर्ता : यह शराब पीता है, यह पूजा करता है, वह क्या है?

दादाश्री : शराब पीता है, वह तो भीतर भाव किए हों न कि शराब के बिना तो चलेगा ही नहीं, इसलिए शराब पीता है और फिर वह नहीं छूटती, यानी प्रतिष्ठा नहीं करता परंतु ऐसा है कि बुद्धि का आशय बोलते समय कैसा होता है, वह अंदर प्रिन्ट हो जाता है। बुद्धि के आशय को समझना बहुत ही ज़रूरी है, हमें यहाँ दोनों खत्म हो जाते हैं। यहाँ तो प्रतिष्ठा होनी ही बंद हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का आशय ज़रा विशेष रूप से समझाइए न, दादा!

दादाश्री : बुद्धि का आशय अर्थात् 'मुझे बस चोरी करके ही चलाना है, काला बाज़ार करके ही चलाना है।' कोई कहेगा, 'मुझे चोरी कभी भी नहीं करनी है।' कोई कहता है, 'मुझे ऐसा भोगना है।' तो भोगने के लिए एकांतवाली जगह भी तैयार कर देता है। उसमें फिर पाप-पुण्य काम करता है। जैसा सबकुछ भोगने की इच्छा की होगी, वैसा सबकुछ उसे मिल भी जाता है। मानने में नहीं आए, वैसा सबकुछ भी उसे मिल जाता है। क्योंकि उसके बुद्धि के आशय में था। और यदि पुण्य होगा तो कोई उसे पकड़ भी नहीं सकेगा। चाहे जितने पेहरे लगाए हों, तब भी! और पुण्य पूरा हो जाए तब यों ही पकड़ा जाता है। छोटा बच्चा भी उसे ढूँढ निकालता है कि 'ऐसा घोटाला है इधर!'

बुद्धि का आशय और भाव

प्रश्नकर्ता : तो इसमें भोगने का जो नक्की करते हैं, वहाँ क्या बुद्धि का आशय काम करता है?

दादाश्री : हाँ, बुद्धि के आशय के अनुसार काम करता है! दुनिया में नहीं हो वैसा भी भोगना पड़ता है। यदि भोगने का भाव किया हो तो! और उस समय वापस वैसा मंजूर भी हो जाता है, क्योंकि बुद्धि के आशय को फिर पुण्य का आधार है।

इसलिए 'मैं यह हूँ', 'यह मेरा है' ऐसी प्रतिष्ठा से पूरे जन्म की 'बॉडी', यह मूर्ति उत्पन्न होती है और भाव करते समय बुद्धि का आशय कैसा था, किस-किसमें था, वह सब प्रिन्ट हो जाता है। हरएक को बुद्धि का आशय होता है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का आशय तो हमेशा बदलता रहता है?

दादाश्री : हाँ, बुद्धि का आशय बदलता है, उस अनुसार सबकुछ वहाँ पर प्रिन्ट होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : भाव और बुद्धि के आशय में क्या फर्क है?

दादाश्री : भाव, वह तो यहाँ पर लोगों को ऐसे काँच डाल देता है। उसके बाद उसकी आँखें बहुत अच्छी हों, उसके बावजूद भी जो दिखता है वह भाव कहलाता है और वह वैसे भावों के अनुसार चलता रहता है। इसलिए फिर उस पर से यह सारा संसार खड़ा हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : काँच में से जो दिखता है वह भाव है, तो काँच, वह द्रव्यकर्म है?

दादाश्री : हाँ, जो काँच है वह द्रव्यकर्म है। वे जो काँच आपको लगाए हैं, वैसे हर किसी के अलग-अलग होते हैं। द्रव्यकर्म हर एक का अलग-अलग होता है। लोग द्रव्यकर्म को क्या समझते हैं कि जो दिखा है, जैसा दिखा, वह भावकर्म है, उस भावकर्म का जो फल आया, उसे द्रव्यकर्म कहते हैं। भावकर्म से यह क्रोधी हो गया, उसे वे द्रव्यकर्म कहते हैं। द्रव्यकर्म की बात बहुत समझने जैसी है, और बुद्धि का आशय अलग चीज़ है।

प्रश्नकर्ता : परंतु बुद्धि का आशय और भाव में क्या फर्क है?

दादाश्री : भावकर्म सभी को होते हैं, लेकिन बुद्धि के आशय हर एक के अलग-अलग होते हैं। वह क्षेत्र के अधीन है। यह काँच, फिर इस काँच में से जो दिखता है वह भाव है, फिर क्षेत्र, और काल के आधार पर बुद्धि का आशय होता है। हालांकि काँच की इतनी अधिक खास वेल्यु नहीं है। यह काँच इस तरह उत्पन्न होता है कि इस भव में जो कुछ भी किया, कि उसमें लोगों को सुखदायी हों ऐसे काम किए हों तो काँच वैसे ही निर्मल होते हैं, जिससे उसे अच्छा दिखता है। ठोकरें बहुत नहीं लगतीं, और जिसने लोगों को दु:खदायी हो पड़ें, ऐसे काम किए हों, उसके काँच तो इतने अधिक मैले होते हैं, कि उसे दिन में भी सच्ची वस्तु नहीं दिखती, और फिर उस पर बहुत दु:ख पड़ते हैं। यानी काँच का आप किस तरह उपयोग करते हो उस पर आधारित है। पूरी ज़िंदगी एक ही काँच के आधार पर चलाना होता है। मूल क्या है? तब कहें कि, ज्ञान खुद का है ही, परंतु उस ज्ञान पर काँच है। उस काँच में से देखकर सबकुछ चलाना है। इस बैल की आँखों पर पट्टी बांध देते हैं, उस जैसा यह बांधते हैं। अब उसमें से थोड़ा खुल जाए तो उतना-उतना दिखता है और चिंता, *उपाधि* (बाहर से आनेवाले दु:ख) करता रहता है। खुद के आशय के अनुसार उसे सबकुछ मिलता रहता है। वह खुद के आशय को यदि समझ जाए तो बहुत हो गया, बुद्धि का आशय तुझे समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : व्यवहार कैसा होना चाहिए, वह निश्चित करने के लिए जो निश्चित होता है, वहाँ बुद्धि का आशय है?

दादाश्री : मुझे किसमें सुख लगेगा? ऐसा ढूँढता रहता है। अत: फिर वह विषय में सुख मानने लग जाता है। फिर वापस ऐसा भाव करता है कि बंगला नहीं हो तो चलेगा, अपने पास तो एकाध झोंपड़ा हो तब भी चलेगा। इसलिए फिर उसे दूसरे जन्म में झोंपड़ा मिलेगा! हरएक को अलग-अलग मकानों में अच्छा लगता होगा न, रात को नींद आती होगी न?

प्रश्नकर्ता : अच्छा लगता है।

दादाश्री : किसलिए मुझे ऐसा और उसे ऐसा, पूरी रात ऐसा नहीं

होता रहता? नहीं होता। उसमें संतोष किसलिए होता है? 'हम तो अपने घर पर जाएँ तभी नींद आती है' वह बुद्धि का आशय है। खुद के घर पर भले ही झोंपड़ी हो! हम उससे कहे, 'अरे, तेरी खाट तो इतनी ढीली हो गई है।' फिर भी वह कहेगा, 'नहीं मुझे तो उसमें ही नींद आएगी। मुझे इस बंगले में नींद नहीं आएगी।' इन आदिवासियों को रोज़ खीर-पूड़ी खिलाएँ तो उन्हें वह पसंद नहीं आएगा। दो-तीन दिनों में ही चुपचाप कहे बिना चला जाएगा। उसे ऐसा लगेगा कि मैं कहाँ यहाँ पर फँस गया।

कुछ लोग पैसा नहीं हो, फिर भी क़ीमती कपड़े पहनते हैं, जबकि कुछ लोग तो खूब पैसे हों फिर भी.... वह बुद्धि का आशय!

फादर गालियाँ देता हो, फिर भी उसे वही फादर अच्छे लगते हैं! मदर गालियाँ देती हो फिर भी वही मदर अच्छी लगती है! फादर को वही बेटा अच्छा लगता है। पूरी ज़िंदगी बेटे से बात नहीं करता, लेकिन मरते समय सारा बच्चे को ही दे देता है। अरे! पूरी ज़िंदगी भतीजे से चाकरी करवाई, लेकिन दे दिया बेटे को? यह बुद्धि का आशय कहलाता है!

दादा के भी बेटे और बेटी गुज़र गए। तो उनके बुद्धि के आशय में ऐसा था कि यह क्या झंझट, यह क्या परेशानी! बुद्धि के आशय में नौकरी करना नहीं था, यही कि, 'बस, नौकरी नहीं करूँगा।' तो नौकरी नहीं करनी पड़ी। यानी बुद्धि के आशय के अनुसार सबकुछ होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : यानी जो व्यवहार, जो निमित्त, जो संयोग मिलते हैं उनके पीछे आशय काम करता है?

दादाश्री : आशय के बिना कुछ भी मिलता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अब जो बुद्धि का आशय है, वह पिछले जन्म की चिंतना का परिणाम है?

दादाश्री : चिंतना नहीं, आशय, बुद्धि का आशय ही है। पिछले जन्म के बुद्धि के आशय थे, उनका यह फल आया। बुद्धि का आशय हो, तो उसे सट्टेबाज़ मिल जाता है। बाहर निकले कि उसे रेसवाला मिल जाता

है। खुद ने घर से भले ही कितना भी नक्की किया हो कि रेस में जाना ही नहीं है, फिर भी चला जाता है। वह बुद्धि का आशय है।

हम लोगों ने पिछले जन्म में बुद्धि का आशय किया होगा, उसका हमें खुद को अभी पता चलता है कि यह सट्टाबाज़ार मुझे छू ही नहीं सकता। नालायक व्यक्ति मुझे मिलेगा ही नहीं।

बुद्धि के आशय का आधार

यह सब बुद्धि के आशय के आधार पर है और बुद्धि का आशय है, वह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अधीन है। उसमें खुद का कर्तापन नहीं है, कर्तापन माना जाता है, वह भ्रांति है और उस भ्रांति से फिर से नया उत्पन्न होता है। वह छूटता ही नहीं कभी भी! बीज में से वृक्ष और वृक्ष में से बीज, ऐसे चलता ही रहता है! एकबार फल को खाकर बीज का नाश किया जाए तो फिर वह पेड़ उगेगा नहीं। बीज, वह अहंकार है। अहंकार का नाश कर दो। जो फल आए हैं उन्हें खा ले, परंतु बीज का नाश कर दो। हम इसलिए ही कहते हैं कि 'फाइलें' आएँ उन्हें भोगो, उसका समभाव से *निकाल* (निपटारा) करो। आम के ऊपर का गर्भ खा जाओ और बीज का नाश कर दो। आम का गर्भ आपकी बुद्धि का आशय है, उसमें चलेगा ही नहीं। वह तो खा ही लेना पड़ेगा। परंतु 'यह अच्छा है या यह खराब है', ऐसा मत बोलना। 'समभाव से *निकाल*' करना।

अब कहते हैं कि आत्मा ने विभाव किया, कल्पना की। अरे, कल्पना की हो तो हमेशा वैसी ही आदत होनी चाहिए उसे। इसलिए हम कहते हैं न कि साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स मिल गए, इसलिए यह विभाव उत्पन्न हुआ। 'साइन्टिफिक' अर्थात् गुह्य। गुह्य का अर्थ क्या? कि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव वह सब इकट्ठा होने से फिर यह उत्पन्न होता है। आँख पर पट्टी बाँधने के बाद जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे विभाव हैं और उसे भावकर्म कहते हैं। हम उसे ऐसा कहते हैं कि विशेष परिणाम खड़े हुए।

दो वस्तुओं के सामिप्यभाव से विशेष परिणाम, खुद के गुणधर्म खुद

के पास रखकर, विशेष परिणाम उत्पन्न होते हैं। जब तक इतनी बड़ी ककड़ियाँ नहीं मिलें, तब तक अंदर भाव उत्पन्न होता है कोई? परंतु मिल जाएँ तो विशेष परिणाम खड़े होते हैं कि बहुत अच्छी ककड़ी है! परंतु नहीं देखें और नहीं मिलें तो कुछ भी नहीं! तब कोई कहे, 'इन लोगों के लिए एकदम एकांत ढूँढ निकालो कि जहाँ इन्हें किसी व्यक्ति से मिलने ही नहीं दें, वहाँ पर रखें तो?' परंतु वैसा नहीं चलेगा! उसकी जो स्थापना हो चुकी है, प्रतिष्ठा हो चुकी है न, वह फूटेगी और फिर से दूसरी नई प्रतिष्ठा खड़ी किए बिना रहेगा नहीं। इस प्रकार की, नहीं तो दूसरे प्रकार की, परंतु उसके विशेष परिणाम छूटेंगे नहीं। खुद का स्वरूपभान हो जाए, वह जो आनंद, जो सुख ढूँढ रहा है, वह सुख मिले, उससे दृष्टिफेर हो जाएगा, दृष्टि शुद्ध हो जाएगी। फिर विशेष परिणाम खड़ा नहीं होगा।

यानी वास्तव में क्या है कि 'शुद्ध ज्ञान, वह आत्मा है और शुभाशुभ ज्ञान, अशुद्ध ज्ञान, वह सारा जीव है।' शुभाशुभ में है, तब तक जीवात्मा है, वह मूढ़ात्मा है। शुद्धात्मा तब बनता है, जब समकित होता है, पहले प्रतीति बैठती है, 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। कोई भी व्यक्ति ऐसे ही शुद्धात्मा नहीं बन जाता, परंतु पहले प्रतीति बैठती है। फिर उस अनुसार ज्ञान होता है, और उसके अनुसार बरताव होता है। पहले मिथ्यात्व प्रतीति थी, तो मिथ्यात्व ज्ञान खड़ा हुआ और मिथ्यात्व वर्तन खड़ा हुआ। ज्ञान होता है, तब वर्तन अपने आप ही आता जाता है, कुछ करना नहीं पड़ता। मिथ्यात्वश्रद्धा और मिथ्यातवज्ञान इकट्ठे हों, तब अपने आप वैसा बरताव हो ही जाता है - करना नहीं पड़ता, फिर भी वह कहता है कि 'करना है' वह उसका अहंकार है। उसने ऐसा मान लिया था कि, मिस्त्री के काम में ही मज़ा आएगा और मिस्त्री के काम में ही सुख है, तो वह मिस्त्री बन जाता है। फिर प्रतीति बैठे, तब मिस्त्री के काम का उसे ज्ञान उत्पन्न होता है, और ज्ञान और श्रद्धा दोनों एक हो जाएँ, तब आचरण में तुरंत आ ही जाता है। ऐसे हाथ रखा और ईंट चिपके, हाथ रखा और ईंट चिपके! हर एक ईंट को ऐसे देखना नहीं पड़ता।

अर्थात् खुद को बुद्धि के आशय के अनुसार सबकुछ मिल जाता है। किसी को कुछ करना नहीं पड़ता। बुद्धि के आशय में चोरी करनी

हो, और उसके पीछे पुण्य हो, तो वह सब (संयोग) इकट्ठे कर देता है। चाहे जैसे छुपे हुए कर्म करता हो और लाख सी.आई.डी. उसके पीछे पड़ी हो, फिर भी उसका पता नहीं चलता और पाप का उदय हो तब आसानी से पकड़ में आ जाता है। यह कुदरत की कैसी व्यवस्था है न! है पुण्य, और फिर मन में खुश होता है कि 'मुझे कौन पकड़ सकता है?' ऐसा अहंकार करता रहता है। अब, जब फिर पाप का उदय हो, तब सौदा बंद हो जाता है।

यह सब पुण्य चलाता है। तुझे हज़ार रुपये तनख्वाह कौन देता है? तनख्वाह देनेवाला तेरा सेठ भी पुण्य के अधीन है। पाप घेर लें, तब सेठ को भी कर्मचारी मारते हैं।

प्रश्नकर्ता : सेठ ने भाव किए होंगे, 'इसे नौकरी पर रखना है।' हमने भाव किए होंगे कि 'वहाँ नौकरी करनी है', इसलिए यह मिला?

दादाश्री : नहीं, ऐसा भाव नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : तो वह लेन-देन होगा?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो उसके पास नौकरी के लिए क्यों गया?

दादाश्री : नहीं, वह तो उसका हिसाब है सारा। सेठ की और उसकी जान-पहचान कुछ भी नहीं। सेठ के बुद्धि के आशय में ऐसा होता है कि मुझे ऐसे नौकर चाहिए और नौकर के बुद्धि के आशय में होता है कि मुझे ऐसे सेठ चाहिए। वह बुद्धि के आशय में छप चुका होता है, उस अनुसार मिल ही जाता है!

ये बच्चे पैदा होते हैं, वे भी बुद्धि के आशय के अनुसार होते हैं। 'मेरा इकलौता लड़का होगा तो भी बहुत हो गया, मेरा नाम रौशन करेगा।' उसकी बुद्धि के आशय के अनुसार नाम रौशन करता है। जैन ऐसा कहते हैं कि, 'मेरा बेटा है, वह दीक्षा ले तो बहुत अच्छा, उसका कल्याण तो होगा!' फिर जैनों के माँ-बाप बेटे को दीक्षा भी राज़ीखुशी से लेने देते हैं

जबकि ये औरों को दीक्षा की बात करके देखो? वे मना करेंगे। क्योंकि उन्होंने वैसे भाव ही नहीं किए थे।

कुदरत और बुद्धि का आशय

यह 'वाइफ' मिलती है उसे, 'यह मेरी वाइफ बने' ऐसे कुछ भाव नहीं किए थे। कुछ भी भाव नहीं, जान-पहचान भी नहीं, वह तो बुद्धि के आशय के अनुसार मिल जाती है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव ऐसे होते हैं कि कन्याओं की बहुत कमी हो जाए, तब उसकी बुद्धि के आशय में क्या होता है कि मुझे तो जैसी मिलेगी वैसी से शादी कर लूँगा, बस मिलनी चाहिए। तो उसे वैसी मिलती है। लेकिन फिर वह शोर मचाता है कि, 'यह स्त्री ऐसी है, वैसी है!' अरे, तूने ही निश्चित किया था न, अब किसलिए शोर मचा रहा है? वह फिर दूसरे की सुंदर स्त्री देखे तो उसे खुद के घर में अधूरा लगता है! लेकिन वापस संतोष तो खुद के घर में ही मिलता है। फिर कहेगा कि, 'मेरे घर पर ही रहूँगा!'

कुदरत क्या कहना चाहती है कि तेरे बुद्धि के आशय के अनुसार तुझे मिला है, उसमें तू कलह किसलिए कर रहा है? दूसरे का बंगला देखे और अंदर कलह करता है, लेकिन फिर उसे अच्छा तो खुद का ही झोंपड़ा लगता है!

अंतिम प्रकार का बुद्धि का आशय

बुद्धि के आशय में ऐसा हो कि 'ज्ञानी मिलें और अब कुछ छुटकारा हो जाए, अब तो थक गया इस भटकन से', तब उसे ज्ञानी मिल जाते हैं! अब ऐसा बुद्धि का आशय तो कोई करता ही नहीं है न? लोगों का यह मोह कहाँ से छूटे?

प्रतिष्ठा का कर्ता, परसत्ता में!

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और भव परिवर्तित होते ही रहते हैं। जितना मुँह से बोलते हैं, उतना अहंकार है, और उससे प्रतिष्ठा होती रहती है। यह अहंकार जो करता है, वह भी खुद नहीं करता, वह भी द्रव्य-क्षेत्र-

काल और भाव करवाते हैं। ज्ञानी से ज्ञान मिले तो अहंकार जाता है, और अहंकार गया तो सारी प्रतिष्ठा बंद हो गई! फिर वह कहाँ जाए? मोक्ष में!

प्रश्नकर्ता : अहंकार, वह भी द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव के अधीन है?

दादाश्री : हाँ, इसलिए वह प्रतिष्ठा करता है। दिखने में ऐसा लगता है कि यह प्रतिष्ठा अहंकार खुद कर रहा है, परंतु संयोग करवाते हैं। उससे प्रतिष्ठा खड़ी हो जाती है। अब प्रतिष्ठा में से फिर से संयोग खड़े होते हैं, वे वापस प्रतिष्ठा करवाते हैं। अर्थात् खुद इसमें कुछ भी करता ही नहीं! इसलिए हम उसे साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स कहते हैं। सबकुछ संयोग करवाते हैं और खुद मानता है कि, 'मैंने किया।' अब 'मैंने किया' वैसी मान्यता भी संयोग करवाते हैं। तब कोई पूछे कि इसे अहंकार कहेंगे या नहीं? तब कहें, ''हाँ, अहंकार ही न? क्योंकि करता है कोई दूसरा और मानता है कि 'मैंने किया'।''

प्रश्नकर्ता : अहंकार भी संयोगों के अधीन होता है?

दादाश्री : हाँ, सच्ची बात है। यह सारा संयोग करवाते हैं। अहंकार भी संयोग करवाते हैं, फिर भी वह मानता है कि, 'मैंने ही किया।' उससे नई प्रतिष्ठा खड़ी होती है। हम लोगों को तो 'मैंने किया' ऐसा अपनी 'बिलीफ़' में नहीं होता। हम लोग ऐसा समझते हैं कि 'व्यवस्थित' करवाता है, इसलिए प्रतिष्ठा होनी बंद हो गई। जो चित्रित किया हुआ है वह भव तो आएगा परंतु नया चित्रण बंद हो गया। हम यात्रा में गए, वे पहले के चित्रित किए हुए भाव थे सारे। जहाँ-जहाँ के थे, वहाँ-वहाँ सभी जगह जा आए।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का आशय बदलता है या नहीं?

दादाश्री : आसपास पहरा हो, उसके आधार पर बुद्धि का आशय होता है। चारों तरफ पुलिसवाले इकट्ठे हो जाएँ, उस घड़ी अंदर भय बैठ जाता है तो बुद्धि का आशय कहेगा कि नहीं, अब चोरी नहीं करनी है। उसके अनुसार सारा परिवर्तन हो जाता है।

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सबकुछ इकट्ठा हो जाए, तब उसके अनुसार बुद्धि का आशय उत्पन्न होता है। परंतु भीतर मूल भावना ज़रूर होती है। अपनी दानत चोर हो, तभी वैसे सब संयोग मिलते हैं!

'अहंकार' भी कुदरती रचना

प्रश्नकर्ता : 'नेसेसिटी इज़ द मदर ऑफ इन्वेन्शन'(आवश्यकता आविष्कार की जननी है) वह गलत बात है?

दादाश्री : यह शब्दप्रयोग ही है, वर्ना यह सबकुछ कुदरत करवाती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर इस 'रिलेटिव' प्रगति का आधार क्या है?

दादाश्री : सबकुछ ही कुदरत करवाती है। जैसे-जैसे काल बदले, वैसे ही द्रव्य बदलता है, द्रव्य बदले वैसे-वैसे भाव बदलते हैं और खुद इगोइज़म करता है, 'मैंने किया!' यह इगोइज़म भी कुदरत करवाती है, और जो इस इगोइज़म में से छूट गया वह इसमें से छूट गया। यह प्रगति कुदरत करवाती है, वर्ना जितने शब्दप्रयोग हैं वे सभी इगोइज़म है।

पहले के लोगों ने प्रारब्ध कहा, इसलिए ही तो यह दशा हुई है। इसलिए अपने इस साइन्स में किसी को प्रारब्ध बताया ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : 'व्यवस्थित' में होगा तो होगा, ऐसा नहीं?

दादाश्री : वह तो आपके समाधान के लिए कहते हैं, वर्ना सच में तो ऐसा कहते हैं कि काम करते जाओ। सारा परिणाम 'व्यवस्थित' के हाथ में है, इसलिए सोचना मत, घबराना मत। ऑर्डर हो गया कि लड़ाई करो, फिर लड़ाई करते जाओ, फिर परिणाम से घबराना मत।

प्रश्नकर्ता : तो हमें कोई योजना बनानी ही नहीं चाहिए?

दादाश्री : योजना तो पहले गढ़ी जा चुकी है। फिर जब भी काम आए तब काम करते जाओ। बिगिनिंग शुरू हो, उससे पहले तो योजना गढ़ी जा चुकी होती है!

प्रश्नकर्ता : विचार नहीं करने हैं?

दादाश्री : विचार नहीं करने हैं। विचार आएँ उन्हें देखते रहना, और फिर काम करते रहो, विचार करने की ज़रूरत नहीं है। विचार तो आएँगे ही। मनुष्य में यदि विचार बंद करने की शक्ति होती तो सारे विचार बंद कर भी देता। आपके खराब विचार आप बंद कर सकते हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तब आप ही सोचो.... क्या कर सकते हो?

प्रश्नकर्ता : तो विचारों का मूल क्या है?

दादाश्री : गाँठें हैं मन की।

प्रश्नकर्ता : ग्रंथि का मूल क्या है?

दादाश्री : पहले जो विचार आए थे उनमें आप तन्मयाकार हो गए थे, उससे ग्रंथि बनी। जिन विचारों में तन्मयाकार हुए उनकी ग्रंथि पड़ी।

आशय के अनुसार भूमिका

प्रश्नकर्ता : आशय और विचार में क्या फर्क है? क्या आशय में से विचारों का उद्‌भव होता है?

दादाश्री : विचार और आशय अलग हैं। आशय तो सार है। जैसा हर एक जीव के आशय में होता है, वैसी उसे भूमिका मिलती है।

प्रश्नकर्ता : ग्रंथियाँ आशय के अनुसार बनती हैं?

दादाश्री : ग्रंथियाँ अलग चीज़ है। ग्रंथि का और आशय का कोई लेना-देना नहीं है। मूल में पहले विचार हैं। उनमें से इच्छाएँ होती हैं, और इच्छा में से आशय उत्पन्न होता है, और आशय में से उसे उसकी भूमिका मिलती है। यह आपके आशय के अनुसार देह मिला है। दूसरे सभी एडजस्टमेन्ट मिलते हैं। अभी आपको शायद वे ठीक नहीं भी लगें, लेकिन है सारा आपके आशय के अनुसार ही।

यदि आपके आशय का नहीं होता तो आपको रात को नींद ही नहीं आती। लुटेरे का पुरुष को लूटने का आशय हो तो उसे स्त्री मिलती ही नहीं। आशय के अनुसार बुद्धि होती है, विचार होते हैं और पूरी ज़िंदगी आशय के अनुसार गुज़रती है। अब वहाँ एडजस्टमेन्ट क्यों नहीं हो पाता? पहले के आशय के अनुसार सबकुछ मिलता है। अभी के ज्ञान के अनुसार वह एडजस्ट नहीं होता। इसके बावजूद आशय में हो वही पसंद आता है। आशय में चेन्ज नहीं हो सकता। सिर्फ नई ग्रंथि नहीं डलती और पुरानी खत्म हो जाती है। फिर निर्ग्रंथ हो जाता है। अब ज्ञान मिलने के बाद नया आशय नहीं बंधता और पिछला विलय होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : निर्ग्रंथ होने के लिए क्या करें?

दादाश्री : अपने यहाँ करवाते हैं वैसी सामायिक करना। सामायिक से जो बहुत बड़ी ग्रंथि होती है, जो बहुत परेशान करती हो, वह विलय हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : खुद की भूलें सामायिक में प्रयत्न करके देखनी चाहिए? सामायिक में तो प्रयत्न करना पड़ता है न?

दादाश्री : नहीं प्रयत्न अर्थात् तो मन को क्रिया में ले जाना। मन क्रियाशील करना वह प्रयत्न, जब कि 'देखना', वह क्रिया में नहीं आता।

पहले जो भूलें नहीं दिखती थीं, वे ही भूलें अब दिखती हैं। क्रिया में फर्क नहीं है। जो दिखता है, वह ज्ञान के प्रताप से!

प्रतिष्ठा से पुतला

प्रश्नकर्ता : 'प्रतिष्ठित आत्मा' यानी क्या?

दादाश्री : जब तक 'मैं खुद कौन हूँ' वह नहीं जान लें, तब तक जिसे हम आत्मा मानते हैं कि 'यह चंदूभाई मैं ही हूँ', वही 'प्रतिष्ठित आत्मा' है। आत्मा यानी क्या? खुद का 'सेल्फ'। हम एक मूर्ति में प्रतिष्ठा करते हैं वैसे, यह प्रतिष्ठा की हुई है, इसलिए हमें यह फल देती रहती है। मूल

दरअसल आत्मा का भान होगा, तब काम हो जाएगा। 'खुद कौन है?' उसका 'सेल्फ रियलाइज़' होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : इस 'प्रतिष्ठित आत्मा' को शुद्धात्मा का भान ही नहीं है न?

दादाश्री : उसे भान होगा भी किस तरह? खुद का भान तो जब 'ज्ञानीपुरुष' करवाएँ तब होता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन आपने 'ज्ञान' दिया, बाद में 'प्रतिष्ठित आत्मा' को भान होगा न?

दादाश्री : हाँ, तभी तो खुद को भान हुआ न! वह भान हुआ तभी तो वह 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा बोलने लगा। पहले जो भान था, उसमें बदलाव महसूस हुआ। इसलिए उसे लगा कि, 'यह तो मैं नहीं हूँ, मैं तो शुद्धात्मा हूँ!'

आत्मचिंतना किसकी?

प्रश्नकर्ता : आत्मा चिंतना करे वैसा बन जाता है, तो वह चिंतना कौन करता है?

दादाश्री : 'प्रतिष्ठित आत्मा' ही चिंतना करता है। मूल आत्मा तो कुछ भी चिंतना करता ही नहीं। चिंतना करने का जो भाव करता है न, वही 'प्रतिष्ठित आत्मा' है। 'दरअसल आत्मा' तो वैसा है ही नहीं। वह तो जैसे प्योर गोल्ड ही देख लो।

इसलिए हम क्या कहते हैं कि शुद्ध की चिंतना करेंगे, तो उस रूप बन जाएँगे और दूसरी चिंतना करेंगे तो वैसा हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : परंतु वह चिंतना तो 'प्रतिष्ठित आत्मा' की ही है न?

दादाश्री : हाँ, उसकी ही। वह तो कुछ भी नहीं करता। 'प्रतिष्ठित आत्मा' यदि इस तरफवाला हो जाएगा, तो 'शुद्धात्मा' बन जाएगा, और अगर उल्टा जाएगा तो उल्टा बन जाएगा, ऐसा हम कहते हैं। अब स्वरूपज्ञान

मिला तब से आपको शुद्धात्मा की चिंतना होती रहेगी। फिर भी यह जो लगता है कि, 'मैं ऐसा हूँ', 'मुझे ऐसा हुआ', यह सब मोह है। यह सत्संग करते हैं, वह भी सारा मोह ही है। परंतु यह चारित्रमोह है। चारित्रमोह किसे कहते हैं? कि समभाव से *निकाल* कर दिया, तो वह खत्म ही हो गया। वह वापस हमें स्पर्श नहीं करेगा और वह सचमुच का मोह तो खुद को चिपके बगैर रहेगा ही नहीं। यह दर्शनमोह चला गया है इसलिए सिर्फ चारित्रमोह ही बाकी रहा। उसे डिस्चार्ज मोह कहा जाता है।

ज्ञान नहीं हो उसे तो अब 'डिस्चार्ज मोह' में तो 'मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ' ऐसी सारी कल्पनाएँ रहा करती हैं। इसलिए वैसा हो जाता है वापस। और स्वरूपज्ञान के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा रहा करता है, इसलिए शुद्ध होता जाता है और 'चंदूभाई' को तो जो होना हो वह होगा, जो उसका प्रकृति स्वभाव है वह तो निकलेगा ही। 'उसका' और 'आपका' लेना-देना नहीं है। सिर्फ उसका *निकाल* कर देना है।

[२]

वाणी का टैपिंग, 'कोडवर्ड' से

प्रश्नकर्ता : वाणी को सुधारने का रास्ता क्या है?

दादाश्री : वाणी को सुधारने का रास्ता ही यहाँ पर है। यहाँ पर सबकुछ पूछ-पूछकर समाधान कर लेना चाहिए।

'स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन हैं।' इतना ही वाक्य खुद की समझ में रहता हो, खुद की जागृति में रहता हो, तो सामनेवाला व्यक्ति चाहे जो बोले फिर भी हमें ज़रा भी असर नहीं होगा और यह वाक्य कल्पित नहीं है। जो एक्ज़ेक्ट है, वह कह रहा हूँ। मैं आपको ऐसा नहीं कहता कि मेरे शब्द का मान रखकर चलो। एक्ज़ेक्ट ऐसा ही है। हकीकत आपको समझ में नहीं आने के कारण आप मार खाते हो।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाला उल्टा बोले तब आपके ज्ञान से समाधान रहता है, परंतु मुख्य सवाल यह रहता है कि हमसे कड़वा बोल निकले, तब उस समय हम इस वाक्य का आधार लें, तो हमें उल्टा लाइसेन्स मिल जाता है?

दादाश्री : उस वाक्य का आधार लिया ही नहीं जा सकता न! ऐसे समय में तो आपको प्रतिक्रमण का आधार दिया हुआ है। सामनेवाले को दु:ख हो वैसा बोल लिया हो तो प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। और सामनेवाला भले कुछ भी बोले, तब यदि 'वाणी पर है और पराधीन है', उसे स्वीकार किया तो फिर आपको सामनेवाले से दु:ख रहा ही नहीं न?

अब आप खुद उल्टा बोलो फिर उसका प्रतिक्रमण करो, तब

आपके बोल का आपको दु:ख नहीं रहता। यानी इस प्रकार सारा हल आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : वाणी जड़ है, फिर भी इफेक्टिव क्यों है?

दादाश्री : हाँ, वाणी जड़ है। फिर भी अधिक से अधिक इफेक्टिव वाणी ही है। उसके कारण तो इस जगत् का अस्तित्व है। वाणी का स्वभाव ही इफेक्टिव है।

प्रश्नकर्ता : वाणी पर कंट्रोल किस तरह लाएँ?

दादाश्री : वाणी पर कंट्रोल तो... एक तो ज्ञानी के पास से आज्ञा लेकर मौन धारण करे तब होगा, नहीं तो खुद मौन धारण करना, लेकिन वह तो खुद के अधीन नहीं है। उदय से अपने आप मौन नहीं आएगा क्योंकि उदय तो सारा व्यवस्थित के अधीन है। इसलिए ज्ञानी की आज्ञा लेकर मौन धारण करे तो हितकारी है। दूसरा, वाणी को कंट्रोल करने के लिए यदि प्रतिक्रमण करेगा तो होगा। वाणी टेपरिकॉर्ड है। उस छपे हुए के अलावा अधिक या कम कुछ भी नहीं बोला जा सकेगा। यानी कि कंट्रोल के लिए ये दो ही रास्ते हैं।

प्रश्नकर्ता : पूर्वजन्म में या दूसरे जन्म में वे ही संयोग और वे ही व्यक्ति मिलेंगे, और वही वाणी निकलेगी, ऐसा है? टेप हो चुका है, उसका अर्थ क्या?

दादाश्री : अपने यहाँ पर साहब तेज़ी से बोलते हैं और स्टेनो लिख लेता है। वह किस तरह लिख लेता होगा? वह कौन सी भाषा होती है?

प्रश्नकर्ता : 'शोर्टहेन्ड'।

दादाश्री : और उससे आगे कुछ नया निकला है न? वो कोड लेंग्वेज कहते हैं या क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, कोड लेंग्वेज।

दादाश्री : यह सब कोड लेंग्वेज और शोर्टहेन्ड सब अंदर टाइप होता है। अपना भाव अंदर हुआ कि, 'अच्छे-अच्छों को बिठा दूँ, ऐसी वाणी बोलूँ, मैं ऐसा हूँ।' तो इतने कोडवर्ड से वह पूरा प्रकाशमान हो जाता

है। उसे मैं टेपरेकॉर्ड कहता हूँ। आपने भीतर जो कोडवर्ड किए हैं, उससे यह टेप हो चुका है।

कितनी ही कठोर भाषा बोलनेवाला भी संतपुरुष के पास सुंदर वाणी बोलता है। तब हम नहीं समझ जाते कि यह कठोर वाणीवाला है या मधुर वाणीवाला है?

प्रश्नकर्ता : वाणी निकले तब कैसी और किस प्रकार की जागृति रखनी चाहिए?

दादाश्री : सामनेवाले का दिल बैठ जाए, ऐसा बड़ा पत्थर मारें, तो उस समय अपनी जागृति उड़ ही जाएगी! छोटा पत्थर मारें तो जागृति नहीं जाएगी। यानी पत्थर छोटा हो जाएगा, तब वह जागृति आएगी।

प्रश्नकर्ता : तो हम पत्थर किस तरह छोटा करें?

दादाश्री : प्रतिक्रमण से!

प्रश्नकर्ता : टेप हो चुकी वाणी बदली किस तरह जाए?

दादाश्री : आप सिर्फ ज्ञानी के पास से आज्ञा लेकर मौनव्रत धारण करो, तब उसका उपाय है। वर्ना वह तो कुदरत को बदलने जैसी वस्तु है। इसलिए 'ज्ञानीपुरुष' के पास से आज्ञा लेकर करें, तो 'ज्ञानीपुरुष' जोखिमदार नहीं बनते और जोखिमदारी यों ही बीच रास्ते में खत्म हो जाती है। यानी यही एक उपाय है।

प्रश्नकर्ता : वाणी बोलते समय जो भाव और जागृति हैं उनके अनुसार टैपिंग होता है?

दादाश्री : नहीं, यह टैपिंग वाणी बोलते समय नहीं होता। यह तो मूल पहले ही हो चुका है। उसका फिर आज क्या होगा? जो छप चुका है, उसके अनुसार ही बजेगा।

प्रश्नकर्ता : और फिर अभी बोलें, उस समय जागृति रखें तो?

दादाश्री : अभी आप किसी को डाँटों, फिर मन में ऐसा हो कि

इसे डाँटा 'वह ठीक है', तब फिर वापस वैसे हिसाब का कोडवर्ड बना और इसे डाँटा, 'वह गलत हुआ', ऐसा भाव हुआ तो कोडवर्ड आपका नई प्रकार का बना। यह डाँटा वह ठीक किया ऐसा माना कि उसके जैसा ही वापस कोडवर्ड उत्पन्न होता है और उससे वह अधिक वज़नदार (मज़बूत) बनता है। उसे 'यह बहुत खराब हो गया, ऐसे नहीं बोलना चाहिए, ऐसा क्यों होता है?' ऐसा हो तो कोड छोटा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : अब यह ठीक किया ऐसा भी नहीं हो और ठीक नहीं किया ऐसा भी नहीं हो, तब फिर कोड उत्पन्न होगा?

दादाश्री : वह तो मौन रहने का निश्चय करे तो मौन हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : कई बार मुँह से नहीं बोला जाता, लेकिन अंतरवाचा होती है न? अंदर भाव बिगड़ते रहते हैं, उसका क्या?

दादाश्री : आपको खुद अपने आपको अंदर कह देना है कि ऐसा गलत नहीं होना चाहिए। ऐसा सुंदर होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : फिर सुंदर का कोड आ जाएगा न?

दादाश्री : सुंदर का कोड तो आएगा ही न!

प्रश्नकर्ता : वह फिर वापस नया कोड बनता है, उसके लिए नया देह धारण करना पड़ेगा? इसके बजाय तो कोड नहीं बनें, ऐसा हमें चाहिए।

दादाश्री : यह तो एकाध जन्म चले उतना ही है। बाद में तो आपके कोड ऐसे रहेंगे ही नहीं। जिसकी आज खराब भाषा नहीं है, उन लोगों ने कोड बदला नहीं और जिसकी खराब भाषा है, उन्होंने कोड बदले हैं। यानी वे कच्चे पड़ गए हैं और ये पक्के हो गए हैं। जो कहते हैं, 'दादा, मेरी यह वाणी कब सुधरेगी?' तब से हम नहीं समझ जाते कि यह कोड बदल रहा है?!

प्रश्नकर्ता : जिसे मोक्ष में जाना है उसे तो कोई कोड दाख़िल ही नहीं करना है न? उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मोक्ष में पहुँचने तक कुछ भी परेशानी हो, ऐसा नहीं है। मोक्ष में जाने के लिए जैसे कोड चाहिए, वे अगले जन्म में उत्पन्न होंगे। अभी मुझे पूछकर जितना माल भरेगा, उससे अगले जन्म में फिर वैसा ही कोड उत्पन्न होगा। अभी एक जन्म है न?

प्रश्नकर्ता : तीर्थंकरों की वाणी के कोड कैसे होते हैं?

दादाश्री : उन्होंने ऐसा कोड निश्चित किया होता है कि 'मेरी वाणी से किसी भी जीव को किंचित्‌मात्र भी दुःख नहीं हो। दुःख तो हो ही नहीं, परंतु किसी जीव का किंचित्‌मात्र प्रमाण भी नहीं *दुभे* (आहत हो), पेड़ का भी प्रमाण नहीं *दुभे*।' ऐसे कोड सिर्फ तीर्थंकरों के ही हुए होते हैं।

प्रश्नकर्ता : वाणी बोलते समय किस प्रकार की जागृति रखनी चाहिए?

दादाश्री : जागृति ऐसी रखनी है कि 'ये बोल बोलने में किस-किसका किस प्रकार से प्रमाण *दुभ* रहा है', उसे देखना है।

प्रश्नकर्ता : पाँच लोगों को एक ही शब्द कहते हैं, तो सभी को अलग-अलग तीव्रता से मन दुःखता है, उसका क्या करें?

दादाश्री : हमें जागृति रखकर फिर बोलना है। हमें जितना समझ में आए उतना करना है। उसका उपाय नहीं है। ये 'चंदूभाई' न्यायसंगत बोलते हों फिर भी सामनेवाले को दुःख हो, ऐसा भी बहुत बार होता है। अब उसका उपाय क्या? परंतु वह कुछ ही लोगों के साथ होता है। सब जगह नहीं होता। इसलिए वहाँ पर दूसरे पटाखे नहीं फोड़ें तभी आपके पटाखे बंद होंगे। वर्ना एक व्यक्ति फोड़ेगा तो आपको नहीं फोड़ना होगा, फिर भी फूट जाएगा। इसलिए यदि सभी पक्का करें कि हम पटाखे जलाने बंद कर देंगे तो वह बंद होगा, नहीं तो नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : नया कोड हो तो अगले जन्म में इफेक्ट देगा या इस जन्म में भी इफेक्ट देगा?

दादाश्री : ये कुम्हार मटके बनाते हैं, उस मटके को भट्ठी में पकाकर एक घंटे बाद फिर निकाल लेंगे, तो क्या होगा?

अगले जन्म में सबकुछ अच्छा होगा, ऐसा आपने माना, इसीलिए तो आपको मुझ पर श्रद्धा आई, नहीं तो यहाँ बैठेंगे किस तरह? इस भव में तो क्या होगा कि जो आपकी कोडवाली भाषा है, वह पूरी हो जाएगी और फिर आपकी वैसी भाषा ही नहीं निकलेगी।

प्रश्नकर्ता : तब फिर मौन हो जाएँ?

दादाश्री : मौन ही हो जाना है। मौन अर्थात् ऐसा मौन नहीं कि एक अक्षर भी नहीं बोलें। मौन अर्थात् व्यवहार के लिए ज़रूरी हो उतनी ही वाणी रहेगी। क्योंकि एक टंकी का भरा हुआ माल, वह खाली तो होना ही है।

अहंकार का रक्षण

प्रश्नकर्ता : आपने कहा था कि यह जो वाणी है, वह अहंकार से निकलती है।

दादाश्री : ऐसा है न कि वाणी बोलते हैं, उसमें हर्ज नहीं है। वह तो कोडवर्ड है। वह खुलता जाता है और बोलता रहता है, उसका हमें रक्षण नहीं करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : रक्षण नहीं होना चाहिए, उसका अर्थ यह कि 'हम सच्चे हैं' वैसी भावना नहीं होनी चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : हम सच्चे हैं, उसे ही रक्षण कहते हैं। और रक्षण नहीं हो तो कुछ भी नहीं। गोले सभी फूट जाएँगे और किसी को भी अधिक दु:ख नहीं होगा। अहंकार का रक्षण करते हैं, उससे बहुत दु:ख होता है।

मैं छोटे बच्चे को बहुत मारूँ, फिर भी उसे कुछ भी नहीं होगा और यदि नाराज़ होकर आपने ज़रा सी चपत लगाई हो तो वह कोहराम मचा देगा! यानी उसे चोट लगने का दु:ख नहीं है, अहंकार घायल हुआ उसका दु:ख है!

शास्त्रकारों ने क्या कहा है कि अहंकार एक ऐसा गुण है कि जो सभी लोगों को बिल्कुल अंधा बना देता है। भाईयों में भी दुश्मनी हो जाती है। सगा भाई कब बरबाद हो जाए ऐसा सोचता है! अरे, सगा बाप भी, बेटे को ऐसा आशीर्वाद देता है कि कब यह बरबाद हो जाए! अहंकार क्या नुकसान नहीं करता? यानी हमें अहंकार को पहचान लेना चाहिए कि 'यह अपना कौन है?'

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमारा काम करने के लिए हमें अहंकार तो चाहिए ही न?

दादाश्री : वह काम करने का अहंकार होता ही है। उसके लिए कौन मना करता है? लेकिन उस अहंकार को जानना चाहिए कि अहंकार में ऐसे गुण हैं। ताकि हमें उस पर प्रेम नहीं रहे, आसक्ति नहीं रहे।

प्रश्नकर्ता : हम चाहे जितना करें, परंतु सामनेवाला नहीं सुधरे तो क्या करें?

दादाश्री : खुद सुधरे नहीं और लोगों को सुधारने गए, उससे लोग बल्कि बिगड़ गए। सुधारने जाएँ कि बिगड़ते हैं। खुद ही बिगड़ा हुआ हो तो क्या होगा? खुद का सुधरना सब से आसान है! हम नहीं सुधरे हों और दूसरों को सुधारने जाएँ, वह मीनिंगलेस है। तब तक अपने शब्द भी वापस आएँगे। आप कहो कि, 'ऐसा मत करना।' तब सामनेवाला कहेगा कि, 'जाओ, हम तो ऐसा ही करेंगे!' यह तो सामनेवाला बल्कि अधिक उल्टा चला!

इसमें अहंकार की ज़रूरत ही नहीं है। अहंकार से सामनेवाले को डरा-धमकाकर काम करवाने जाएँ, तो सामनेवाला अधिक बिगड़ेगा। जिसमें अहंकार नहीं है, वहाँ उसके प्रति हमेशा सभी सिन्सियर रहते हैं और मॉरेलिटी होती है।

हमारा अहंकार नहीं होना चाहिए। अहंकार सभी को चुभता है। छोटे बच्चे को भी ज़रा सा 'बेअक्ल, मूर्ख, गधा', यदि ऐसा कहा तो वह भी

टेढ़ा चलता है। और 'बेटा, तू बहुत समझदार है', कहें कि तुरंत वह मान जाता है।

प्रश्नकर्ता : और उसे बहुत समझदार कहें तो भी वह बिगड़ जाएगा?

दादाश्री : मूर्ख कहें तो भी बिगड़ जाएगा और बहुत समझदार कहें तो भी बिगड़ जाएगा। क्योंकि समझदार कहोगे तो उसके अहंकार को एन्करेजमेन्ट मिल जाएगा और मूर्ख कहोगे तो साइकोलोजिकल इफेक्ट उल्टा पड़ेगा। अक़्लमंद इन्सान को २५-५० बार मूर्ख कहोगे तो उसके मन में वहम हो जाएगा कि, 'वास्तव में क्या मैं पागल हूँ?' ऐसा करते-करते वह पागल हो जाएगा। इसलिए मैं पागल को भी 'तेरे जैसा समझदार इस जगत् में कोई नहीं' ऐसा कर-करके एन्करेजमेन्ट देता हूँ। इस जगत् में हमेशा पॉज़िटिव रहो। नेगेटिव की तरफ मत चलना। पॉज़िटिव का उपाय मिलेगा। मैं आपको समझदार कहूँ और यदि आवश्यकता से अधिक आपका अहंकार खिसका, तो मुझे आपको चपत मारना भी आता है, नहीं तो वह उल्टे रास्ते चले और उसे एन्करेज नहीं करें तो वह आगे बढ़ेगा ही नहीं।

'अहंकार नुकसानदायक है' ऐसा जान लो, तब से सारा काम सरल हो जाएगा। अहंकार का रक्षण करने जैसा नहीं है। अहंकार खुद ही रक्षण कर ले, ऐसा है।

व्यवहार का अर्थ क्या? देकर लो, या फिर लेकर दो, वह व्यवहार है। 'मैं' किसी को देता भी नहीं और 'मैं' किसी का लेता भी नहीं। मुझे कोई देता भी नहीं। 'मैं' मेरे स्वरूप में ही रहता हूँ।

व्यवहार इस प्रकार बदलो कि हमें देकर लेना है। यानी वापस देने आए उस घड़ी यदि पुसाता हो तब देना।

हम लोग बावड़ी में जाकर कहें कि, 'तू बदमाश है', तो बावड़ी भी कहेगी, 'तू बदमाश है' और हम कहें कि, 'तू चौदह लोक का नाथ है', तो वह भी हमें कहेगी कि, 'तू चौदह लोक का नाथ है।' इसलिए

इसमें हमें जैसा पसंद है, वैसा बोलना चाहिए। ऐसा प्रोजेक्ट करो कि आपको पसंद आए। यह सारा आपका ही प्रोजेक्शन है। इसमें भगवान ने कोई दख़ल नहीं की है।

दुनिया में किसी को बेअक्ल मत कहना। अक्लवाला ही कहना। तू समझदार है, ऐसा ही कहोगे तब तुम्हारा काम होगा। एक आदमी उसकी भैंस से कह रहा था कि 'तू बहुत समझदार है बा, बहुत अक्लवाली है, समझदार है।' मैंने उससे पूछा, 'भैंस को तू ऐसा क्यों कहता है?' तब उसने कहा कि, 'ऐसा नहीं कहूँ तो भैंस तो दूध देना ही बंद कर दे।' भैंस यदि इतना समझती है तो क्या मनुष्य नहीं समझेंगे?

बुद्धि की दख़ल से हुई *डखलामण*

यह जगत् 'रिलेटिव' है, व्यवहारिक है। हम सामनेवाले से एक अक्षर भी नहीं कह सकते। और यदि 'परम विनय' में हों तो कमियाँ भी नहीं निकाल सकते। इस जगत् में किसी की कमियाँ निकालने जैसा नहीं है। 'कमी निकालने से कैसा दोष लगेगा', उसका पता कमी निकालनेवाले को नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कमी नहीं निकालते हम लोग, लेकिन सामनेवाले की प्रगति हो, इसलिए बोलते हैं।

दादाश्री : उसके आगे बढ़ने का हिसाब आपको नहीं लगाना है। आगे बढ़ाने का काम तो कुदरत अपने आप करती रहती है। आपको सामनेवाले को आगे बढ़ाने की इच्छा नहीं करनी है। कुदरत कुदरत का काम करती ही रहती है। हमें अपनी तरफ से सभी फ़र्ज़ निभाते रहना है।

बुद्धि आपको परेशान करे कि ऐसा करेंगे तो ऐसा होगा और वैसा करेंगे तो वैसा होगा। कुछ भी नहीं होता। कोई कुछ कर सके ऐसा है ही नहीं। कुदरत कुदरत का काम करती ही रहती है। कोई किसी से सलाह माँगने नहीं आता। फिर भी यह तो बिन माँगी सलाह परोसते ही जाते हैं।

इस बुद्धि का मानने जाएँ न तो यहाँ पर सत्संग में सब से पहले

नियम चाहिए कि ऐसे बैठना और ऐसे मत बैठना। जहाँ सच्चा धर्म है, वहाँ 'नो लॉ लॉ' (नियम नहीं है, वही नियम) वही मुख्य वस्तु है।

अपने यहाँ पर बुद्धि शब्द की ज़रूरत ही नहीं है। जो डखलामण (दख़ल, गड़बड़, परेशानी) करवाए उस बुद्धि को धकेलने का प्रयत्न करो। डखलामण में नहीं डालती हो तो उसका हर्ज नहीं है। बात तो समझनी ही पड़ेगी न? ऐसा कब तक चलेगा? बुद्धि आपको इमोशनल करेगी। आपका इसमें कुछ भी नहीं चलेगा। सब 'व्यवस्थित' के अधीन है। 'व्यवस्थित' पर थोड़ा-बहुत विश्वास बैठा हो तो कोई प्रश्न ही नहीं रहता। यहाँ तो प्रश्नों के बिना ही उत्तर है।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि प्रयत्न तो एकदम अंत तक करने हैं?

दादाश्री : प्रयत्न किसके लिए करना होता है? प्रयत्न अपने संसारव्यवहार के लिए करना होता है। यहाँ सत्संग में संसारव्यवहार नहीं है। यह तो 'रियल' का शुद्ध व्यवहार है। शुद्ध व्यवहार में बुद्धि की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि से सर्वेन्ट की तरह काम लें या नहीं?

दादाश्री : नहीं। जहाँ संपूर्ण शुद्ध व्यवहार है, वैसे 'रूम' में प्रवेश कर लिया तो बुद्धि का काम नहीं है। यहाँ शुद्ध व्यवहार है और बाहर संसार व्यवहार है। संसार में भी जहाँ बुद्धि परेशान करे, वहाँ उसे छोड़ देना चाहिए। 'व्यवस्थित' कहने के बाद विकल्प नहीं करना होता। 'ज्ञानीपुरुष' की आज्ञा में रहे तो उसे, 'शुद्ध व्यवहार क्या है', वह समझ में आ जाएगा।

[३]

आमंत्रित कर्मबंधी

हमारा कर्म हमारी मर्ज़ी के अनुसार होता है और आपको कर्म नचाते हैं। हमें स्वतंत्रता होती है, इसलिए हम चैन से बैठते हैं। आपके कर्म भी धीरे-धीरे खत्म हो जाएँगे, बाद में आप बुलाओगे फिर भी नहीं आएँगे। वे फालतू नहीं हैं। हमने हस्ताक्षर किए थे इसलिए आए हैं, नहीं तो वे आते ही नहीं न? करार पर जैसे हस्ताक्षर किए हैं, उलझनवाले हैं तो वैसा आता है और साफ-सुथरे हों तो साफ-सुथरा आता है। अरे, सत्संग में से उठाकर ले जाता है। चारा ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : संबंध रखा वह राग हुआ, क्या इसलिए बुलाते हैं?

दादाश्री : वह सब राग और द्वेष ही है। लेकिन पहले हमने हस्ताक्षर कर दिए हैं, तभी उसे राग उत्पन्न होता है, नहीं तो कोई नाम देनेवाला नहीं है।

इस भव में कुछ ही हस्ताक्षर मान्य होते हैं। आप जितना मानते हो उतने हस्ताक्षर नहीं होते। हस्ताक्षर तो टाइप होने के बाद फिर से टाइप होता है, तब हस्ताक्षर माने जाते हैं। इसलिए उतने सारे नहीं होते।

तप के ताप से उभर आई शुद्धता

व्यवहारचारित्र से लेकर ठेठ आत्मचारित्र तक के चारित्र हैं। ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप। उनमें से जो आत्मचारित्र है, वह अंतिम प्रकार का चारित्र है। व्यवहार चारित्र का फोटो खिंच सकता है और इस आत्मचारित्र का फोटो नहीं खिंचता। जो अंतिम प्रकार के ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप हैं उन चारों के ही फोटो नहीं खिंच सकते।

प्रश्नकर्ता : अंतिम तप कौन सा?

दादाश्री : अभी आपको कोई व्यक्ति गाली दे रहा हो, तब उस समय यदि आपको मेरा शब्द याद आए और उस अनुसार निश्चित हो जाए कि मुझे 'समभाव से *निकाल*' करना है, तो उसे तप कहते हैं। उस घड़ी तप ही रहता है।

सभी बाह्य तप स्थूल तप कहलाते हैं, उनका फल भौतिक सुख मिलता है। और आंतरिक तप सूक्ष्म तप है, उसका फल मोक्ष है।

कोई आपको गालियाँ दे, उस समय भीतर मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सभी तपता है, उस तप को आप ठंडा होने तक देखते रहो, वह सूक्ष्म तप कहलाता है।

सास बहू को डाँटती रहती हो, और बहू समझदार हो तो उसे सूक्ष्म तप बहुत मिलता रहता है। हिन्दुस्तान में यह तप अपने आप ही मुफ्त में घर बैठे मिलता रहता है। घर बैठे गंगा है, परंतु ये लोग लाभ नहीं उठाते न! पति आपको कुछ कह दे, उस घड़ी आपको तप करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : 'अक्रम विज्ञान' में तप का स्थान कहाँ पर है?

दादाश्री : तप करना अर्थात् क्या? जो पिछला हिसाब चुकाना पड़ता है, उसे चुकाते समय मिठास भी आती है और कड़वा भी आता है। मिठास आए वहाँ भी तप करना है और कड़वा आए वहाँ भी तप करना है। डिस्चार्ज कर्म कड़वा-मीठा फल दिए बगैर तो रहता ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : इस व्यक्ति ने मुझे गाली दी, तो उसका मुझे तुरंत पता चल जाता है कि यह मेरे कर्म का उदय है। वह निर्दोष है, तो उसमें तप किसे कहेंगे?

दादाश्री : इस ज्ञान से तप करना हुआ। इसमें खुद को तप करना नहीं पड़ता। भीतर मन-बुद्धि जो तपते हैं, उन्हें समतापूर्वक 'देखते' रहना, वह तप है। उनमें तन्मयाकार नहीं होना है। पूरा जगत् मन-बुद्धि तपते है, तब खुद तप जाता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् तप करना पड़ेगा?

दादाश्री : तप करना नहीं पड़ता। तप तो स्वाभाविक रूप से हो ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब तक तप होता है, तब तक अपूर्णता कहलाती है न?

दादाश्री : अपूर्णता तो, ठेठ 'केवलज्ञान' होने तक अपूर्ण ही कहलाता है। मेरा भी अपूर्ण कहलाता है और आपका भी अपूर्ण कहलाता है।

तप करने से खुद की ज्ञानदशा की डिग्रियाँ बढ़ती हैं। तप अंतिम शुद्धता लाता है। पूर्ण शुद्ध सोना तो मैं भी नहीं कहलाऊँगा और आप भी नहीं कहलाएँगे। और ज्ञानी को भी देह के तप होते हैं।

प्रतिक्रमण : क्रमिक के - अक्रम के

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि 'अक्रम मार्ग' में पक्षपात नहीं होता, तो खंडन के बिना मंडन किस तरह हो सकता है?

दादाश्री : यह मंडन करने का मार्ग ही नहीं है और खंडन करने का भी मार्ग नहीं है। यह तो जिसे मोक्ष में जाना है, उसके लिए ही यह मार्ग है। और जिसे मोक्ष में नहीं जाना है, उसके लिए दूसरा रास्ता है। दूसरा धर्म चाहिए तो हम वह भी देते हैं।

क्रमिक मार्ग द्वारा आगे जाना बहुत कठोर उपाय है, फिर भी वह हमेशा का मार्ग है। जब तक मन में अलग है, वाणी में अलग और वर्तन में अलग है तब तक कोई धर्म नहीं चलेगा। अभी सब जगह ऐसा ही हो गया है न?

इसलिए हम, यदि इस काल के मनुष्यों को धर्म जानना हो तो उन्हें क्या सिखलाते हैं?

तुझसे झूठ बोला गया, उसमें हर्ज नहीं है। मन में तू झूठ बोला उसमें हर्ज नहीं है, परंतु अब तू उसका 'इस' तरह प्रतिक्रमण कर और निश्चित कर कि फिर से ऐसा नहीं बोलूँगा। हम प्रतिक्रमण करना सिखाते हैं।

प्रश्नकर्ता : हम रायशी और देवशी प्रतिक्रमण करते हैं, वह क्या गलत है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो शूट एट साइट होना चाहिए, उधार नहीं रखना चाहिए। ये बहीखाते भी उधार नहीं रखते हैं। वैसे ही प्रतिक्रमण भी उधार नहीं रखने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जीव तो सतत कर्म के बंधन बाँधते ही रहते हैं, तो उसे क्या सतत प्रतिक्रमण करते रहना है?

दादाश्री : हाँ, करना ही पड़ेगा! इनमें से कई महात्मा रोज़ पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करते हैं!

प्रश्नकर्ता : वह तो भाव प्रतिक्रमण है, क्रिया प्रतिक्रमण तो नहीं हो पाएँगे न?

दादाश्री : नहीं, क्रिया में प्रतिक्रमण होता ही नहीं। बहुत हुआ तो उससे मन अच्छा रहेगा।

प्रश्नकर्ता : उससे कर्मनिर्जरा होती है या नहीं?

दादाश्री : *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) तो हर एक जीव में हो रही है। परंतु वह अच्छा भाव है कि मुझे प्रतिक्रमण करना है, ताकि *निर्जरा* अच्छी हो। वर्ना प्रतिक्रमण तो शूट एट साइट होना चाहिए। आप करते हो, वह द्रव्य प्रतिक्रमण है, भाव प्रतिक्रमण चाहिए।

प्रश्नकर्ता : द्रव्य के साथ भाव होता है न?

दादाश्री : नहीं, परंतु सिर्फ द्रव्य ही होता है, भाव नहीं होता। क्योंकि दूषमकाल के जीवों द्वारा भाव रखना, बहुत मुश्किल चीज़ है। वह तो 'ज्ञानीपुरुष' की कृपा हो और वे सिर पर हाथ रखें, उसके बाद भाव उत्पन्न होते हैं। नहीं तो भाव उत्पन्न नहीं होते।

'ज्ञानीपुरुष' किसे कहते हैं? कि जिन्हें पर-परिणति ही नहीं रहती। निरंतर स्वभाव-परिणति होती है। रात-दिन हमेशा स्वभाव-परिणति रहती

है, पर-परिणाम नहीं होते। जिनके वाणी, वर्तन, विनय मनोहर होते है, आर्तध्यान और रौद्रध्यान सर्वांश रूप से नहीं होते और अहंकार शून्य हो जाने से, टेन्शन नहीं होने से, निरंतर मुक्त हास्य रहता है, अनंत गुणों के भंडार होते हैं, वे 'ज्ञानीपुरुष' कहलाते हैं।

प्रतिक्रमण, ज्ञानी के

आप बिस्तर पर सो गए हों तो जहाँ-जहाँ कंकड़ चुभें, वहाँ से आप निकाल दोगे या नहीं निकालोगे? यह प्रतिक्रमण तो, जहाँ-जहाँ चुभ रहा हो वहीं पर करने हैं। आपको जहाँ चुभता है, वहाँ से आप निकाल दोगे और जहाँ इन्हें चुभता है, वहाँ से वे निकाल देंगे! प्रतिक्रमण हर एक व्यक्ति के अलग-अलग होते हैं।

अभी कोई व्यक्ति किसी पर उपकार कर रहा हो फिर भी उसके घर पर अनाचार हो, ऐसे केस हो जाते हैं, तो वहाँ पर प्रतिक्रमण करने ही पड़ेंगे। प्रतिक्रमण तो, जहाँ चुभे वहाँ सभी जगह पर करना पड़ेगा, परंतु हर एक के प्रतिक्रमण अलग-अलग होते हैं।

मुझे भी प्रतिक्रमण करने होते हैं। मेरे अलग प्रकार के और आपके भी अलग प्रकार के होते हैं। मेरी भूल आपको बुद्धि से पता नहीं चल सके, ऐसी होती है। यानी कि वे सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होती हैं। उसके हमें प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। हमें तो उपयोग चूकने का भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है। उपयोग चूक गए, वह हमें तो पुसाएगा ही नहीं न? हमें इन सबके साथ बातें भी करनी पड़ती है, सवालों के जवाब भी देने पड़ते हैं, इसके बावजूद हमें हमारे उपयोग में ही रहना होता है।

जब तक हममें साहजिकता होती है, तब तक हमें प्रतिक्रमण की आवश्यकता नहीं होती। साहजिकता में प्रतिक्रमण आपको भी नहीं करने पड़ते। साहजिकता में फर्क पड़ा कि प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। हमें आप जब देखोगे तब साहजिकता में ही देखोगे। जब देखो तब हम वैसे ही स्वभाव में दिखते हैं। हमारी साहजिकता में बदलाव नहीं आता!

[४]

प्रतिस्पंदन से दुःख परिणाम

अपने से दूसरों को दुःख होता है, ऐसा जो हमें दिखता है, वह हमारा सेन्सिटिवनेस का गुण है। सेन्सिटिवनेस एक प्रकार का अपना इगोइज़म है। वह इगोइज़म जैसे-जैसे विलय होता जाएगा, वैसे-वैसे हमसे सामनेवाले को दुःख नहीं होगा। जब तक अपना इगोइज़म हो तब तक सामानेवाले को दुःख होता ही है।

प्रश्नकर्ता : वह तो आपकी अवस्था की बात हुई! अब हमारे लिए प्रश्नों का हल आना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, आना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : परंतु इससे तो सिर्फ खुद के लिए ही हल आएगा न?

दादाश्री : खुद के लिए ही नहीं, हर एक के लिए धीरे-धीरे हल आना ही चाहिए। खुद के हल आ जाएँ तभी सामनेवाले का भी हल आएगा, ऐसा है। लेकिन खुद का इगोइज़म है तब तक सामनेवाले को नियम से असर होता ही रहेगा। वह इगोइज़म विलय हो ही जाना चाहिए।

ये तो इफेक्ट्स हैं सिर्फ! दुनिया में दुःख जैसी वस्तु ही नहीं है। यह तो रोंग बिलीफ़ है सिर्फ। उसे सच्चा मानता है। अब उसकी दृष्टि से तो वह वास्तव में वैसा ही है न? इसलिए किसी भी प्रकार के असर हों ही नहीं, उसके लिए हमें कैसा बनना चाहिए? हमें चोखा (खरा, अच्छा, शुद्ध, साफ) हो जाना चाहिए। हम चोखे हो गए तो बाकी का सब चोखा हुए बगैर रहेगा ही नहीं।

सामनेवाले का दोष किसी जगह पर है ही नहीं, सामनेवाले का क्या दोष? वे तो ऐसा ही मानकर बैठे हैं कि यह संसार ही सुख है और यही सच्ची बात है। उन्हें हम ऐसे मनवाने जाएँ कि तुम्हारी मान्यता गलत है, तो वह अपनी ही भूल है! अपनी ही ऐसी कोई कमी रह जाती है। मैंने मेरे अनुभव से देखा है। जब तक मुझे वैसा परिणाम रहता था, तब तक वैसे सभी इफेक्ट्स रहते थे, लेकिन जब मेरे मन में से वह चला गया, शंका गई, तो सबकुछ चला गया! इन सीढ़ियों को देखकर, अनुभव करके मैं चढ़ा हूँ। आप जो कहते हो, वे सभी सीढ़ियाँ (पायदान) मैंने देखी हैं। और उनमें से अनुभव लेकर 'मैं' ऊपर चढ़ा हूँ। मैं देख चुका हूँ, इसलिए मैं आपको मार्ग बता सकता हूँ। इन सब लोगों को मैं जो ज्ञान देता हूँ, तब उन्हें मेरी देखी हुई सीढ़ियों पर ही लाता हूँ। जो-जो मैंने अनुभव किया है, वही रास्ता आपको बताता हूँ। दूसरा रास्ता है ही नहीं न!

यदि पहले तो कोई दुःख का विचार आता था, तब हम कितना ही जोखिम उठाकर भी उसमें दूसरा सुख का आइडिया सेट कर देते थे। चिंता हो तो सिनेमा देखने चले जाते थे या कुछ और करते थे। दूसरों की क़ीमत पर भी उस घड़ी तो दुःख को खत्म कर देते थे और स्वरूप का ज्ञान होने के बाद वह दूसरों की क़ीमत पर दुःख को उड़ा नहीं देता है। इसलिए उसे दुःख बहुत सहन करना पड़ता है, ऐसा मेरे अनुभव में आया है। मैंने खुद भी यह अनुभव किया हुआ है, क्योंकि दूसरों के दुःख से मैं, सुखी होने के लिए उस घड़ी मेरे मन को दूसरे पर्याय नहीं दिखाता हूँ। और जगत् क्या कर रहा है कि खुद का दुःख निकालने के लिए दूसरे विषयों में पड़ता है, यानी कि उस दुःख को यहाँ से वहाँ धकेलता है, जगत् वही कर रहा है न? ज़रा सा दुःख पड़े कि पूँजी भुनाता रहता है न? भीतर कितना सामान भरा हुआ है? हम तो इसे (फाइल नं-१ से) कहते हैं कि इसे भुगतो ही। पूँजी को भुनाकर खा मत जाना! पूँजी ऐसी की ऐसी अनामत रखनी है।

ये दुःख आ पड़ें, उस पर लोग दवाई चुपड़ते हैं। अरे, उल्टा जोखिम

बढ़ाया तूने! उस दु:ख को तो तू अनुभवपूर्वक देखेगा तो उसका जोखिम कम हो जाएगा। दु:ख धक्के मारने से चला नहीं जाएगा। उसे तो बल्कि बढ़ाया, वह जमापूँजी में तो रहा ही। जिसने एक दु:ख पार किया वह फिर अनंत दु:ख पार कर सकेगा। फिर वह दु:ख पार करनेवाला लुटेरा बन गया! मैंने तो कितने ही दु:ख पार कर लिए हैं, इसलिए मैं लुटेरा (विशेषज्ञ) ही बन चुका हूँ न!

[५]

व्यवहार में उलझनें

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में जो गाँठें फूटती हैं, वे ऐसी-ऐसी फूटती हैं कि उनमें समाधान लेना कठिन हो जाता है?

दादाश्री : अपने ये 'पाँच वाक्य' हैं, वे आख़िर में समाधान ले आएँ, ऐसे हैं। जल्दी या देर से परंतु वे समाधान ले आते हैं। बाकी और किसी भी प्रकार से समाधान नहीं हो सकता। इसलिए ही यह जगत् गुह्य पहेली है। 'द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ।' वह कभी भी सोल्व होती ही नहीं। पूरे दिन खुद व्यवहार में उलझा हुआ ही होता है, फिर किस तरह वह आगे प्रगति करेगा? कोई न कोई पहेलियाँ खड़ी होती ही रहेगी। सामने कोई मिला कि पहेली खड़ी हुई।

प्रश्नकर्ता : एक पहेली पूरी की हो, वहाँ दूसरी पहेली मुँह फाड़कर खड़ी ही होती है।

दादाश्री : हाँ, यह तो पहेलियों का संग्रहस्थान है। परंतु यदि तू अपने आपको पहचान जाए तो हो गया तेरा कल्याण! वर्ना ये पहेलियाँ तो हैं ही डूबने के लिए! यह सब पराई पीड़ा है, ऐसा समझ में आ जाए, तो वह भी अनुभवज्ञान है। अनुभव में आए कि यह पीड़ा मेरी नहीं है, पराई है, तब भी कल्याण हो जाएगा।

'क' की करामात

अंदर सभी तरह-तरह के 'क' बैठे हुए हैं। 'क' अर्थात् करवानेवाले। लोभक, मोहक, क्रोधक, चेतक... मोहक मोह करवाता है। हमें मोह नहीं करना हो, फिर भी करवाता है!

प्रश्नकर्ता : दिमाग़ में ऐसा होता रहता है कि यह हम खुद जानबूझकर क्यों खड़ा कर रहे हैं? यह बंध रहा है या छूट रहा है, ऐसा विचार मुझे क्यों करना चाहिए?

दादाश्री : नहीं, वे विचार नहीं करने हों, तो भी आएँगे ही। वह 'क' आपसे करवाता है। आपको भीतर उलझाता रहता है और किसी के बारे में सोचने जैसा यह जगत् है ही नहीं। उसमें यदि कोई ऐसा सोचे तो उसका क्या होगा? मार खानी पड़ेगी! पराई पंचायत के लिए जगत् नहीं है। आपकी खुद की 'सेफसाइड' कर लेने के लिए यह जगत् है।

प्रश्नकर्ता : अब यह पंचायत मेरे दिमाग़ में घुस गई है तो उसे निकालूँ किस तरह?

दादाश्री : वह तो आप उसे पहचान लो कि यह तो दुश्मन है और यह रिश्तेदार है। ऐसे पहचान लेने के बाद दुश्मन को हम याद ही नहीं करेंगे।

'ज्ञानीपुरुष' की करुणा और समता

प्रश्नकर्ता : परंतु वह अंदर ऐसा घुसा हुआ होता है कि दिमाग़ में से हटता ही नहीं।

दादाश्री : देखो न! आपको मेरे लिए कितनी अधिक भक्ति है, वह सभी मैं अच्छी तरह पहचानता हूँ, परंतु फिर भी आपको भीतर कभी वह दिखाता है कि ये 'दादा' ऐसे हैं।

प्रश्नकर्ता : अरे, दादा को गालियाँ भी देता हूँ। दादा को नहीं, अंबालाल पटेल को!

दादाश्री : उन सबका मुझे घर बैठे पता चलता है, परंतु आपको 'क' कैसे फँसाते हैं और कैसे मार खिलवाते हैं! इसलिए हम आप पर करुणा रखते हैं कि ये मार खाते-खाते कभी न कभी समझदार हो जाएँगे। कभी न कभी पता चल जाएगा। ये मार किसलिए खिलवाते होंगे? मुझे क्या लेना-देना? दादा को क्या लेना-देना? 'मैंने ऐसों के साथ कहाँ मित्रता

की कि मुझे मार खिलवाते हैं', कभी न कभी आपको ऐसा अनुभव हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, वह अनुभव हो चुका है। होगा नहीं, हो चुका है! अनुभव कैसा कि मुझे ऐसा होता था कि 'यह बूढ़ा परेशान करता है और मैंने तो इस पटेल को होली का नारियल बनाया, परंतु वह सब इस बूढ़े ने ही ठीक कर दिया!' मैंने कहा, 'जान छूटी!' वर्ना मैंने तो दादा आपको इतनी सारी गालियाँ दी थीं कि कुछ बाकी ही नहीं रखा था। फिर भी भीतर ऐसा होता रहता था कि 'ये जो दादा हैं, वे तो सच्चे हैं।'

दादाश्री : वह हम भी घर बैठे जानते हैं सबकुछ। तब एक बार तो मैंने आपसे कहा भी था कि आप उल्टा-सुल्टा बोलो न, फिर भी उसमें मुझे आपत्ति नहीं है। आप तो अपनी तरह से यहाँ पर आते रहना, किसी दिन सबकुछ धुल जाएगा। आप उल्टा-सुल्टा बोलो उसकी हमारे लिए क़ीमत नहीं है। हम तो, आपका किस तरह श्रेय हो, वही देखते रहते हैं। आपका, आपके घरवालों का, सभी का श्रेय देखते रहते हैं। आप तो अपनी प्रकृति के अनुसार बोलते हो। आपकी दृष्टि वास्तव में वैसी नहीं है। आपकी दानत (मनोवृत्ति, वृत्ति) भी वैसी नहीं है, आपके विचार भी वैसे नहीं हैं। वह सब हम जानते हैं।

इसलिए अब 'ये मार खिलानेवाले हैं और ये मित्र हैं', इस प्रकार से आप माल को पहचान लो। वे मार खिलानेवाले आएँ तो 'आओ भाई, आपका ही घर है।' कहकर वापस निकाल देना।

अंदर जो दिखाते हैं वह सब गलत है, पूरा सौ प्रतिशत गलत दिखाते हैं, ऐसा आपको समझ में आता है न?

शंका का समाधान है ही नहीं

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, समाधान में रहना मुश्किल लगता है।

दादाश्री : समाधान किस तरह हो पाएगा? दुनिया में शंका का

समाधान नहीं होता! सच्ची बात का समाधान होता है, शंका का समाधान कभी भी नहीं हो पाता।

शंका अर्थात् क्या? खुद के आत्मा को बिगाड़ने का साधन। शंका दुनिया में सब से खराब वस्तु है और शंका सौ प्रतिशत गलत होती है, और जहाँ शंका नहीं रखता, वहाँ पर शंका होती है। जहाँ विश्वास रखता है, वहाँ पर ही शंका होती है और जहाँ शंका है वहाँ कुछ है ही नहीं। यों सभी प्रकार से आप मार खाते हो। हमने तो 'ज्ञान' से देखा है कि आप सभी प्रकार से मार खाते रहते हो।

प्रश्नकर्ता : यह शंकावाली बात समझ में नहीं आई कि जहाँ विश्वास रखते हैं, वहीं पर शंका होती है।

दादाश्री : ऐसा है न, आप किस ज्ञान के आधार पर इस दृष्टि को नाप सकते हो? अरे! खुली आँखों से देखा हो, तो भी गलत निकलता है! यह तो बुद्धिजन्य ज्ञान से, विचारणा करके देखते हो! वह आपको मार खिला-खिलाकर तेल निकाल देगा! इसलिए हम कहते हैं कि बुद्धि से दूर बैठो। बुद्धि तो थोड़ी देर भी चैन से नहीं बैठने देती। यह आपका तो बहुत अच्छा है। आपकी भावना अच्छी है, इसलिए वापस मार्ग पर आ गए।

प्रश्नकर्ता : फिर तो मैंने प्रतिक्रमण का ज़ोर बहुत बढ़ा दिया। सुबह जल्दी उठकर प्रतिक्रमण करता था।

दादाश्री : ऐसे प्रतिक्रमण यहाँ पर सीखे, इस प्रतिक्रमण ने बहुत काम कर दिया। इस प्रतिक्रमण के आधार पर तो आप जीवित हो। आपका तो इतना ही परिवार है। मेरा तो कितने ही सदस्यों का परिवार है। परंतु किसी पर शंका ही नहीं।

अर्थी में साथ में कौन?

प्रश्नकर्ता : 'मैं कहता हूँ वह सच है', ऐसा नहीं मानना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : सच्चा हो, फिर भी हमें क्या? मेरा कहना यह है कि

अर्थी में अकेले ही जाना होता है न! फिर ये बिना काम के झंझट सिर पर लेकर कहाँ फिरें?

जन्म पहलां चालतो ने मूआ पछी चालशे,
अटके ना कोई दि' व्यवहार रे, सापेक्ष संसार रे....

– नवनीत

अनंत जन्मों से इसी पीड़ा में पड़ा है! ये तो इस जन्म के पत्नी-बच्चे हैं, लेकिन हर एक जन्म में हर कहीं बीवी-बच्चे ही रखे हैं! राग-द्वेष किए हैं और कर्म ही बाँधे! ये संबंध-वंबंध जैसा कुछ नहीं होता। ये तो कर्म फल देते रहते हैं। घड़ीभर में उजाला देते हैं और घड़ीभर में अंधेरा देते हैं। घड़ी में मारते हैं और घड़ी में फूल चढ़ाते हैं! इसमें संबंध तो होते होंगे!

यह तो अनादि से चल ही रहा है! हम इसे चलानेवाले कौन? हम अपने कर्मों में से कैसे छूटें, वही 'देखते' रहना है। बच्चों का और हमारा कुछ लेना-देना नहीं है। यह तो बेकार की *उपाधि*! सभी लोग कर्मों के अधीन है। यदि सच्चे संबंध हों न, तो घर में सभी लोग तय कर लें कि हमें घर में झगड़ा नहीं करना है, लेकिन ये तो घंटे-दो घंटे बाद लड़ पड़ते हैं! क्योंकि किसी के हाथ में वह सत्ता है ही नहीं न! ये तो सब कर्म के उदय हैं। जैसे पटाखे फूटते हैं, वैसे पटापट-पटापट फूटते हैं। कोई सगा भी नहीं और स्नेही भी नहीं, तो फिर शंका-कुशंका करने को कहाँ रहा? 'आप' खुद 'शुद्धात्मा', यह 'आपका' 'पड़ोसी' शरीर ही आपको दुःख देता है न! और बच्चे तो 'आपके' 'पड़ोसी' के बच्चे। उनके साथ आपका क्या लेना-देना? और पड़ोसी के बच्चे नहीं मानें तो हम उनसे ज़रा कहने जाएँ तो बच्चे क्या कहते हैं कि, 'हम कौन-से आपके बच्चे? हम तो 'शुद्धात्मा हैं'। किसी को किसी की पड़ी नहीं!

प्रश्नकर्ता : यदि सार निकालें तो सभी हिसाब वसूलने आए हैं। और हिसाब चुका भी देते हैं, लेकिन उसमें 'समभाव से *निकाल*' होता है या नहीं, इतना ही हमें चाहिए।

दादाश्री : 'समभाव से *निकाल*' हो जाए तो कल्याण हो जाए।

प्रश्नकर्ता : आपने तो कृपा की जब कि हमने अपनी 'वक्रता' की, परंतु वे चोखे (खरा, अच्छा, शुद्ध, साफ) हो गए, यह हकीकत है।

दादाश्री : आप दादा के साथ इतने जुड़े रहे, वह बहुत हो गया। एक दिन इसका सार समझ में आ जाएगा कि सच्चा था यह।

प्रश्नकर्ता : अरे, एक दिन होता होगा? आज से ही, कल किसने देखा है? इसलिए ऐसी शक्ति दीजिए कि जो थोड़े-बहुत कर्म बाकी बचे हैं, उन्हें हम निपटा सकें और बुद्धि उल्टे रास्ते नहीं जाए।

दादाश्री : यहाँ आते रहो न, एक-एक घंटे जितना, तो उतना ही वह विलय होते-होते खत्म हो जाएगा।

'ज्ञान' से शंका का शमन

प्रश्नकर्ता : बहुत लोग ऐसे होते हैं कि जिनके लिए अभिप्राय रहते हैं कि 'यह व्यक्ति अच्छा है, यह लंपट है, यह लुच्चा है, अरे यह तो लूटने ही आया है।'

दादाश्री : अभिप्राय बंधते हैं, वही बंधन है। हमारी जेब में से कल कोई रुपये निकाल ले गया हो और आज वह वापस यहाँ पर आए तो हमें शंका नहीं रहती कि वह चोर है। क्योंकि कल उसके कर्म का उदय वैसा था, आज उसका उदय कैसा होगा, वह कैसे कह सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्राण और प्रकृति साथ में जाते हैं।

दादाश्री : उस प्राण और प्रकृति को नहीं देखना है। हमें उसके साथ लेना-देना नहीं है, वह कर्म के अधीन है बेचारा। वह उसके कर्म भोग रहा है, हम अपने कर्म को भोग रहे हैं। हमें सावधान रहना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : उस समय शायद उसके प्रति का समभाव रहता है या न भी रहता।

दादाश्री : हमारे कहे अनुसार आप करो कि 'यह सारा कर्म के अधीन है।' तो आपका काम हो जाएगा और यदि हमारा जानेवाला होगा, तभी जाएगा। इसलिए आपको घबराने का कोई कारण नहीं है।

अंधेरी रात में गाँव में दीये के प्रकाश में कमरे में साँप को घुसते हुए देखा, फिर आपसे से सोया जा सकेगा क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, भय लगेगा।

दादाश्री : और आप अकेले ही जानते हों, तो दूसरों को क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : वे तो आराम से सो जाएँगे!

दादाश्री : तब भगवान ने कहा कि वह आराम से सो रहा है, तो तू क्यों नहीं सोता? तब वह कहता है, 'मैंने साँप को आते हुए देखा, निकलते हुए देखूँगा तब सो जाऊँगा।' उसे साँप के घुसने का ज्ञान हुआ है। निकलने का ज्ञान होगा, तब छूटा जा सकेगा। लेकिन जब तक मन में वह शंका रहे तब तक नहीं छूटा जा सकता।

प्रश्नकर्ता : निकलते हुए नहीं देखा, तब तक शंका किस तरह जाएगी?

दादाश्री : 'ज्ञानी' के 'ज्ञान' से शंका जाएगी! कुछ किसी से भी, साँप से भी छुआ नहीं जा सके, ऐसा यह जगत् है। 'हम' ज्ञान में देखकर कहते हैं कि यह जगत् एक क्षणभर के लिए भी अन्यायी नहीं हुआ है। जगत् की कोर्ट, न्यायाधीश, मध्यस्थ, सभी अन्यायवाले हो सकते हैं, परंतु जगत् अन्यायी नहीं हुआ है। इसलिए शंका मत करना।

प्रश्नकर्ता : यानी भय नहीं रखें? साँप देखा तो भले ही देखा, परंतु उसका भय नहीं रखना है?

दादाश्री : नहीं रखने से भय नहीं रहे, ऐसा नहीं है, वह तो हो ही जाता है। अंदर ही अंदर शंका करता ही रहेगा। किसी से कुछ हो सके ऐसा नहीं है। ज्ञान में रहने से शंका जाएगी।

उपाय में उपयोग किसलिए?

इस जगत् में कोई ऐसा जन्मा ही नहीं कि जो आपका नाम दे! और नाम देनेवाला होगा, उसके लिए आप लाखों उपाय करोगे तब भी आपसे कुछ हो नहीं पाएगा। इसीलिए कौन सी तरफ जाएँ अब? लाख उपाय करने में पड़े रहें? नहीं, कुछ होगा नहीं। इसलिए सभी काम छोड़कर आत्मा की तरफ जाओ।

प्रश्नकर्ता : यानी मूल बात ही आकर खड़ी हो गई।

दादाश्री : हाँ, जो हो रहा है उसे 'देखते' रहो कि क्या हो रहा है? वह 'पर' और 'पराधीन' वस्तु है। और जो हो रहा है, वही न्याय हो रहा है और वही 'व्यवस्थित' है। अच्छे लोगों को फाँसी पर चढ़ाते हैं, वह भी न्याय ही है और दुष्ट व्यक्ति छूट गया वह भी न्याय है। आपको वह देखना नहीं आता, कि अच्छा कौन और दुष्ट कौन? आपको केस की जाँच करना नहीं आता है, आप अपनी भाषा में इसे केस कहते हो।

निज स्पंदन से पाए परिभ्रमण

प्रश्नकर्ता : तो फिर 'सही है, गलत है', ऐसा अर्थ करना ही नहीं चाहिए, ऐसा हुआ न?

दादाश्री : सही-गलत, वह सब बगैर समझ की बाते हैं। खुद की समझ से खुद न्यायाधीश बन बैठा है।

किंचित्मात्र आपको कोई कुछ कर सके ऐसा है ही नहीं, यदि आप किसी को परेशान नहीं करो तो। उसकी मैं आपको गारन्टी लिख देता हूँ। यहाँ निरे साँप पड़े हों, फिर भी कोई आपको छुएगा नहीं, ऐसा गारन्टीवाला जगत् है।

ये ज्ञानी किस तरह सहीसलामत और आनंद में रहते होंगे? क्योंकि ज्ञानी जगत् को जानकर बैठे हुए हैं कि 'कुछ भी होनेवाला नहीं है, कोई नाम देनेवाला नहीं है, मैं ही हूँ सब में, मैं ही हूँ, मैं ही हूँ, दूसरा कोई है ही नहीं!'

बहुत समझने जैसा जगत् है। लोग समझते हैं वैसा यह नहीं है। शास्त्रों में लिखा है, वैसा यह जगत् नहीं है। शास्त्रों में तो पारिभाषिक भाषा में है, वह सामान्य व्यक्तियों को समझ में आ सके, ऐसा नहीं है।

आपने दख़लंदाज़ी करना बंद हो जाए तो आपमें दख़लंदाज़ी करनेवाला दुनिया में कोई नहीं होगा। आपकी दख़लंदाज़ी के ही परिणाम हैं ये सब! जिस घड़ी आपकी दख़लंदाज़ी बंद हो जाएगी, तब आपका कोई परिणाम आपके पास नहीं आएगा। आप पूरी दुनिया के, पूरे ब्रह्मांड के स्वामी हो। कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) ही नहीं है आपका। आप परमात्मा ही हो, कोई आपको पूछनेवाला नहीं है।

ये सब अपने खुद के ही परिणाम हैं। आप आज से किसी को स्पंदन फेंकने का, किंचत्‌मात्र किसी के लिए विचार करना बंद कर दो। विचार आए तो प्रतिक्रमण करके धो डालना, ताकि पूरा दिन किसी के भी प्रति स्पंदन बिना का बीते! इस प्रकार से दिन बीते तो बहुत हो गया, वही पुरुषार्थ है।

[६]

विश्वकोर्ट में से निर्दोष छुटकारा कब?

हमसे किसी को किंचित्‌मात्र दु:ख हो जाए, तब कोर्ट में फिर केस चलता रहेगा! जब तक कोर्ट में झगड़े हैं, तब तक छूटेंगे नहीं। ये कोर्ट के झगड़े में आए हुए लोग हैं। अब कोर्ट के झगड़े मिटाने हों, तो हमें किसीने गाली दी हो तो उसे छोड़ देना है और हमें किसी को भी गाली नहीं देनी है। क्योंकि यदि हम दावा करेंगे, तब भी फिर केस चलता रहेगा! हम फौज़दारी करेंगे तो वापस वकील ढूँढने जाना पड़ेगा। अब हम यहाँ से मुक्त हो जाना है। यहाँ अच्छा नहीं लगता, इसलिए हमें रास्ता निकालना है, सबकुछ छोड़ देना है!

किसी को किंचित्‌मात्र दु:ख हो तो कोई जीव मोक्ष में नहीं जा सकता। फिर वे साधु महाराज हों या चाहे जो हों। सिर्फ शिष्य को ही दु:ख होता हो, तब भी महाराज को यहाँ पर रुके रहना पड़ेगा, चलेगा ही नहीं!

जब कि अज्ञानी तो सभी को दु:ख ही देता है। दु:ख नहीं देता हो फिर भी भाव तो भीतर दु:ख के ही बरतते रहते हैं। 'अज्ञानता है वही हिंसा है और ज्ञान, वह अहिंसक भाव है।'

किसी को दु:ख देने की इच्छा तुझे होती नहीं है न अब?

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी दे दिया जाता है।

दादाश्री : दु:ख दे दिया जाए तो क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण।

दादाश्री : प्रतिक्रमण किया तो फिर कोर्ट में केस नहीं चलेगा। 'भाई, तुझसे माफ़ी माँगते हैं।' ऐसा करके *निकाल* कर दिया।

हमसे किसी को थोड़ा भी दुःख हो ऐसी वाणी निकलती ही नहीं। सामनेवाला तो भले ही कैसा भी पागलपन करे, उसे तो कुछ पड़ी ही नहीं है न? जिसे छूटना है, उसे ही पड़ी है न?

इसलिए यदि दोष नहीं होते हों तो प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत ही नहीं है। प्रतिक्रमण तो आपसे दोष हो जाए तब करना। सामनेवाला कहे कि 'साहब, दोष हों ही नहीं, इतनी अधिक मेरी शक्ति नहीं है। दोष तो हो जाते हैं।' तब तो हम कहेंगे कि, 'शक्ति नहीं है तो प्रतिक्रमण करना।'

कोई जैसा-तैसा बोले, लेकिन उस घड़ी यदि हम जवाब दे दें, फिर वह जवाब भले ही कितना भी सुंदर हो, लेकिन थोड़ा सा भी स्पंदन फिंक जाएँ, तब भी नहीं चलेगा। सामनेवाले को सबकुछ ही बोलने की छूट है, वह स्वतंत्र है। अभी वे बच्चे ढेला फेंके तो उसमें वे स्वतंत्र नहीं है? पुलिसवाला जब तक रोके नहीं, तब तक स्वतंत्र ही है। सामनेवाला जीव तो, जो चाहे वह करे। टेढ़ा चले और बैर रखे तब तो लाख जन्मों तक मोक्ष में नहीं जाने देगा! इसीलिए तो हम कहते हैं कि 'सावधान रहना। टेढ़ा मिले तो जैसे-तैसे करके, भाईसाहब करके भी छूट जाना! इस जगत् से छूटने जैसा है।'

दुःख देने के प्रतिस्पंदन

इस जगत् में आप किसी को दुःख दोगे, तो उसका प्रतिस्पंदन आप पर पड़े बगैर रहेगा नहीं। स्त्री-पुरुष के तलाक लेने के बाद पुरुष फिर से विवाह करे, फिर भी उस स्त्री को दुःख रहे, तो उसके प्रतिस्पंदन उस पुरुष पर पड़े बगैर रहेंगे ही नहीं। और उसे वह हिसाब फिर से चुकाना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : ज़रा विस्तारपूर्वक समझाइए न!

दादाश्री : यह क्या कहना चाहते हैं कि जब तक आपके निमित्त

से किसी को थोड़ा भी दु:ख होता है, तो उसका असर आप पर ही पड़ेगा। और वह हिसाब आपको पूरा करना पड़ेगा, इसलिए सचेत रहो।

आप ऑफिस में आसिस्टेन्ट को झिड़को तो उसका असर आप पर पड़े बगैर रहेगा या नहीं? पड़ेगा ही। बोलो अब जगत् दु:ख में से मुक्त किस तरह हो पाएगा? जिससे किसी को भी किंचित्मात्र दु:ख नहीं होता हो, वह खुद सुखी होता है। उसमें दो मत हैं ही नहीं। हम जो आज्ञा देते हैं वह, 'आप सब दु:ख में से मुक्त हो जाओ', ऐसी आज्ञा देते हैं। और आज्ञा पालन करने में आपको कुछ भी परेशानी नहीं आती। खाने-पीने की, घूमने-फिरने की सभी छूट। सिनेमा देखने जाना हो, तो उसकी भी छूट! कोई कहे कि मुझे तीन बाल्टियों से नहाना है, तो हम कहें कि चार बाल्टियों से नहा। हमारी आज्ञा बगैर किसी परेशानी की हैं।

इस तरह किसी का असर छोड़ता नहीं है और बच्चे को सुधारने जाओ, लेकिन इससे उसे दु:ख हो जाए तो उसका असर आप पर पड़ेगा। इसलिए ऐसा कहो कि जिससे उस पर असर नहीं पड़े और वह सुधरे। तांबे में और काँच के बरतन में फर्क नहीं होता? आप तांबे के और काँच के बरतन को एक समझते हो? तांबे के बरतन में गड्ढा पड़े तो निकाला जा सकता है। लेकिन काँच का तो टूट जाएगा। बच्चे की तो पूरी ज़िंदगी खत्म हो जाएगी।

इस अज्ञानता से ही मार पड़ती है। इसे सुधारने के लिए आप कहते हो, उसे सुधारने के लिए आप कहते हो, परंतु कहने से उसे जो दु:ख हुआ, उसका असर आप पर पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : इस काल में बच्चों को तो कहना पड़ता है न?

दादाश्री : कहने में हर्ज नहीं है, परंतु ऐसा कहो कि उसे दु:ख नहीं हो और उसके प्रतिस्पंदन वापस आप पर नहीं आएँ। आपको तय कर लेना है कि मुझे किसी को किंचित्मात्र दु:ख नहीं देना है।

याद-शिकायतों का निवारण

याद कहाँ से आती है? याद से कहें, हमें कुछ लेना-देना नहीं है, कुछ

नहीं चाहिए, फिर भी तुम क्यों आती हो? तब वह कहेगी, 'आपकी यह शिकायत है, इसलिए आई हूँ।' तब हम कहें, 'लाओ तेरा *निकाल* कर दें।'

जो याद आए, बैठे-बैठे उसका 'प्रतिक्रमण' करना है, और कुछ भी नहीं करना है। जिस रास्ते हम छूटे हैं, वही रास्ते आपको बता दिए हैं। अत्यंत आसान और सरल रास्ते हैं, नहीं तो इस संसार से छूटा ही नहीं जा सकता। यह तो भगवान महावीर छूटे, वर्ना नहीं छूट सकते। भगवान तो महा-वीर कहलाए! फिर भी उनके कितने ही उच्च और निम्न अवतार हुए थे।

ज्ञानी के कहे अनुसार चलोगे, तो सबकुछ ठीक हो जाएगा।

याद क्यों आती है? अभी भी किसी जगह पर चोंट (चित्त का चिपकना) है, वह भी 'रिलेटिव' चोंट कहलाती है, 'रियल' नहीं कहलाती।

'इस जगत् में कोई भी विनाशी चीज़ मुझे नहीं चाहिए।' ऐसा आपने नक्की किया है न? फिर भी क्यों याद आता है? इसलिए प्रतिक्रमण करो। प्रतिक्रमण करते-करते फिर से वापस याद आए, तब हमें समझना चाहिए कि अभी तक यह शिकायत बाकी है! इसलिए फिर से प्रतिक्रमण ही करना है।

प्रश्नकर्ता : वह तो दादा, जब तक उनका बाकी रहे, तब तक प्रतिक्रमण होते ही रहते हैं। उसे बुलाना नहीं पड़ता।

दादाश्री : हाँ, बुलाना नहीं पड़ता। हमने नक्की किया हो, तो वे अपने आप होते ही रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : उदय आते ही रहते हैं।

दादाश्री : उदय तो आते ही रहेंगे। परंतु उदय यानी क्या? भीतर जो कर्म था, वह फल देने के लिए सम्मुख हुआ। फिर वह कड़वा हो या मीठा हो, जो आपका हिसाब हो वह! कर्म का फल सम्मुख आते ही यदि हमें चेहरे पर उकताहट लगे, तो समझना कि भीतर दु:ख देने आया है और यदि चेहरे पर आनंद दिखे तो समझना कि उदय सुख देने आया है। अर्थात् उदय आए तब हमें समझ जाना चाहिए कि ''भाई आए हैं, इसका 'समभाव से *निकाल*' कर देना है।''

प्रश्नकर्ता : परंतु उस समय प्रकृति थोड़ा-बहुत ज़ोर लगाती है न फिर से? प्रकृति का स्वभाव निकलता तो है न?

दादाश्री : सबकुछ निकलेगा, फिर भी 'हमें' 'देखते' रहना है। वह सारा अपना ही हिसाब है।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति का हिसाब तो पूरा करना है न?

दादाश्री : उसमें 'हमें' कुछ भी नहीं करना है। अपने आप ही होता रहेगा। 'हमें' तो 'देखते' रहना है कि कितना हिसाब बाकी रहा! 'हम' ज्ञाता-दृष्टा, परमानंदी, 'हमें' सभी कुछ पता चलता है।

प्रतिक्रमण कर रहे हैं, तो 'चंदूभाई' करते हैं। उससे 'हमें' क्या लेना-देना? 'हमें' 'देखते' रहना है कि 'चंदूभाई' ने प्रतिक्रमण किया या नहीं किया? या वापस आगे धकेला? धकेला हो तो, वह भी पता चल जाएगा!

'चंदूभाई' क्या करते हैं, क्या क्या करते हैं उसे 'हमें' 'देखते' रहना है, वह पुरुषार्थ कहलाता है। 'देखना' चूक गए, वह प्रमाद।

प्रश्नकर्ता : 'देखते' रहना वह शुद्धात्मा का काम है?

दादाश्री : स्वरूप का ज्ञान होने के बाद वह काम होता है, उसके बिना नहीं होता।

याद क्यों आया? बिना कारण के याद नहीं आता है, उसकी कोई भी शिकायत होगी तभी आएगा। हमें क्यों कुछ याद नहीं आता? इसलिए जो-जो याद आता है, उसके प्रतिक्रमण करते रहना।

प्रश्नकर्ता : जो पुराना भरा हुआ माल है, वह याद आना चाहिए। ऐसा है क्या?

दादाश्री : आता ही है वह। जो माल खपनेवाला है या कर्म का बंधन करनेवाला है वह याद आता ही है। स्वरूप का ज्ञान हो तो माल खप जाता है और अज्ञान हो तो उसी माल से कर्म का बंधन होगा! माल

वही का वही, लेकिन अज्ञान दशा में बीज के रूप में होता है और ज्ञानदशा में बीज उबालकर खा गए, उसके जैसा होता है। उबालने के बाद बीज को उगने का कहाँ रहा?

हार्टिली पछतावा

विचार भीतर पड़ी हुई गाँठ में से फूटते हैं। 'एविडेन्स' मिला कि विचार फूटते हैं। नहीं तो यों तो ब्रह्मचारी जैसा दिखे, लेकिन रास्ते में संयोग मिला कि विषय के विचार आते हैं!

प्रश्नकर्ता : वे विचार आते हैं, वे वातावरण में से ही न? सांयोगिक प्रमाणों के आधार पर ही उसके संस्कार, उसके साथवाले दोस्त, वह सभी एकसाथ मिलता है न?

दादाश्री : हाँ, बाहर का 'एविडेन्स' मिलना चाहिए। उसके आधार पर ही मन की गाँठें फूटती हैं, नहीं तो नहीं फूटतीं।

प्रश्नकर्ता : उन विचारों को स्वीकार करने के लिए मार्गदर्शन देनेवाला कौन है?

दादाश्री : वह सब कुदरती ही है। लेकिन साथ-साथ आपको समझना चाहिए कि यह बुद्धि गलत है, तब से ही वह उन गाँठों का छेदन कर देगा। इस जगत् में सिर्फ ज्ञान ही प्रकाश है। यह मेरे लिए अहितकारी है, ऐसा उसे समझ में आए, ऐसा ज्ञान उसे प्राप्त हो जाए तो वह गाँठों को छेद डालेगा।

प्रश्नकर्ता : परंतु वह तो सभी ऐसा मानते हैं कि 'झूठ बोलना पाप है, बीड़ी पीना खराब है, माँसाहार करना, असत्य बोलना, गलत प्रकार का आचरण, वह सब खराब है।' फिर भी लोग गलत करते ही जाते हैं। वह क्यों?

दादाश्री : 'यह सब गलत है, यह नहीं करना चाहिए', ऐसा सभी बोलते हैं, वे नाटकीय बोलते हैं। सुपरफ्लुअस बोलते हैं, हार्टिली नहीं बोलते। वर्ना यदि वैसा हार्टिली बोलें, तो थोड़े समय में दोषों को जाए

बिना चारा ही नहीं! आपका चाहे जितना खराब दोष हो, परंतु उसका आपको खूब हार्टिली पछतावा हो तो वह दोष फिर से नहीं होगा और फिर से हो जाए तो भी उसमें हर्ज नहीं है, परंतु पछतावा खूब करते रहना।

प्रश्नकर्ता : यानी मनुष्य के सुधरने की संभावना है क्या?

दादाश्री : हाँ, बहुत ही संभावना है, परंतु सुधारनेवाला होना चाहिए। उसमें 'M.D.' चाहिए, 'F.R.C.S.' डॉक्टर नहीं चलेगा, घोटालेवाला नहीं चलेगा, उसके तो 'सुधारनेवाले' चाहिए।

अब कुछ लोगों को ऐसा होता है कि खूब पछतावा किया, फिर भी वापस वैसा ही दोष हो जाता है, तो उसे ऐसा लगता है कि यह ऐसा क्यों हुआ-इतना अधिक पछतावा हुआ फिर भी? वास्तव में तो यदि हार्टिली पछतावा हो, तो उससे दोष अवश्य जाता ही है!

दोषों का शुद्धिकरण

खुद की भूलें दिखे, वह आत्मा है। खुद अपने आप के लिए निष्पक्षपाती हुआ, वह आत्मा है। आप आत्मा हो, शुद्ध उपयोग में रहो तो आपको कोई कर्म छुएगा ही नहीं। कुछ लोग मुझे कहते हैं कि आपका ज्ञान सच्चा है, परंतु आप गाड़ियों में घूमते हो, वह जीवहिंसा नहीं मानी जाएगी? तब मुझे कहना पड़ता है कि, 'हम शुद्ध उपयोगी हैं।' और शास्त्र कहते हैं कि,

'शुद्ध उपयोग ने समताधारी, ज्ञानध्यान मनोहारी रे,
कर्म कलंक को दूर निवारी, जीव वरे शिवनारी रे।'

खुद के दोष दिखने लगें, तभी से तरने का उपाय हाथ में आ गया। चंदूभाई में जो-जो दोष हैं, वे सभी 'हमें' दिखते हैं। यदि खुद के दोष नहीं दिखें तो, यह 'ज्ञान' किस काम का? इसलिए कृपालुदेव ने कहा था,

'हुं तो दोष अनंतनुं भाजन छुं करुणाळ,
दीठा नहीं निजदोष तो तरीए कोण उपाय?'

दोष हो जाए उसमें हर्ज नहीं है। उस पर उपयोग रखना है। उपयोग रखा तो दोष दिखते ही रहेंगे। और कुछ भी नहीं करना है।

चंदूभाई से 'आपको' इतना ही कहना पड़ेगा कि प्रतिक्रमण करते रहो। आपके घर के सभी लोगों के साथ आपको, 'मुझसे पहले कुछ भी मनदुःख हुआ हो, इस भव में, संख्यात या असंख्यात भवों में जो-जो राग-द्वेष, विषय-कषाय से दोष किए हों मैं उनकी क्षमा माँगता हूँ।' इस तरह रोज़ एक-एक घंटा निकालना। घर के हरएक व्यक्ति के, आसपास के सर्कल के, हरएक को लेकर, उपयोग रखकर प्रतिक्रमण करते रहना चाहिए। ऐसा करने के बाद ये सारे बोझ हल्के हो जाएँगे। वर्ना यों ही हल्का नहीं हुआ जाता। हमने पूरे जगत् के साथ इस तरह निवारण किया है, तभी तो यह छुटकारा हुआ।

जब तक सामनेवाले का दोष खुद के मन में है, तब तक चैन नहीं पड़ने देता। प्रतिक्रमण करो तो वह खत्म हो जाएगा। राग-द्वेषवाली हर एक *चीकणी फाइल* (गाढ़ ऋणानुबंधवाले व्यक्ति अथवा संयोग) को उपयोग रखकर प्रतिक्रमण करके शुद्ध करना है। राग की फाइल हो, उसके तो खास प्रतिक्रमण करने चाहिए।

प्रतिक्रमण हो गए यानी चाहे जितना बैर हो, फिर भी इस भव में ही छूट जाएँगे। प्रतिक्रमण ही एक उपाय है। भगवान महावीर का सिद्धांत, आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान का है। जहाँ पर आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान नहीं है, वहाँ पर मोक्षमार्ग ही नहीं है।

हममें स्थूल दोष या सूक्ष्म दोष नहीं होते हैं। ज्ञानी के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम दोष होते हैं। जो अन्य किसी को किंचित्मात्र भी अड़चनरूप नहीं होते। हमारे सूक्ष्म से सूक्ष्म, अति सूक्ष्म दोष भी हमारी दृष्टि से बाहर नहीं जा सकते। और किसी को पता नहीं चलता कि हमारा दोष हुआ है।

आपके दोष भी हमें दिखते हैं, परंतु हमारी दृष्टि आपके शुद्धात्मा की तरफ होती है, उदयकर्म की तरफ दृष्टि नहीं होती। हमें सभी के दोषों

का पता चल जाता है, परंतु उसका हम पर असर नहीं होता। इसलिए ही कवि ने लिखा है कि,

'मा कदी खोड काढे नहीं,
दादाने य दोष कोईना देखाय नहीं।'

आपकी निर्बलता हम जानते हैं और निर्बलता होती ही है। इसलिए हमारी सहज क्षमा होती है। क्षमा देनी नहीं पड़ती, मिल जाती है, सहज रूप से। सहज क्षमा गुण तो अंतिम दशा का गुण कहलाता है। हमारी सहज क्षमा होती है। इतना ही नहीं, परंतु आपके प्रति हमें एक सरीखा प्रेम रहता है। जो बढ़े-घटे, वह प्रेम नहीं होता, वह आसक्ति है। हमारा प्रेम बढ़ता नहीं और घटता भी नहीं। वही शुद्ध प्रेम, परमात्म प्रेम है!

दोष हुआ कि तुरंत ही आपको शूट एट साइट प्रतिक्रमण करना चाहिए। 'आपको' 'चंदूभाई' से कहना है, 'चलो चंदूभाई, प्रतिक्रमण करो।' चंदूभाई कहें कि, 'ये बुढ़ापा आ गया, अब नहीं होता।' तब आपको उसे कहना है कि, 'हम आपको शक्ति देंगे।' फिर बुलवाना कि बोलो, 'मैं अनंत शक्तिवाला हूँ' तब फिर शक्ति आ जाएगी।

जिसे दोष दिखने लगे, पाँच दिखे तब से ही समझना कि अब निबेड़ा आनेवाला है।

जितने दोष दिखे, वे दोष गए! तब कोई कहेगा, वैसा का वैसा दोष फिर से दिखता है। वास्तव में वही दोष फिर से नहीं आता। यह तो एक-एक दोष प्याज़ की परतों की तरह अनेक परतोंवाले होते हैं। यानी जब एक परत उखड़े, तब हम प्रतिक्रमण करके निकाल देते हैं, तब दूसरी परत आकर खड़ी रहती है, वही की वही परत फिर से नहीं आती। तीस परतें थीं, उनमें से उनतीस रही। उनतीस में से एक परत जाएगी तब अट्ठाइस रहेंगी। ऐसे घटती जाएँगी और अंत में वह दोष खत्म हो जाएगा!

[७]

प्रकृति के साथ तन्मय दशा में आत्मप्रकाश की निर्लेपता

मूल बात को समझो कि यह हकीकत क्या है? और मूल बात क्या है? इतना ही जानने के लिए यह मनुष्यत्व है। इसमें 'अपना क्या और क्या अपना नहीं है' इतना जान लो। फिर रोना-धोना करना हो तो करो। अपनी खुद की दुनिया में हमने ही भूल खाई है। पराई दुनिया में आए होते तो बात अलग थी!

प्रश्नकर्ता : दुनिया अपनी कहाँ से है?

दादाश्री : तो किसकी है? अपनी का अर्थ इतना ही कि अपना कोई मालिक नहीं है और अपना कोई *ऊपरी* नहीं है। दुनिया अपनी ही है। इस दुनिया को देखने का लाभ उठाओ, जानने का लाभ उठाओ तो सही है।

प्रश्नकर्ता : उसे देखने-जानने में हम फिर से अंदर घुस जाते हैं और उलझ जाते हैं।

दादाश्री : जो उलझ जाता है, वह हमारा स्वरूप नहीं है। फिर भी 'यह मेरा स्वरूप है, मैं उलझ गया' ऐसा मानता है, वहीं पर भूल खाता है।

'देखे-जाने' तो कुदरत कैसी सुंदर दिखेगी! परंतु उसे भीतर चिंता होती है, इसलिए कुदरत को देखता ही नहीं है न! बाग-बगीचे बहुत सुंदर होते हैं, परंतु उसे ज़हर जैसे लगते हैं। जगत् हमेशा मनोहारी ही है। ये गायें-भैंसे कितनी अच्छी दिखती हैं! परंतु इन मनुष्यों का संग करते हैं इसलिए गायों-भैंसों को भी परेशानी आती है।

प्रश्नकर्ता : इन गायों-भैंसों को पता चलता होगा कि मनुष्य ऐसे टेढ़े हैं?

दादाश्री : नहीं, वे मनुष्य में से ही बने हैं। मनुष्य के साथ ही साथ टच में रहती हैं बेचारी। ये गायें-भैंसे तो संबंधियों की ही बेटियाँ आई होती हैं! और कुत्ता घर में बैठे-बैठे भौंकता है, वह भी संबंधी ही आए होते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह जीव मर जाए, फिर तुरंत जन्म ले लेते हैं?

दादाश्री : तुरंत ही, उसमें देर ही कितनी! इसमें कोई जन्म देनेवाला भी नहीं है और कोई लेनेवाला भी नहीं!

प्रश्नकर्ता : यानी यह सारा स्वयं-संचालित है?

दादाश्री : हाँ, यह सारा स्वयं-संचालित है। स्वभाव से ही संचालित है। जैसे पानी का स्वभाव नीचे जाने का है, वह नीचे ही जाएगा। उसे आप चाहे जितना करो, फिर भी स्वभाव बदलेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : हमारी प्रकृति है, तो कुछ प्रकृतियाँ ऊँची जाती हैं और कुछ नीची जाती हैं।

दादाश्री : उन सभी प्रकृतियों को देखना ही है। यह मोटर की लाइट है, वह बांदरा (मुंबई की एक जगह) की खाड़ी के कीचड़ को छुए, खाड़ी के पानी को छुए, खाड़ी की गंध को छुए, परंतु लाइट को कुछ भी छूता नहीं है! वह लाइट कीचड़ को छूकर जाती है परंतु कीचड़ उसे नहीं छूता। गंध नहीं छूती, कुछ भी नहीं छूता। हमें भय रखने का कोई कारण ही नहीं है कि लाइट कीचड़वाली हो जाएगी, गंधवाली हो जाएगी या पानीवाली हो जाएगी। यह लाइट यदि ऐसी है तो आत्मा की लाइट कितनी अच्छी होगी! आत्मा लाइट स्वरूप ही है!

प्रश्नकर्ता : हम प्रकृति के साथ तन्मयाकार हो गए हैं, तो हमारा जो मिश्रचेतन है, उसे तो गंदगी छूती है न?

दादाश्री : उसे छुए उसे हमें 'देखना' है!

प्रश्नकर्ता : परंतु उसका हम पर असर होता है, उसका क्या?

दादाश्री : उसे भी 'हमें' देखना है! लाइट का काम क्या है? 'देखना'। उसमें पहाड़ी आए, कीचड़ आए, पानी आए, गंध आए तो गंध, झाड़ियाँ आए तो झाड़ियों में से भी घुसकर निकल जाती है। परंतु उसे झाड़ी लगती नहीं है। यह लाइट यदि ऐसी है, तो वह लाइट कितनी अच्छी होगी!

आप अंधेरे में ड्राइविंग करो तो आपको पता नहीं चलता कि कितने जीव-जंतु (जीवाणु) कुचले जाते हैं। लाइट लगाओ तो तुरंत पता चलता है कि इतने सारे जीव-जंतु टकरा रहे हैं! अरे, ये तो लाइट के कारण दिखा। तो क्या पहले नहीं टकरा रहे थे? टकरा ही रहे थे। वे फ़ॉरेनर्स को नहीं दिखते और हमें लाइट है इसलिए दिखते हैं। हमें दिखते हैं, इसीलिए हम *उपाधि* में होते हैं और उन्हें *उपाधि* नहीं होती। इस तरह यह जगत् चलता है!

प्रश्नकर्ता : परंतु *उपाधि* में तो आना ही पड़ता है न सभी को?

दादाश्री : *उपाधि* में आएँ हैं इसलिए हम *निर्उपाधि* का रास्ता ढूँढ निकालते हैं। लेकिन जो *उपाधि* में आया ही नहीं, वह *निर्उपाधि* का रास्ता किस तरह ढूँढ़ेगा? उसे तो अभी *उपाधि* में आना बाकी है।

एक ही बार बात को समझना है। यह बाहर की लाइट किसी को छूती नहीं और इस लाइट की वजह से जीवजंतु टकराते हुए दिखते हैं, नहीं तो कुछ भी नहीं दिख रहा था। यानी समझ लेने के बाद कोई चिंता नहीं और *उपाधि* भी नहीं! लेकिन 'हम' 'जान लें' कि लाइट हुई, इस वजह से दिख रहा है कि ये जीवजंतु कुचले जा रहे हैं। इनमें से किसी चीज़ के 'हम' कर्ता नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में किसी भाग में नैमित्तिक कर्तापन आता है। उसमें हम जब अधिक तन्मयाकार हो जाते हैं, तब अधिक रिएक्शन आते हैं।

दादाश्री : उसे भी 'हमें' देखना है। नहीं देखो तो कोई बदलाव होगा नहीं। हमें काम करते जाना है। सुबह पहले चाय पीते हो या नहीं पीते? उसमें कहीं 'करते रहना' ऐसा कहने की ज़रूरत पड़ती है? फिर भी ऐसा नहीं बोलना चाहिए कि 'काम मत करना, ऐसे ही चलता रहेगा।' ऐसा बोलना, वह गुनाह है। हमें तो 'काम करते जाओ' ऐसे कहना है।

'व्यवस्थित' की संपूर्ण समझ से केवलज्ञान

गाड़ी में से उतार दें तो समझना कि 'व्यवस्थित' है। फिर वापस बुलाएँ, तब भी 'व्यवस्थित' और फिर उतार दें, तब भी 'व्यवस्थित'। ऐसे सात बार उतार दें, तब भी 'व्यवस्थित'! सात बार चढ़ाएँ तब भी 'व्यवस्थित'। ऐसा जिसे बरतता है उसे केवलज्ञान हो जाएगा! हमने ऐसा 'व्यवस्थित' दिया है कि केवलज्ञान हो जाए, 'व्यवस्थित' यदि संपूर्ण, पूरापूरा समझ ले तो! 'व्यवस्थित' तो चौबीसों तीर्थंकरों के शास्त्रों का सार है।

प्रश्नकर्ता : आपको पहले व्यवस्थित समझ में आया होगा, बाद में यह ज्ञान देने लगे न?

दादाश्री : हाँ, बाद में ही दिया था न! 'व्यवस्थित' मेरे अनुभव में कितने ही जन्मों से आ चुका है और उसके बाद ही मैंने यह बाहर दिया। नहीं तो दे ही नहीं सकते न! इसमें तो जोखिमदारी आती है। वीतरागों का एक अक्षर भी बोलना और किसी को उपदेश देना, बड़ी जोखिमदारी है। आपको कितनी बार मोटर में से उतार दें तो 'व्यवस्थित' हाज़िर रहेगा?

प्रश्नकर्ता : चार-पाँच बार, फिर कमान छटक जाएगी।

दादाश्री : कमान छटक जाए तो वह *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) की छटकेगी। 'हमें' तो 'जानना' है कि यह *पुद्गल* की कमान छटकी है। हमें तो क्या कहना है कि, 'यह *पुद्गल* की कमान छटकी है, फिर भी मैं वापस आ गया और मोटर में बैठ गया।' यह कमान छटकी है, ऐसा 'हमें' 'जानना' चाहिए। यह 'व्यवस्थित' ऐसा सुंदर है! यदि कमान छटके और वापस आड़ा होकर (नाराज़ होना) चला जाए और फिर वापस नहीं आए तो वह गलत कहलाएगा। यह 'व्यवस्थित' समझ में आ गया, फिर कुछ भी दख़लंदाज़ी करने जैसा है ही नहीं। *पुद्गल* का जो होना हो सो हो, परंतु हमें आड़ा नहीं होना है। *पुद्गल* तो हमें आड़ा करने की ताक में लगा रहता है।

[८]

असरों को स्वीकार करनेवाला

प्रश्नकर्ता : अंतःकरण के कौन-से भाग को पहले इफेक्ट होता है?

दादाश्री : पहले बुद्धि को इफेक्ट होता है। बुद्धि यदि हाज़िर नहीं हो, तो असर नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : भारी विकट संयोगों में अंतःकरण से आगे कौन-से भाग को इफेक्ट होता है?

दादाश्री : आगे किसी को असर नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : 'प्रतिष्ठित आत्मा' को होता है?

दादाश्री : वह 'प्रतिष्ठित आत्मा' ही कहलाता है। अंतःकरण में क्रोध-मान-माया-लोभ, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, उन सभी को 'प्रतिष्ठित आत्मा' ही कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर 'प्रतिष्ठित आत्मा' और अंतःकरण, उन्हें अलग क्यों किया?

दादाश्री : अलग नहीं कहा है। 'शुद्धात्मा' के अलावा पूरा ही 'प्रतिष्ठित आत्मा'। फिर पूछो, तब अंतःकरण अलग, इन्द्रियाँ अलग, मन अलग, ऐसे जवाब तो देना पड़ता है न!

प्रश्नकर्ता : बुद्धि को असर होता है, तो मन को असर नहीं पहुँचता?

दादाश्री : बुद्धि में से मन को पहुँचता है। यदि बुद्धि बीच में नहीं होगी तो कोई भी असर ही नहीं होगा।

हममें बुद्धि नहीं है, इसलिए हमें कोई असर नहीं होता। हमारे भीतर भी तरह-तरह के 'चालबाज़' हैं, वे तरह-तरह का कह जाते हैं, परंतु यदि बीच में स्वीकार करनेवाली बुद्धि होगी तो गड़बड़ होगी न! बुद्धि स्वीकार करती है, फिर मन पकड़ लेता है और मन धमाचौकड़ी मचा देता है!

प्रश्नकर्ता : बुद्धि ने स्वीकार किया, फिर जुगाली करने की क्रिया कौन करता है?

दादाश्री : बुद्धि स्वीकार करती है और फिर मन को पहुँचता है। अब मन ही उछलकूद करता है, जुगाली करने का काम भी मन ही करता है। मन विरोधाभासी है। वह घड़ीभर में ऐसे ले जाता है और घड़ीभर में दूसरे कौने पर ले जाता है, हिला-हिलाकर तूफ़ान मचा देता है!

बुद्धि और प्रज्ञा का डिमार्केशन

प्रश्नकर्ता : यह काम प्रज्ञा ने किया या बुद्धि ने किया, वह किस तरह पता चलेगा? बुद्धि और प्रज्ञा की परिभाषा क्या है? कुछ बात हो जाए तो कहते हैं बुद्धि दौड़ाई, बुद्धि खड़ी हुई, तो बुद्धि क्या है?

दादाश्री : *अजंपा* (बेचैनी, अशांति, घबराहट) करे, वह बुद्धि है। प्रज्ञा में *अजंपा* नहीं होता। आपको थोड़ा भी *अजंपा* हो तो समझना कि बुद्धि का चलन है। आपको बुद्धि का उपयोग नहीं करना हो, फिर भी उपयोग हो ही जाता है। वही आपको चैन से बैठने नहीं देती। वह आपको इमोशनल करवाती है। उस बुद्धि को हमें कहना है कि 'हे बुद्धिबहन! आप अपने पीहर जाओ। हमें अब आपके साथ कोई लेना-देना नहीं है।' सूर्य का उजाला हो जाए, फिर मोमबत्ती की ज़रूरत रहेगी क्या? अर्थात् आत्मा का प्रकाश होने के बाद बुद्धि के प्रकाश की ज़रूरत नहीं रहती। मुझमें बुद्धि नहीं है। मैं अबुध हूँ।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मौन रहना, उसे बुद्धि दौड़ाई नहीं कहा जाएगा?

दादाश्री : मौन रखने से रहेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : नहीं, परंतु किसी से मौन रखा गया तो?

दादाश्री : किस तरह रहेगा? बुद्धि इमोनशनल ही रखती है। मोशन में रखती ही नहीं। शांति से घड़ीभर के लिए आपको बैठने ही नहीं देगी। बुद्धि रात को दो बजे उठा देगी! धमाचौकड़ी! धमाचौकड़ी! चैन से आराम भी नहीं करने देगी!

प्रश्नकर्ता : जब ज्ञाता-दृष्टा रहें, तब ही बुद्धि का उपयोग नहीं होगा?

दादाश्री : ज्ञाता-दृष्टा रहें, फिर बुद्धि का हर्ज नहीं है, फिर तो बुद्धि का उपयोग होगा ही कैसे? फिर तो अंतिम 'स्टेशन' आ जाएगा! पर बुद्धि ज्ञाता-दृष्टा रहने ही नहीं देती।

सब्ज़ी लेने मार्केट गए हों और आपको सत्संग में जाने की जल्दी हो, तब भी यह बुद्धि चार दुकानों पर घुमाती है! तब जाकर छोड़ती है! बुद्धि भटकाती ही रहती है!

प्रश्नकर्ता : जहाँ पर जो मिला, सख्त भिंडी लेकर घर आए, यानी बुद्धि नहीं दौड़ी ऐसा?

दादाश्री : आपको क्या भरोसा है कि सख्त आएगी या नरम आएगी? कई तो दुकान पर जाकर सिर्फ बोलते हैं कि भिंडी तौल दो और अच्छी भिंडी आ जाती है!

और सख्त आए, तब भी क्या कुछ बिगड़ गया? संसार में तो ऐसा चलता ही रहेगा। रोज़ सख्त नहीं आएँगी। कभी ही आती है। लेकिन फिर उसका पुण्य होता है न? भले मनुष्यों के तो पुण्य भी सब भले ही होते हैं। वे आगे से आगे तैयार ही होते हैं। और खटपट करनेवाले का ही सारा पुण्य खटपटवाला होता है।

अहंकार के उदय में 'एडजस्टमेन्ट'

प्रश्नकर्ता : यह अहंकार, वह क्या वस्तु है?

दादाश्री : अहंकार, वह कोई वस्तु नहीं है। किसीने कहा कि

'आप चंदूभाई हो' और आपने मान लिया कि 'मैं चंदूभाई हूँ', वह अहंकार!

प्रश्नकर्ता : परंतु उसे आघात लगे तब अच्छे-बुरे का कुछ भी भान नहीं रहता।

दादाश्री : अहंकार की आँखे कभी भी होती ही नहीं, अंधा ही होता है।

प्रश्नकर्ता : यानी बाकी सब से अहंकार बड़ा है न?

दादाश्री : हाँ, वह सरदार है। उसकी सरदारी के नीचे ही तो यह सब चलता है!

प्रश्नकर्ता : तो उस समय क्या एडजस्टमेन्ट लेना चाहिए?

दादाश्री : क्या एडजस्टमेन्ट लेना है? 'आपको देखते ही रहना है कि कैसा अंधा है!' वह 'एडजस्टमेन्ट' लेना है।

अहंकार कोई वस्तु नहीं है। 'हम' जो मानते हैं कि 'यह मैं हूँ' वह सारा ही अहंकार और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उतना ही निर्अहंकार। 'मैं पटेल हूँ', 'मैं पचास वर्ष का हूँ', 'मैं कलेक्टर हूँ', 'मैं वकील हूँ'। जो-जो बोले, वह सारा अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : अच्छा करने के लिए जो प्रेरित करता है, वह भी अहंकार कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, वह भी अहंकार कहलाता है। गलत करने की प्रेरणा दे, वह भी अहंकार कहलाता है। वह अच्छे में से गलत कब करेगा, वह कहा नहीं जा सकता। क्योंकि अंधा है न?

यदि आप जिसे दान दे रहे हों और वही मनुष्य कुछ ऐसा शब्द बोल गया, तो आप उसे मारने दौड़ोगे! क्योंकि वह अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : सैनिक ऐसा कहे कि 'मैं हिन्दुस्तान के लिए लड़ता हूँ', तो वह अहंकार है?

दादाश्री : हाँ, वह सब अहंकार है लेकिन कुल मिलाकर वह कुछ लाभ नहीं देता। थोड़ा पुण्य बंधता है। अच्छा करनेवाला कब गलत कर देगा, वह कहा नहीं जा सकता। आज हिन्दुस्तान के लिए लड़ रहा है और कल उसके कैप्टॅन के साथ भी झगड़ा कर लेगा। उसका कुछ ठिकाना नहीं है। अहंकार बिल्कुल निर्लज्ज है। कब उल्टा करेगा, वह कहा नहीं जा सकता। वह ध्येय रहित चीज़ है। और जितने लोग अहंकार से ध्येय रखते थे, वे सब हिन्दुस्तान में पूजे जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : परंतु आगे बढ़ने के लिए अहंकार की ज़रूरत तो है न?

दादाश्री : वह अहंकार तो अपने आप रहता ही है। अहंकार अपने रखने से नहीं रहता। आकर घुस ही जाता है!

प्रश्नकर्ता : मनोविज्ञान में ऐसा लिखा है कि पर्सनालिटी के डेवेलपमेन्ट के लिए थोड़े-बहुत अहंकार की ज़रूरत है, वह ठीक है?

दादाश्री : वह तो कुदरती होता ही है। डेवेलपमेन्ट के लिए कुदरत का नियम ही है कि अहंकार खड़ा होता है और खुद डेवेलप होता जाता है। ऐसे करते-करते जब डेवेलपमेन्ट पूरा होने लगता है, तब हिन्दुस्तान में आता है। उसके बाद उस डेवेलपमेन्ट की बहुत ज़रूरत नहीं रहती। मोक्ष का मार्ग मिल जाए, फिर अहंकार का ऐसा पागलपन कौन करेगा? यह तो भले ही कितना भी अच्छा होगा, दानेश्वरी होगा, परंतु घर पहुँचे तो बहुत सारी चिंता, *उपाधियाँ* होती ही हैं! पूरा दिन अंतरदाह चलता ही रहता है!

'आत्मप्राप्ति' के लक्षण

प्रश्नकर्ता : यदि मैंने मेरे आत्मा को पहचान लिया हो, तो मुझमें कौन-से लक्षणों की शुरूआत होगी? मुझमें कैसा परिवर्तन होगा कि जिससे मैं समझ सकूँ कि मैं सही रास्ते पर हूँ?

दादाश्री : सब से पहले तो इगोइज़्म बंद हो जाएगा। दूसरा, क्रोध-मान-माया-लोभ चले जाएँगे, तब समझना कि आप आत्मा हो गए! आपके ऐसे लक्षण हो गए हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं, वे तो अभी तक नहीं हुए।

दादाश्री : यानी वे लक्षण उत्पन्न हो जाएँ तब फिर समझना कि आप आत्मस्वरूप हो गए हो। अभी आप 'चंदूभाई' स्वरूप हो! अभी कोई बोले कि, 'इस डॉक्टर चंदूभाई ने मेरा केस बिगाड़ दिया।' तब फिर आपको यहाँ बैठे-बैठे असर होगा या नहीं होगा?

प्रश्नकर्ता : असर तो होगा।

दादाश्री : इसलिए आप 'चंदूभाई' हो! और इस 'अंबालाल' को कोई गाली दे, तो 'मैं' इस 'अंबालाल' से कहूँगा कि 'देखो, आपने कहा होगा, इसलिए यह आपको गालियाँ दे रहा है!' हमें बिल्कुल जुदापन का ही अनुभव होता है। आपका भी जुदा हो जाएगा, तब फिर पज़ल' सोल्व हो जाएगी। नहीं तो रोज़ 'पज़ल' खड़ी होती ही रहेंगी!

प्रश्नकर्ता : ये 'पज़ल' हैं, वे सब जीवन के साथ गुंथी हुई हैं या वे कर्म भोगने के लिए हैं?

दादाश्री : वह नासमझी है। ये मनुष्य बेसुध हैं! किससे बेसुध हैं? 'खुद के स्वरूप से बेसुध हैं!' 'खुद कौन है?' उसका भान ही नहीं है! कितना बड़ा आश्चर्य है! आपको शरम नहीं आई, यह बात सुनते हुए? खुद अपने आप से ही अनजान है। शरम आए, ऐसा है न? और फिर वापस बाहर निकलता है, तब कितना अधिक रौब मारता है। अरे, तुझे स्वरूप का भान नहीं, तो क्यों बिना बात के उछलकूद करता है? खुद खुद से गुप्त रह ही नहीं सकता न? आप खुद अपने आप से गुप्त रहे हुए हो, तो यह कैसी बात हुई? इसलिए, भान में लाने के लिए मैं यह विज्ञान देना चाहता हूँ। 'यह' ज्ञान नहीं है, 'यह' विज्ञान है। ज्ञान क्रियाकारी नहीं होता है। यह 'विज्ञान' क्रियाकारी है। यह ज्ञान लेने के बाद आपको कुछ भी नहीं करना पड़ता। ज्ञान ही करता रहता है। विज्ञान हमेशा चेतन होता है और शास्त्रज्ञान, वह शब्दज्ञान है। वह क्रियाकारी नहीं हो सकता। बहुत हुआ तो वे आपको सद्-असद् का विवेक करवाएगा। सद्-असद् का विवेक अर्थात् क्या कि यह 'सच्चा' है या यह 'गलत' है, ऐसा भान करवाएगा और यह तो 'अक्रम विज्ञान' है।

कारण-कार्य की श्रृंखला

प्रश्नकर्ता : देह और आत्मा के बीच संबंध तो है न?

दादाश्री : यह जो देह है, वह आत्मा का परिणाम है। जो-जो कॉज़ेज़ किए, उनका यह इफेक्ट है। कोई आपको फूल चढ़ाए तो आप खुश हो जाते हो और आपको गाली दे तो आप चिढ़ जाते हो। उस चिढ़ने में और खुश होने में बाह्यदर्शन की क़ीमत नहीं है, अंतरभाव से कर्म चार्ज होते हैं। उसका फिर अगले जन्म में 'डिस्चार्ज' होता है, उस समय वह इफेक्टिव है। ये मन-वचन-काया तीनों इफेक्टिव हैं। इफेक्ट भुगतते समय दूसरे नये कॉज़ेज़ उत्पन्न होते हैं, जो अगले जन्म में वापस इफेक्ट बनते हैं। इस तरह कॉज़ेज़ एन्ड इफेक्ट, इफेक्ट एन्ड कॉज़ेज़ ऐसी श्रृंखला निरंतर चलती ही रहती है।

सिर्फ मनुष्यजन्म में ही कॉज़ेज़ बंद हो सकें, ऐसा है। दूसरी सभी गतियों में तो सिर्फ इफेक्ट ही है। यहाँ पर कॉज़ेज़ और इफेक्ट दोनो हैं। हम आपको ज्ञान देते हैं, तब कॉज़ेज़ बंद कर देते हैं, फिर नये इफेक्ट नहीं होते हैं।

प्रश्नकर्ता : इफेक्टिव रहना, वह अच्छा है या इफेक्टिव मिट जाए, वह अच्छा है?

दादाश्री : ऐसे मिटाए तब तो इन सभी लोगों को किसी चीज़ की ज़रूरत ही नहीं रहे। ज़रा सी दवाई चुपड़ी कि मिट जाएगा। ठंड नहीं लगेगी, ताप नहीं लगेगा, इसलिए पंखे, कपड़े किसी की ज़रूरत नहीं रहेगी।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म-मरण के कारणों के जो इफेक्ट हैं, वे निकल जाएँ तो अच्छा या रहें तो अच्छा?

दादाश्री : इफेक्ट इस तरह कभी भी नहीं निकल सकते। इफेक्ट अर्थात् परिणाम। परिणाम को हटाया नहीं जा सकता, परंतु कॉज़ेज़ को बंद किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : वह कार्य-कारण भाव का है?

दादाश्री : हाँ। इफेक्ट तो कार्य है और कार्य में बदलाव नहीं होता। यह जो इफेक्ट है, वह डिस्चार्ज है, और भीतर चार्ज होता रहता है। चार्ज बंद किया जा सकता है। डिस्चार्ज बंद नहीं किया जा सकता।

अकर्तापद से *अबंध* दशा

प्रश्नकर्ता : कॉज़ेज़ बंद करने की प्रक्रिया क्या है?

दादाश्री : 'मैं यह करता हूँ' वह भान टूटा, तब से कॉज़ेज़ बंद हो गए। फिर नये कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं होंगे और पुराना माल है, वह डिस्चार्ज होता रहेगा। अब पुराना माल किस तरह डिस्चार्ज होता है, वह आपको समझाऊँ।

यहाँ से चालीस मील की दूरी पर एक इरिगेशन टेन्क में से बड़े पाइप के द्वारा यहाँ अहमदाबाद में तालाब भरने के लिए पानी आता हो, तो वह तालाब भर जाने के बाद फिर हम वहाँ फोन करें कि अब पानी देना बंद कर दो। तब वे लोग तुरंत बंद कर देते हैं, फिर भी कुछ समय तक यहाँ तो पानी आता ही रहेगा, क्योंकि चालीस मील की पाइप में पानी अंदर है तो उसे आने देना पड़ेगा न? उसे क्या कहा जाता है? हम उसे डिस्चार्ज कहते हैं। उसी प्रकार हमसे ज्ञान लिए हुए व्यक्ति का चार्ज बंद हो जाता है। 'मैं करता हूँ' वह भान टूट जाता है, 'व्यवस्थित' करता है और 'शुद्धात्मा' ज्ञाता-दृष्टा रहता है। फिर जो भी हो, उसे 'देखते' रहना है अर्थात् कर्तापद पूरा उड़ जाता है कि जिससे चार्ज होता था। फिर जो डिस्चार्ज बचा, उसका *निकाल* करना बाकी रहता है।

प्रारब्ध बना पुराना, 'व्यवस्थित' से ज्ञान समाया

प्रश्नकर्ता : आप 'व्यवस्थित' शक्ति को प्रभुशक्ति कहते हैं या प्रारब्ध कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, इस 'व्यवस्थित शक्ति' और प्रारब्ध का कुछ भी लेना-देना नहीं है। कोई भी व्यक्ति यदि प्रारब्ध को माने तो लोग आकर

क्या कहते हैं, 'तू पुरुषार्थ कर, बेकार ही प्रारब्ध पर मत बैठा रहना।' अर्थात् प्रारब्ध पंगु अवलंबनवाली चीज़ है और 'व्यवस्थित' तो 'एक्ज़ेक्ट' जैसा है वैसा ही है।

प्रश्नकर्ता : 'व्यवस्थित' अर्थात् पूर्वनिश्चित? वह पूर्वनिर्धारित है?

दादाश्री : हाँ, संपूर्ण पूर्वनिश्चित है! परंतु जब तक आपको संपूर्ण ज्ञान नहीं है, तब तक आपको बोलना नहीं चाहिए कि 'व्यवस्थित' ही है। ये मन-वचन-काया 'व्यवस्थित' के अधीन है। यह हाथ ऊँचा करते हैं, अंदर सोचते हैं, अंदर प्रेरणा होती है, वह सब 'व्यवस्थित' के अधीन ही है। आप 'शुद्धात्मा' हो और बाकी सबकुछ उसके अधीन! इसलिए उसमें हाथ मत डालना। 'क्या हो रहा है', उसे देखते रहना है!

प्रश्नकर्ता : तो फिर 'शुद्धात्मा' उतना 'व्यवस्थित' के बंधन में आया या नहीं?

दादाश्री : नहीं, 'शुद्धात्मा' बंधन में नहीं है। 'शुद्धात्मा' होने के बाद ज्ञाता-दृष्टा रहने की ही ज़रूरत है।

मैं 'टॉप' पर जाकर यह बात कर रहा हूँ! जगत् के लोगों ने जो बात की है, उसमें कुछ लोगों ने तो पहाड़ी की तलहटी में रहकर बात की है, तो कुछ ने पाँच फुट ऊपर चढ़कर बात की है, तो कुछ ने दस फुट ऊपर चढ़कर बात की है और मैं इतनी ऊँचाई तक चढ़ गया हूँ कि, मेरा सिर ऊपर के 'टॉप' को देखता है और नीचे का सारा ही भाग दिखता है! जब कि वीतरागों ने तो 'टॉप' पर खड़े रहकर बात की है! 'टॉप' पर संपूर्ण सत्य है! यह मैं जो कहता हूँ, उसमें थोड़ी कुछ खामी आ सकती है। क्योंकि 'टॉप' पर का सबकुछ नहीं देख सकता! 'टॉप' की तो बात ही अलग है न!

प्रश्नकर्ता : महावीर भगवान ऐसा कहते हैं कि कर्म क्षय और किसी भी व्यक्ति के द्वारा नहीं हो सकता, यानी उसमें 'ज्ञानी' भी आ जाते हैं?

दादाश्री : नहीं, ज्ञानी तो खुद अपने कर्म खपाते हैं और दूसरों के

भी खपा देते हैं! इसलिए उन्होंने जो बात की है वह बात उनके लिए की है जो 'ज्ञानी' नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : 'ज्ञानी' का प्रकृति पर प्रभुत्व होता है?

दादाश्री : नहीं, नहीं होता! परंतु प्रकृति का उन पर असर नहीं होता। खुद की स्वतंत्रता पर प्रकृति का असर नहीं होता, परंतु प्रकृति के अधीन तो महावीर भगवान को भी रहना पड़ता था!

प्रश्नकर्ता : आपका ज्ञान लेने के बावजूद भी उसे समाधि नहीं बरतती हो, उसकी 'लिखी हुई स्लेट' हो, लेकिन क्या ऐसा व्यवस्थित के हाथ में है कि किसी दिन स्लेट पूरी तरह से साफ हो जाएगी?

दादाश्री : इसमें 'व्यवस्थित' शक्ति कुछ नुकसान नहीं करती। खुद की अजागृति नुकसान करती है! यदि मेरे दिए हुए वाक्यों पर अमल करे, तो उसे निरंतर समाधि रहे। खुद को 'जागृत' रहने की ज़रूरत है। यह 'ज्ञान' मैं देता हूँ, तब आपको आत्मा की जागृति में ला देता हूँ। आत्मा की संपूर्ण जागृति को केवलज्ञान कहा गया है। जागृति उत्पन्न होती है, तब खुद के सारे ही दोष दिखते हैं! खुद के रोज़ के पाँच सौ-पाँच सौ दोष 'खुद' देख सकता है! जिन दोषों को देखे, वे दोष अवश्य जाएँगे!

अपने यहाँ यह 'विज्ञान' है। खुद के दोष दिखने लगें, तबसे उसकी भगवान बनने की शुरूआत हुई। नहीं तो खुद का दोष किसी को भी दिखता नहीं। खुद जज, खुद वकील है और खुद ही अभियुक्त है तो, खुद अपने ही दोष किस तरह देख सकेगा?

[९]

कषायों की शुरूआत

प्रश्नकर्ता : 'चार्ज' कषाय और 'डिस्चार्ज' कषाय के बारे में मुझे जानना है।

दादाश्री : अभी आपको जो कषाय हो रहे हैं, आप यदि किसी के साथ अभी गुस्सा हो जाओ, तो वह कषाय 'डिस्चार्ज' है। परंतु यदि उसके अंदर आपका भाव है, तो फिर से 'चार्ज' का बीज डलेगा।

प्रश्नकर्ता : कोई भी 'डिस्चार्ज' होता है तो, उसमें 'चार्ज' तो होगा न? भावकर्म आएँगे न?

दादाश्री : नहीं, जब 'डिस्चार्ज' होता है तब यदि 'चार्ज' नहीं करना हो, तो जिसने हमारे पास ज्ञान लिया है, उसे 'चार्ज' होता ही नहीं। फिर कर्म चिपकता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : उसका कोई टेस्ट है कि यह 'डिस्चार्ज' है और यह 'चार्ज' है?

दादाश्री : हाँ, सभी टेस्ट हैं। खुद को सब पता चलता है। यदि चार्ज होता हो, तो उसके साथ अशांति होती है। अंदर समाधि टूट जाती है। और चार्ज नहीं होता हो उसमें तो समाधि जाती ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : समाधि हो फिर भी क्रोध आता है?

दादाश्री : क्रोध आता है वह 'डिस्चार्ज' क्रोध है, परंतु अंदर क्रोध करने का भाव हो तो उसमें समाधि नहीं रहती।

प्रश्नकर्ता : लोभ का भी उसी तरह होता है?

दादाश्री : हाँ, क्रोध-मान-माया-लोभ सभी का ऐसा ही है। एक 'डिस्चार्ज' भाव है और दूसरा 'चार्ज' भाव है। आपका नाम क्या है?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : आप 'चंदूभाई हो', वह निश्चित कर लिया है?

प्रश्नकर्ता : सभी ने कहा है मुझसे।

दादाश्री : यानी नामधारी तो मैं भी कबूल करता हूँ, परंतु वास्तव में 'आप' कौन हो? जब तक, 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा आरोपित भाव है तब तक कर्म चार्ज होते ही रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष, वे कषायभाव हैं या कुछ और हैं?

दादाश्री : वे कषाय के ही भाव हैं। वह दूसरा तत्व नहीं है। क्रोध और मान, वे द्वेष है और माया व लोभ, वे राग है। ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये आत्मा के गुणधर्म नहीं है, उसी प्रकार *पुद्‍गल* के भी गुणधर्म नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो तीसरा कौन सा तत्व है?

दादाश्री : आत्मा और *पुद्‍गल* की हाज़िरी से उत्पन्न होनेवाले गुण हैं। हाज़िरी नहीं होगी तो नहीं होंगे।

प्रश्नकर्ता : कषाय में कष् + आय है, वह क्या है?

दादाश्री : आत्मा को पीड़ित करें, वे सभी कषाय हैं।

प्रश्नकर्ता : राग से पीड़ा नहीं होती, फिर भी राग को कषाय क्यों कहा है?

दादाश्री : राग से पीड़ा नहीं होती, परंतु राग, वह कषाय का बीज है। उसमें से बड़ा वृक्ष उत्पन्न होता है!

द्वेष वह कषाय की शुरूआत है और राग - वह बीज डाला, तभी से फिर उसका परिणाम आएगा। उसका परिणाम क्या आएगा? कषाय।

यानी कि जब परिणाम आएगा, तब द्वेष उत्पन्न होगा। अभी तो राग है इसलिए मीठा लगता है।

अनुकूलता में कषाय होते हैं?

प्रश्नकर्ता : अनुकूल संयोगों में कषायभाव या और कुछ नहीं आता, और प्रतिकूल संयोगों में कषायभाव बहुत आ जाते हैं, तो उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : ऐसा है न कि सिर्फ प्रतिकूलता में ही कषाय होते हैं, ऐसा नहीं है। अनुकूलता में बहुत कषाय होते हैं। परंतु अनुकूलता के कषाय ठंडे होते हैं। उन्हें रागकषाय कहते हैं। उसमें लोभ और कपट दोनों होते हैं। उसमें वास्तव में ऐसी ठंडक लगती है कि दिनोंदिन गाँठ बढ़ती ही जाती है। अनुकूल सुखदायी लगता है। परंतु सुखदायी ही बहुत विषम है।

प्रश्नकर्ता : अनुकूलता में तो पता ही नहीं चलता कि यह कषाय भाव है।

दादाश्री : उनमें कषाय का पता नहीं चलता, परंतु वे ही कषाय मार डालते हैं। प्रतिकूलता के कषाय तो भोले होते हैं बेचारे! उसका जगत् को तुरंत ही पता चल जाता है। जब कि अनुकूलता के कषाय, लोभ और कपट तो फलफूलकर बड़े होते हैं! प्रतिकूलता के कषाय मान और क्रोध हैं। वे दोनों द्वेष में आते हैं। अनुकूलता के कषाय अनंत जन्मों तक भटका देते हैं। बहन, आपको समझ में आ गया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : इसलिए दोनों गलत है - अनुकूल और प्रतिकूल। अतः आत्मा जानने योग्य है। आत्मा जानने के बाद अनुकूल-प्रतिकूल सबकुछ खत्म हो जाता है!

प्रश्नकर्ता : तो उसके लिए क्या पुरुषार्थ करना चाहिए?

दादाश्री : पुरुषार्थ करने से कुछ भी नहीं होगा। यहाँ पर आ जाना। आपको आत्मा की पहचान करवा देंगे, फिर आपको आनंद-आनंद हो जाएगा और ये सारे कषाय मिट जाएँगे!

जब तक आत्मा अनुभव में नहीं आता, तब तक कुछ नहीं हो सकता। लोग कहते हैं कि 'चीनी मीठी है, चीनी मीठी है' तब हम पूछे कि 'कैसी मीठी है?' तब वे कहते हैं कि 'मैं नहीं जानता! वह तो मुँह में रखेंगे तब पता चलेगा।' वैसा ही आत्मा का है। ये सब आत्मा की बातें करते हैं, परंतु सब सिर्फ बातों में ही है। उसमें कुछ भी फलदायी नहीं है। कषाय जाते नहीं और अपने दिन सुधरते नहीं। अनंत जन्मों से ऐसे भटक रहे हैं। 'ज्ञानीपुरुष' के दर्शन नहीं किए, सत् सुना नहीं और सत् पर श्रद्धा बैठी नहीं। सत् को जानना तो चाहिए न एक बार?

कषाय बहुत दुःखदायी हैं न? और वे जो सुख देते हैं वे कषाय, वे क्या है?

प्रश्नकर्ता : वह तो आपने कहा तब पता चला कि वे महादुःखदायी हैं। नहीं तो अनुकूल में कषाय होते हैं, वह समझ में ही नहीं आता था।

दादाश्री : 'ज्ञानीपुरुष' के बताए बिना मनुष्य को खुद की भूल का पता नहीं चलता, ऐसी अनंत भूलें हैं। यह एक ही भूल नहीं है। अनंत भूलों ने घेरा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : भूलें तो पग-पग पर होती हैं।

दादाश्री : ये अनुकूल, वे कषाय कहलाते हैं, ऐसा आप अच्छी तरह समझ गए हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ये जो निरंतर *गारवरस* (संसारी सुख की ठंडक में पड़े रहने की इच्छा) में रखता है, खूब ठंडक लगती है, खूब मज़ा आता है, ये ही कषाय हैं, जो भटकानेवाले हैं।

कषायों का आधार

प्रश्नकर्ता : ये कषाय किस आधार पर हैं?

दादाश्री : अज्ञान के आधार पर हैं।

अज्ञानता ही इन सबका बेसमेन्ट (आधार) है। अज्ञानता गई कि सारा हल आ गया। अज्ञानता हमारे समझाने से चली जाती है। अज्ञान जाए तो कषाय कम होने लगते हैं, यानी राग-द्वेष कम होने लगते हैं। फिर प्रकृति खाली होने लगती है। है न आसान रास्ता?

'अक्रम' की बलिहारी

प्रश्नकर्ता : दादा, किंचित्मात्र कुछ भी किए बिना यह प्राप्त हो जाना, वह समझ में नहीं आता।

दादाश्री : 'अक्रम विज्ञान' हमेशा ज्ञानी की कृपा से प्राप्त होता है, और 'क्रमिक' में भी कृपा तो है ही, परंतु उसमें गुरु कहें, वैसा करते रहना पड़ता है। 'अक्रम' में कर्तापद नहीं होता। यहाँ तो ज्ञान ही, सीधा-डायरेक्ट ज्ञान। इसलिए बहुत सरल हो जाता है! इसलिए इसे 'लिफ्टमार्ग' कहा है। लिफ्टमार्ग अर्थात् मेहनत वगैरह कुछ भी नहीं करना है। आज्ञा में रहना है। उससे नया चार्ज नहीं होगा। फिर विसर्जन होता ही रहेगा। जैसे भाव से सर्जन हुआ था, वैसे भाव से विसर्जन होता रहेगा।

अनुभव-लक्ष-प्रतीति

खुद अनादि काल से विभ्रम में पड़ा हुआ है। आत्मा है स्वभाव में, परंतु विभाव की विभ्रमता हो गई। वह सुषुप्त अवस्था कहलाती है। वह जग जाए, तब उसका लक्ष्य बैठता है हमें। वह ज्ञान से जगता है। 'ज्ञानीपुरुष' ज्ञान सहित बुलवाते हैं, इसलिए आत्मा जग जाता है। फिर लक्ष्य नहीं जाता। लक्ष्य बैठा तब अनुभव, लक्ष्य और प्रतीति रहती है। इस लक्ष्य के साथ प्रतीति रहती ही है। अब अनुभव बढ़ते जाएँगे। पूर्ण अनुभव को केवलज्ञान कहा है।

सामीप्यभाव से मुक्ति

अज्ञानता से कषाय खड़े होते हैं। ज्ञान से कषाय नहीं होते।

स्वरूपज्ञान होने के बाद 'आप' उग्र हो जाओ, तो वे पिछले कषाय हैं कि जो अब डिस्चार्ज हो रहे हैं। डिस्चार्ज होते हैं, उसे भगवान ने चारित्र मोहनीय कहा है।

'अपना' 'पड़ोसी' चेतनभाव सहित है। 'चार्ज' हो चुका है, इसलिए उसके सभी भाव, बुद्धि के सभी भाव, अपमान करे तब मन उछलता है, वे सब पड़ोसी के भाव हैं। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी जब उछलकूद मचाएँ तो 'आप' चंदूभाई को धीरे-से कह दो, 'उछलना मत भाई, अब शांति रखना।' यानी कि आपको पड़ोसी की तरह पड़ोसीधर्म निभाना है। किसी समय बहुत उत्तेजित हो जाए तो आप दर्पण के सामने देखना। तो इस तरह दर्पण में चंदूभाई दिखेंगे न! फिर चंदूभाई पर ऐसे हाथ फेरना। यहाँ पर आप फेरोगे तब वहाँ पर दर्पण में भी फिरेगा। ऐसा दिखेगा न? फिर आपको चंदूभाई से कहना है कि, ''शांति रखो। 'हम' बैठे हैं। अब आपको क्या भय है?'' इस तरह अभ्यास करो। दर्पण के सामने बैठकर आप अलग और चंदूभाई अलग। दोनों अलग ही हैं। सामिप्यभाव के कारण एकता हुई है। दूसरा कुछ है नहीं। शुरूआत से अलग ही हैं। पूरी 'रोंग बिलीफ़' ही बैठ चुकी है। 'ज्ञानीपुरुष' 'राइट बिलीफ़' दे दें, तो हल आ जाता है। दृष्टिफेर ही है। मात्र दृष्टि की भूल है।

[१०]

विषयों में सुखबुद्धि किसे?

दादाश्री : आपकी कितनी फाइलें हैं?

प्रश्नकर्ता : मेरी तो एक ही फाइल है, वेदनीय की।

दादाश्री : अब उस वेदनीय से यदि ऐसा कहो कि, 'यहाँ मत आना।' तब जो वेदनीय आठ फुट ऊँची थी, वह अस्सी फुट ऊँची होकर आएगी। और यदि हम कहें कि तुम जल्दी आओ तो आठ फुट की होगी तो दो फुट की दिखेगी, और जब वेदनीय का काल पूरा हो जाएगा तो वह खड़ी नहीं रहेगी। तब फिर जो हमेशा खड़ी नहीं रहेगी वह तो हमारी 'गेस्ट' कहलाएगी। गेस्ट के साथ तो हमें अच्छा बरताव करना चाहिए न? संयम रखना चाहिए। आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : लगता तो है दादा, परंतु सहन नहीं होता।

दादाश्री : यह जो सहन नहीं होता है, वह साइकोलोजिकल इफेक्ट है। तब 'दादा-दादा' ऐसे नाम लो और अगर ऐसा कहोगे कि 'मुझे सहनशक्ति दीजिए' तो वैसी शक्तियाँ उत्पन्न हो जाएँगी।

प्रश्नकर्ता : जब तक पाँच इन्द्रियों के विषयों में सुखबुद्धि है, तब तक उस तरह से *निकाल* नहीं हो सकता न?

दादाश्री : वह सुखबुद्धि आत्मा में नहीं है। जो आत्मा मैंने आपको दिया है, उसमें सुखबुद्धि ज़रा सी भी नहीं है। उसने यह सुख कभी चखा ही नहीं है। यह जो सुखबुद्धि है, वह तो अहंकार में है।

सुखबुद्धि रहे, उसमें हर्ज नहीं है। सुखबुद्धि आत्मा की चीज़ नहीं

है, वह *पुद्गल* की चीज़ है। कोई भी चीज़ आपको दी जाए, तब उसमें आपको सुखबुद्धि उत्पन्न होती है। फिर वही वस्तु अधिक दी जाए, तब उसमें दु:खबुद्धि भी उत्पन्न हो जाती है, ऐसा आप जानते हो या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऊब जाते हैं फिर।

दादाश्री : इसलिए वह *पुद्गल* है, *पूरण-गलनवाली* चीज़ है। यानी वह वह चीज़ हमेशा के लिए नहीं है। टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है। सुखबुद्धि अर्थात् यह आम अच्छा हो और उसे फिर से माँगें, तो उससे ऐसा नहीं माना जा सकता कि उसमें सुखबुद्धि है। वह तो देह का आकर्षण है।

प्रश्नकर्ता : देह का और जीभ का आकर्षण बहुत रहा करता है।

दादाश्री : वह जो आकर्षण रहा करता है, उसमें सिर्फ जागृति रखनी है। हमने आपको जो वाक्य दिया है न कि 'मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं से मैं बिल्कुल असंग ही हूँ।' वह जागृति रहनी चाहिए, और वास्तव में एक्ज़ेक्टली ऐसा ही है। वह सब *पूरण-गलन* है। आप यह जागृति रखो तो आपको कर्म का बंधन नहीं रहेगा।

प्रश्नकर्ता : वही नहीं रह सके, तो वह हमारे चारित्र का दोष है ऐसा मानें?

दादाश्री : वैसा 'क्रमिक मार्ग' में होता है।

प्रश्नकर्ता : परंतु उस चारित्रमोह के कारण ढीलापन रहता है।

दादाश्री : 'क्रमिक मार्ग' में वह ढीलापन कहलाता है। उसके लिए आपको उपाय करना पड़ेगा। इसमें (अक्रम में) आप ढीलापन नहीं कह सकते। इसमें आपको जागृति ही रखनी है। हमने जो आत्मा दिया है वह जागृति ही है।

प्रश्नकर्ता : जागृति नहीं हो, तब राग होता है न?

दादाश्री : नहीं ऐसा नहीं है। अब आपको राग होता ही नहीं है। यह जो होता है, वह आकर्षण है।

प्रश्नकर्ता : यह होता है, वह आकर्षण है, तो वह कमज़ोरी नहीं मानी जाएगी?

दादाश्री : नहीं, कमज़ोरी नहीं मानी जाएगी। उसका और आत्मा का कोई लेना-देना नहीं है। सिर्फ आपको खुद का सुख नहीं आने देगा। इसलिए एक-दो जन्म अधिक करवाएगा, उसका उपाय भी है। अपने यहाँ ये सब लोग जो 'सामायिक' करते हैं, उस सामायिक में उस विषय को रखकर ध्यान करते हैं तो वह विषय विलय होता जाता है, खत्म हो जाता है। जो-जो आपको विलय कर देना हो, उसे यहाँ पर विलय किया जा सकता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ हो, तब वह काम का है न!

दादाश्री : है। यहाँ सबकुछ ही है। यहाँ आपको सुबकुछ ही दिखाएँगे। आपको किसी जगह पर जीभ का स्वाद बाधक हो, तो वही विषय 'सामायिक' में रखो। और जैसा बताएँ उस अनुसार उसे देखते रहो। सिर्फ देखने से ही वे सब गाँठें विलय हो जाएँगी।

विचार आए बिना कभी भी आकर्षण नहीं होता। आकर्षण होनेवाला हो, तब भीतर विचार आते हैं। विचार मन में से आते हैं, और मन गाँठों का बना हुआ है। जिसके विचार अधिक आएँ, वह गाँठ बड़ी होती है।

संसार चलाने के लिए आत्मा अकर्ता

भीतर जो भाव होते हैं, वे भावक करवाते हैं। भीतर भावक, क्रोधक, लोभक, मानक हैं। ये सभी बैठे हैं, वे भाव करवाते हैं। उसमें यदि भाव्य मिल जाए, भाव्य अर्थात् आत्मा (प्रतिष्ठित) यदि तन्मयाकार हो जाए तो नया चित्रण होता है।

यह जो संसार है, वह आत्मा की हाज़िरी से चलता है। यदि आत्मा उसमें ज़रा सा भी तन्मयाकार नहीं होगा, फिर भी वह चल सकता है। इसलिए हमने यह 'व्यवस्थित' की खोज की है। 'क्रमिक' में तो ऐसा

समझते हैं कि आत्मा के चलाए बिना चलेगा ही नहीं। जब कि हमने आपको 'विज्ञान' दिया है कि 'व्यवस्थित' सब चला लेगा।

प्रश्नकर्ता : मुझे द्वेष हुआ, तो उसमें आत्मा तन्मयाकार हुआ या नहीं? वह द्वेष किसने किया? मैंने किया?

दादाश्री : आत्मा तन्मयाकार हो जाए तब क्या होता है? राग और द्वेष दोनों होते हैं। अब राग-द्वेष हुए हैं, वह पता कैसे चलेगा? कहते हैं कि द्वेष हो तब भीतर चिंता होती है, जी जलता है। इस ज्ञान के बाद आत्मा तन्मयाकार नहीं होता है, इसलिए चैन की स्थिति रहती है, निराकुलता रहती है। निराकुलता अर्थात् सिद्ध भगवान का १/८ गुण उत्पन्न हुआ कहलाता है। जगत् तो आकुलता और व्याकुलता में ही रहता है, छटपटाहट तो रहती ही है, इसलिए ही तो ज्ञानी को ढूँढ़ते हैं।

लोग क्या समझते हैं कि, आत्मा भाव करता है। वास्तव में तो आत्मा भाव नहीं करता। भावक भाव करते हैं। उन्हें यदि सच्चा मान लिया तो तन्मयाकार हो गया। भाव हुआ उसे सच्चा मानना, वही तन्मयाकार होना कहलाता है। उससे बीज डलते हैं।

प्रश्नकर्ता : भावक अर्थात् पुराने कर्म?

दादाश्री : भावक यानी मन की गाँठें। किसी को मान की गाँठ, किसी को लोभ की गाँठ, तो किसी को क्रोध की गाँठ, तो किसी को विषय की गाँठ। ये गाँठें ही परेशान करती हैं। आत्मा प्राप्त होने के बाद फिर भाव में भाव्य तन्मयाकार नहीं होते हैं, इसलिए निराकुलता रहती है।

निराकुल आनंद

पूरे जगत् में जो आनंद है, वह आकुलता-व्याकुलतावाला आनंद है, और 'ज्ञानी' हो जाने के बाद निराकुल आनंद उत्पन्न होता है।

'ज्ञानीपुरुष' के पास निराकुल आनंद उत्पन्न होता है। *पुद्गल* का कुछ लेना-देना नहीं है, तो फिर यह सुख उत्पन्न कहाँ से हुआ? तब कहते हैं कि वह स्वाभाविक सुख, सहज सुख उत्पन्न हुआ, वही आत्मा का सुख

है और इतना ही जिसे फिट हो गया न, वह सहजसुख के स्वपद में रहेगा। वह फिर धीरे-धीरे परिपूर्ण होगा!

आनंद दो प्रकार के हैं : एक, हमें बिज़नेस में खूब रुपये मिल जाएँ, अच्छा सौदा हो जाए, उस घड़ी आनंद होता है। परंतु वह आकुलता-व्याकुलतावाला आनंद, मूर्छित आनंद कहलाता है। बेटे की शादी करे, बेटी की शादी करे, उस घड़ी आनंद होता है, वह भी आकुलता-व्याकुलतावाला आनंद, मूर्छित आनंद कहलाता है, और जब निराकुल आनंद हो, तब समझना कि आत्मा प्राप्त हुआ।

प्रश्नकर्ता : निराकुल आनंद किसे कहते हैं?

दादाश्री : यहाँ सत्संग में जो सारा आनंद होता है, वह निराकुल आनंद है। यहाँ पर आकुलता-व्याकुलता नहीं रहती।

आकुलता-व्याकुलतावाले आनंद में क्या होता है कि अंदर झंझट चलता रहता है। यहाँ झंझट बंद रहता है और जगत् विस्मृत रहा करता है। अभी किसी वस्तु को लेकर आनंद आए तो हम समझ जाएँगे कि यह पौद्‌गलिक आनंद है। और यह तो सहज सुख! अर्थात् निराकुल आनंद। आकुलता-व्याकुलता नहीं। जैसे कि स्थिर हो गए हों, ऐसा हमें लगता है। थोड़ा भी उन्माद नहीं रहता।

जिनके परिचय में रहें, उन्हीं जैसे हम बन जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपने जो दिया है उससे, इस काल में आप जिस स्थिति तक पहुँचे हैं, उस स्थिति तक हम पहुँच सकते हैं क्या?

दादाश्री : हमें और काम ही क्या है? आपको निराकुलता प्राप्त हुई है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : निराकुलता, वह सिद्ध भगवान का १/८ गुण है। १/८ सिद्ध हो गए। फिर चौदह आने बाकी रहा। वह बाद में हो जाएगा। सिद्ध हो चुके न? मुहर लग गई न? फिर क्या भय? अभी कोई ऊपर से आए

और कहे कि 'चलो साहब मोक्ष में।' तो मैं क्या कहूँगा, 'क्यों जल्दी है?' तब वह कहे कि 'आपके प्रति हमें *लागणी* (भावुकतावाला प्रेम, लगाव) हो रही है!' तब मैं कहूँ कि, ' मुझ पर *लागणी* मत रखना, भाई! मैं *लागणी* रखने जैसा पुरुष नहीं हूँ। मेरा मोक्ष मेरे पास है! निराकुलता उत्पन्न हो जाए, फिर क्या बाकी रहा। नहीं तो चिंता-वरीज़ भटकाते ही रहते हैं, इगोइज़म भटकाता ही रहता है।

अहंकार के प्रतिस्पंदन - व्यवहार में

अहंकार अंधा बना देता है। जितना अहंकार अधिक उतना अंधापन अधिक।

प्रश्नकर्ता : कार्य करने के लिए तो अहंकार की ज़रूरत पड़ेगी ही न?

दादाश्री : नहीं, वह निर्जीव अहंकार अलग है। उसे अहंकार कहेंगे ही नहीं न? उसे लोग भी अहंकारी नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : तो कौन सा अहंकार नुकसानदेह है?

दादाश्री : यह आप सभी जानते हो कि 'मैं ज्ञानी हूँ', परंतु बाहर व्यवहार में लोग थोड़े ही जानते हैं कि 'मैं ज्ञानी हूँ'। फिर भी मुझमें लोग एक भी ऐसी चीज़ नहीं देखते कि जिससे लोग मुझे अहंकारी कहें। जब कि आपको वैसा कहेंगे। इस अहंकार ने ही सब बर्बाद किया है।

प्रश्नकर्ता : परंतु इसी अहंकार से सारा व्यवहार चलता है न?

दादाश्री : अहंकार से व्यवहार नहीं चलता। अहंकार हद से बाहर नहीं जाना चाहिए, नहीं तो वह नुकसान करता है।

प्रश्नकर्ता : लोगों पर हमारे पुराने अहंकार के प्रतिस्पंदन पड़ चुके हैं, इसलिए हमें अहंकारी ही देखते हैं।

दादाश्री : आपके पुराने अहंकार के प्रतिस्पंदन जब तक खत्म नहीं हो जाएँगे, तब तक आपको इंतज़ार करना पड़ेगा।

एक अच्छे इज़्ज़तदार घर का लड़का था, लेकिन उसे चोरी की बुरी आदत पड़ चुकी थी। उसने चोरी करना बंद कर दिया। फिर मेरे पास आकर उसने कहा, 'दादा, अभी तक भी लोग मुझे चोर कहते हैं।' तब मैंने उसे कहा, 'तू दस वर्ष से चोरी कर रहा था, फिर भी लोगों ने तुझे पहचाना नहीं। तब तक लोग तुझे साहूकार कहते थे। अब तू चोर नहीं है। साहूकार हो जाएगा, फिर भी दस वर्षों तक चोर का पुराना प्रतिस्पंदन आता रहेगा। इसलिए तू दस वर्षों तक सहन करना। परंतु अब तू फिर से चोरी मत करने लगना। क्योंकि मन में ऐसा लगेगा कि, 'वैसे भी लोग मुझे चोर कहते ही हैं, इसलिए चोरी ही करो न!' ऐसा मत करना।

अंधेर चले ऐसा नहीं है। हमें ज्ञान हुआ उससे पहले के हमारे प्रतिस्पंदन भी हमारे सगे-संबंधियों को अभी तक महसूस होते हैं!

प्रश्नकर्ता : तो वे प्रतिस्पंदन जल्दी से कैसे जाएँगे?

दादाश्री : धीरे-धीरे जाने ही लगे हैं। यहाँ से गाड़ी निकली, उसे लोग क्या कहते हैं? कि गाड़ी मुंबई गई।

प्रश्नकर्ता : एक 'पेसेन्जर' और एक 'राजधानी एक्सप्रेस' जाती है। हमें तो 'राजधानी एक्सप्रेस' चाहिए।

दादाश्री : वह तो जल्दबाज़ीवाला स्वभाव है। आप खिचड़ी कच्ची रखोगे तो सभी को कच्चा खाना पड़ेगा। इसलिए ऐसा भोजन हो वहाँ हमें 'धीरजलाल' को (!) बुलाना चाहिए (धीरज रखना)!

परिणाम परसत्ता में

प्रश्नकर्ता : गलत करनेवाले को सभी खयाल रहता है, फिर भी गलत क्यों करता है?

दादाश्री : गलत होता है, वह तो पर-परिणाम है। हम यह 'बॉल' यहाँ से डालें, फिर हम उसे कहें कि अब तू यहाँ से दूर मत जाना, जहाँ पर डाला वहीं पर पड़ी रहना। ऐसा होता है क्या? नहीं होता। डालने के बाद 'बॉल' पर-परिणाम में जाते हैं। इसलिए जिस तरह से किए होंगे, यानी

कि तीन फुट ऊपर से डाला होगा तो परिणाम दो फुट के आएँगे। दस फुट के परिणाम सात फुट आएँगे, परंतु ये परिणाम अपने आप बंद हो ही जाएँगे, हम यदि फिर से उसमें हाथ नहीं डालें तो!

प्रश्नकर्ता : उस समय ऐसा कहा जा सकता है कि परापूर्व से गलत करता आया है, इसलिए गलत की ओर आकर्षित होता है?

दादाश्री : ऐसा कुछ नहीं है। यह सब 'व्यवस्थित' के ताबे में है। इसलिए उसमें उसका दोष नहीं है। सिर्फ उसे इतना समझ लेना चाहिए कि, 'मैं कौन हूँ।' उतना समझ लिया तब से ही छुटकारे की साँस मिलती है। समझता नहीं है, इसलिए यह सब बंधन होता रहता है।

यह अपना 'साइन्स' है। छोटा सा 'साइन्स' है। यदि 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ और 'ज्ञान' मिल जाए तो बात छोटी सी है और 'ज्ञानीपुरुष' नहीं मिलते तो कुछ काम नहीं होगा। यदि 'ज्ञानीपुरुष' नहीं मिलें तो (अच्छे कर्म) ऊर्ध्वगति करवाते हैं, पुण्य बंधवाते हैं, परंतु छुटकारा नहीं होता।

[११]

मानव स्वभाव में विकार हेय,

आत्म स्वभाव में विकार ज्ञेय!

प्रश्नकर्ता : स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के बाद मन में विकार रहते हैं, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : मन के विकार तो ज्ञेय हैं। यानी कि वे देखने की चीज़ है। पहले हम मानवस्वभाव में थे। उसमें यह अच्छा और यह बुरा, ये अच्छे विचार और ये बुरे विचार, ऐसा था। अब आत्मस्वभाव में आ गए इसलिए सभी विचार एक जैसे! विचार मात्र ज्ञेय है और 'हम' ज्ञाता हैं। ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध है। फिर कहाँ रही दख़ल, वह कहो?

प्रश्नकर्ता : इस तरह आत्मदृष्टि से देखने के लिए कुछ पुरुषार्थ करना पड़ता है या अपने आप ही दिखता है?

दादाश्री : अपने आप ही दिखता है! हमने जो ज्ञान दिया है उससे रिलेटिव और रियल को देखो, सभी रिलेटिव विनाशी चीज़ें हैं और रियल सभी अविनाशी हैं। ये सब ज्ञेय जो दिखते हैं, वे सब विनाशी ज्ञेय हैं। स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग, वे विनाशी संयोग हैं। यह सब यहाँ सत्संग में आकर पूछ लेना चाहिए और स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए, तो हरएक बात का लक्ष्य रहेगा और लक्ष्य रहेगा, तब फिर कुछ भी करना नहीं पड़ेगा। स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होने के बाद कुछ भी नहीं करना पड़ता। ज्ञान ज्ञान में ही रहता है। आत्मा ज्ञायक स्वभाव में ही रहता है। ज्ञायक अर्थात् जानते ही रहने के स्वभाव में रहना। आत्मा में और कोई स्वभाव ही उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : जानना अर्थात् मन को जानना या शरीर के संवेदनों को जानना?

दादाश्री : सबकुछ जानना। मन के विचार आएँ वे भी जानने हैं, बुद्धि क्या-क्या करती है वह भी जानना है, और अहंकार क्या करता है वह भी जानना है। जितने-जितने संयोग हैं, वे सभी जानने हैं। संयोगों का पता चलता है या नहीं चलता? मन में विचार आते हैं और जाते हैं, वे संयोग कहलाते हैं। कोई भी वस्तु आए और जाए, वह संयोग कहलाती है। और जो आता नहीं और जाता नहीं, जो देखनेवाला है, वह हमेशा रहता है, वह ज्ञायक है। वह ज्ञायक इन सभी आने-जानेवाले संयोगों को देखता रहता है कि ये फलाने भाई आए और ये गए। इस तरह यह देखता ही रहता है, वह आत्मा का स्वभाव है, और फिर संयोग वियोगी स्वभाव के हैं। इसलिए हम उन्हें कहें कि यहाँ बैठे रहो, फिर भी वे चले ही जाएँगे!

आपमें मानवस्वभाव था, तब तक मन में जो विचार आते थे, उन्हें ऐसा मानकर उनमें तन्मयाकार रहते थे कि 'विचार मुझे आ रहे हैं'। अब आपको तन्मयता नहीं रही। वह मुक्त रहता है, क्योंकि मानवस्वभाव पौद्‌गलिक स्वभाव है और अब जो है, यह आत्मस्वभाव है। आत्मस्वभाव अविनाशी स्वभाव है और मानवस्वभाव तो विनाशी स्वभाव है। वह तो आता है और जाता है। उसे देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, संयोग ही नहीं हों तो?

दादाश्री : संयोग नहीं होंगे तो आत्मा भी नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : क्या वहाँ आत्मा नहीं होता?

दादाश्री : नहीं, संयोग नहीं होंगे तो, आत्मा देखेगा क्या? संयोगों की हस्ती नहीं होगी तो आत्मा की भी हस्ती नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : तो उसका अर्थ ऐसा हुआ कि जड़ और चेतन दोनों साथ में ही रहते हैं। उसके बिना तो होगा ही नहीं न?

दादाश्री : पूरा जगत् ऐसे का ऐसा ही रहनेवाला है। यह जगत् कभी भी ज्ञेय रहित होगा ही नहीं! ज्ञाता भी रहेंगे और ज्ञेय भी रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : सिद्धक्षेत्र में जाए, तो वहाँ संयोग नहीं हैं न?

दादाश्री : नहीं, लेकिन वहाँ पर रहकर यहाँ के सभी संयोग उन्हें दिखते हैं। उन्हें देखना क्या है? यही देखना है। यह मैंने हाथ ऊँचा किया, तो वहाँ पर उन्हें ऊँचा किया हुआ हाथ दिख जाता है।

प्रश्नकर्ता : उनका ज्ञाता-दृष्टा गुण तो हमेशा ही रहता है न?

दादाश्री : हाँ, वही हमेशा रहता है, आत्मा का स्वरूप है। और ज्ञाता-दृष्टा रहे, वहीं पर आनंद रहता है, नहीं तो आनंद नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-दृष्टा नहीं रहे तो क्या आनंद नहीं रहता?

दादाश्री : नहीं रहता। ज्ञाता-दृष्टा का फल आनंद है। एक ओर ज्ञाता-दृष्टा रहना और दूसरी ओर आनंद उत्पन्न होना, ऐसा है। जैसे सिनेमा में गया हुआ व्यक्ति सिनेमा का परदा नहीं उठे, तब तक बेचैन रहता है, सीटियाँ बजाता है, ऐसा वह किसलिए करता है? क्योंकि उसे दुःख होता है कि जो देखने आया है, वह उसे देखने को नहीं मिल रहा है। ज्ञेय को नहीं देखे, तब तक उसे सुख उत्पन्न नहीं होता। उसी प्रकार आत्मा ज्ञेय को देखे और जाने तब भीतर परमानंद उत्पन्न होता है। अब रात को अकेला कमरे में सो गया हो तो वहाँ क्या देखेगा? वहाँ कौन-से फोटो देखने हैं? तो वहाँ तो अंदर का सबकुछ दिखता है। अंत में नींद भी दिखती है, स्वप्न भी दिखता है।

प्रश्नकर्ता : परंतु सिद्धक्षेत्र में स्वप्न नहीं दिखता न?

दादाश्री : नहीं, वहाँ स्वप्न नहीं होता। स्वप्न तो यह देह है, इसलिए है। और अभी यह जो है, वह भी खुली आँखों का स्वप्न है। ज्ञानियों को नींद नहीं होती। उनका तो देखना चलता ही रहता है। उन्हें दूसरे प्रदेशों में देखने को मिलता है, बाकी सिद्धक्षेत्र में तो देह ही नहीं होती। इस देह का भी भार है, उससे दुःख है। ज्ञानियों को देह का बहुत वजन महसूस होता है।

प्रश्नकर्ता : यह देह है, वह कर्म का परिणाम ही है न?

दादाश्री : हाँ, वह कर्म का ही परिणाम है न।

प्रश्नकर्ता : कर्म की संपूर्ण *निर्जरा* होनी चाहिए न?

दादाश्री : कर्म की संपूर्ण *निर्जरा* हो जाए, तब वह जाता है। शुद्ध चित्त हो जाए तब, कर्म की *निर्जरा* हो गई, ऐसा कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अव्यवहार राशि में ज्ञातापन और संयोग होते हैं क्या?

दादाश्री : उसमें तो बोरे में डाला हुआ हो, वैसा रहता है! वहाँ तो अपार दुःख होता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें अस्तित्व का भान होता है क्या?

दादाश्री : अस्तित्व का भान है, इसलिए दुःख अनुभव करता है।

प्रश्नकर्ता : नर्कगति में क्या होता है?

दादाश्री : नर्कगति में भी पाँच इन्द्रियों के दुःख होते हैं। यदि सातवीं नर्क के दुःख सुने तो मनुष्य मर जाए! वहाँ तो भयंकर दुःख होते हैं! अव्यवहार राशि के जीवों को इतने भयंकर दुःख नहीं होते। उन्हें घुटन रहती है।

बुद्धि का श्रृंगार करें ज्ञानी

अपने लोग बुद्धि को 'ज्ञान' कहते हैं, परंतु बुद्धि इनडायरेक्ट प्रकाश है, जब कि 'ज्ञान' आत्मा का डायरेक्ट प्रकाश है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि कहाँ पर पूरी होती है और प्रज्ञा कहाँ से शुरू होती है?

दादाश्री : बुद्धि पूरी होने से पहले प्रज्ञा की शुरूआत हो जाती है। 'ज्ञानीपुरुष' मिल जाएँ और वे आत्मा प्राप्त करवाएँ, तब प्रज्ञा की शुरूआत हो जाती है। वह प्रज्ञा ही मोक्ष में ले जाती है। प्रज्ञा निरंतर भीतर चेतावनी देती रहती है और बुद्धि भीतर दख़ल करती रहती है।

प्रश्नकर्ता : परंतु बुद्धि का कुछ पॉज़िटिव फंक्शन होता होगा न?

दादाश्री : बुद्धि का पॉज़िटिव फंक्शन यह है कि 'ज्ञानीपुरुष' से यदि बुद्धि सम्यक् करवाई हो, तो वह चलेगी। खुद की समझ से चले, वह विपरीत बुद्धि। वह व्यभिचारिणी बुद्धि कहलाती है। कृष्ण भगवान ने अव्यभिचारिणी बुद्धि उसे कहा है कि जिस बुद्धि पर 'ज्ञानीपुरुष' के पास से गिलट चढ़वा ली हो, वह। जितने समय तक हमारे पास बैठोगे, उतना समय आपकी बुद्धि सम्यक् होती रहेगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर जब हम चले जाएँगे, तब फिर क्या होगा?

दादाश्री : हमारे पास बैठो और जितनी बुद्धि गिलट हो गई, वह फिर सम्यक् हो जाती है। वह बुद्धि फिर आपको परेशान नहीं करती, और आपकी जितनी बुद्धि विपरीत है, वह आपको परेशान करेगी।

प्रश्नकर्ता : हमारी संपूर्ण बुद्धि सम्यक् बुद्धि रहे, विपरीत बुद्धि नहीं रहे, उसके लिए हमें क्या पुरुषार्थ करना चाहिए?

दादाश्री : यहाँ पर आकर आपको सम्यक् करवा देनी है। आपसे वह नहीं हो सकेगी।

प्रश्नकर्ता : यहाँ आकर सिर्फ बैठने से ही बुद्धि सम्यक् हो जाती है?

दादाश्री : यहाँ प्रश्न पूछकर, बातचीत करके, समाधान पाकर बुद्धि सम्यक् होती जाती है। फिर आपमें बुद्धि रहेगी ही नहीं। बुद्धि का अभाव होने में तो बहुत टाइम लगेगा, लेकिन पहले बुद्धि सम्यक् तो होती जाए।

प्रश्नकर्ता : हमारे पास सम्यक् बुद्धि है, विपरीत बुद्धि है, और प्रज्ञा भी है। तो इन तीनों का कार्य एक साथ ही चल रहा है?

दादाश्री : हाँ, सब एक साथ ही चल रहा है। प्रज्ञा मोक्ष में ले जाने के लिए भीतर सावधान करती रहती है, चेतावनी देती ही रहती है! और मोक्ष में से रोकने के लिए अज्ञा है। अज्ञा मोक्ष में कभी भी नहीं जाने देती। अज्ञा, वह बुद्धि का प्रदर्शन है। बुद्धि तो संसार में फायदा-नुकसान ही दिखाती है, द्वंद्व ही दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : द्वंद्व के अंदर का फँसाव और घर्षण है, वह तो लगातार ज़िंदगी का एक हिस्सा ही है। जहाँ-तहाँ द्वंद्व आकर खड़ा ही रहता है।

दादाश्री : इस द्वंद्व में ही जगत् फँसा हुआ है न! और 'ज्ञानी' द्वंद्वातीत होते हैं। वे फायदे को फायदा समझते हैं और नुकसान को नुकसान समझते हैं। परंतु उन्हें नुकसान नुकसान के रूप में असर नहीं करता और फायदा फायदे के रूप में असर नहीं करता। फायदे-नुकसान किसमें से निकलते हैं? 'मेरे' में से गए या बाहर से गए? वह सबकुछ खुद जानते हैं।

बुद्धि की समाप्ति

प्रश्नकर्ता : बुद्धि अभी भी दख़ल करती है, तो क्या करें?

दादाश्री : बुद्धि इस तरफ दख़ल करे तो आप वहाँ से दृष्टि फेर लेना। आपको रास्ते में कोई नापसंद व्यक्ति मिले तो आप ऐसे मुँह फेर लेते हैं या नहीं? ऐसे ही जो अपने में दख़ल करता है, उससे दृष्टि फेर लेना! दख़ल कौन करता है? बुद्धि! बुद्धि का स्वभाव क्या है कि संसार से बाहर निकलने ही नहीं देती।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि समाप्त कब होगी?

दादाश्री : यदि आप उसकी ओर बहुत समय तक नहीं देखोगे, दृष्टि फेरकर रखोगे, तब फिर वह समझ जाएगी। वह खुद ही फिर बंद हो जाएगी। उसे आप बहुत मान दो, उसका कहा एक्सेप्ट करो, उसकी सलाह मानो, तब तक वह दख़ल करती रहेगी।

प्रश्नकर्ता : मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार पर अपना प्रभाव पड़ना चाहिए न?

दादाश्री : मशीनरी पर कभी भी प्रभाव पड़ता ही नहीं। इसलिए मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार पर प्रभाव पड़ता ही नहीं। वह तो अंतःकरण खाली हो जाए, तब अपने आप ही सब ठिकाने पर आ जाता है। 'इनका' साथ नहीं दें और 'इन्हें' देखते ही रहें, तो आप मुक्त ही हैं। जितने समय तक 'आप' इन्हें देखते रहें, उतने समय चित्त की शुद्धि होती रहेगी। यदि

सिर्फ चित्त ही ठिकाने पर आ गया तो सबकुछ ठिकाने पर आ जाएगा। अशुद्ध चित्त के कारण भटकते रहते हैं इसलिए चित्त की शुद्धि होने तक ही यह योग अच्छी तरह से जमाना है।

प्रश्नकर्ता : भीतर कपट खड़ा होता है, कपट के विचार आते हैं, उसका क्या करें?

दादाश्री : वह सारा *पुद्गल* है। विचार करनेवाला भी *पुद्गल* है। आत्मा में ऐसी-वैसी वस्तु नहीं है, उसमें तो किसी भी प्रकार का कचरा नहीं है। 'पज़ल' होता है, वह भी *पुद्गल* है और 'पज़ल' करनेवाला भी *पुद्गल* है! पज़ल को जाना किसने? आत्मा ने! सरलता और कपट को जो जानता है, वह आत्मा है!

डिसीज़न में वेवरिंग

प्रश्नकर्ता : किसी बात का डिसीज़न नहीं आए, तब तक वेवरिंग (द्विधा) रहती है।

दादाश्री : डिसीज़न नहीं आए तो उससे कोई प्लेटफोर्म पर बैठे नहीं रहना है। 'अभी जाऊँ या बाद में जाऊँ' ऐसा होने लगे, तब जो गाड़ी आए उसमें बैठ जाना।

डिसीज़न नहीं आने का कारण बुद्धि का अभाव है। बुद्धिशाली मनुष्य हर एक वस्तु में डिसीज़न तुरंत ला सकते हैं, ऑन दी मोमेन्ट। पाँच मिनिट की भी देर नहीं लगती। इसलिए हमने उसे कोमनसेन्स कहा है। कोमनसेन्स अर्थात् एवरीव्हेर एप्लीकेबल। यह चाबी कैसी है कि हर एक ताला खुल जाएगा इससे!

यहाँ बैठा रहूँ या जाऊँ, उसका यदि डिसीज़न नहीं आ रहा हो तो जाने लगना। हाँ, यहाँ बैठे रहना होगा तो 'व्यवस्थित' तुझे वापस ले आएगा। तुझे इस तरह डिसीज़न लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यहाँ से किसी भी संयोग में जाना ही नहीं है, ऐसा ही अंदर से तय होता रहता है और ऐसा भी बताता है कि जाना तो पड़ेगा न!

दादाश्री : किसका अधिक ज़ोर है, वह देख लेना।

प्रश्नकर्ता : यहाँ बैठे रहने के लिए ही ज़ोर देता है!

दादाश्री : तो फिर यहाँ के लिए ज़ोर देता है तो यहाँ बैठे रहना। 'ये बैठ गए साहब, थोड़े पकौड़ियाँ ले आऊँ', कहना।

जल्दी से धीरे चलो!

प्रश्नकर्ता : व्यवहार पहले या निश्चय पहले?

दादाश्री : व्यवहार पहले, लेकिन उसका अर्थ फिर ऐसा नहीं है कि व्यवहार पर राग करो।

प्रश्नकर्ता : तब फिर व्यवहार के निरागी हो जाएँ?

दादाश्री : राग करेगा तो सिंगल गुनाह है और निरागी हो जाएगा तो डबल गुनाह है, निरागी भी नहीं रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : निरागी अर्थात् किस तरह?

दादाश्री : व्यवहार के प्रति निस्पृह हो जाएँ, वह। व्यवहार के प्रति निस्पृह अर्थात् मदर कहें कि, 'तू मेरी बात क्यों नहीं मानता?' तब पुत्र कहेगा, 'मैं आत्मा बन गया हूँ!' ऐसा नहीं चलेगा। व्यवहार में विनय, विवेक सभीकुछ होना चाहिए। अपने व्यवहार से किसी को शिकायत नहीं रहनी चाहिए।

किसी भी वस्तु में जल्दबाज़ी करना सिंगल गुनाह है और जल्दबाज़ी नहीं करना, वह डबल गुनाह है। आपको कौन-से गड्ढे में गिरना है?

प्रश्नकर्ता : एक भी नहीं।

दादाश्री : इसलिए बात को समझ जाओ। जल्दबाज़ी नहीं करेगा तो गाड़ी क्या तेरी राह देखेगी? और जल्दबाज़ी करेगा तो कार को टक्कर मार देगा! इसलिए जल्दबाज़ी करे, उसे सिंगल गुनाह कहा है और जल्दबाज़ी नहीं करे, उसे डबल गुनाह कहा है।

मन का लंगर

प्रश्नकर्ता : मन किस तरह स्थिर रह सकता है?

दादाश्री : मन स्थिर करने के क्या फायदे हैं? उसका आपने हिसाब निकाला है?

प्रश्नकर्ता : उससे शांति मिलेगी।

दादाश्री : मन को अस्थिर किसने किया?

प्रश्नकर्ता : हमने।

दादाश्री : हमने अस्थिर किसलिए किया? जान-बूझकर वैसा किया? 'खुद का हित किसमें है और अहित किसमें' वह नहीं जानने के कारण, मन का जैसा-तैसा उपयोग किया। यदि हिताहित की खबर होती, तब तो उसका खुद के हित में ही उपयोग करते। अब मन आउट ऑफ कंट्रोल हो गया है। अब नये सिरे से ज्ञान हो, खुद के हिताहित की समझ आए, वैसा ज्ञान प्राप्त करे, उसके बाद ही फिर मन ठिकाने आएगा। यानी जब अपने यहाँ ज्ञान देते हैं, तब मन ठिकाने पर आता है।

मन हमेशा ज्ञान से बंधता है, दूसरी किसी चीज़ से मन बंध सके ऐसा नहीं है। एकाग्रता करने से मन ज़रा ठिकाने रहता है, परंतु वह घंटा-आधा घंटा रहता है, फिर वापस टूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : मन क्या है?

दादाश्री : मन, वह अपना स्टॉक है। ये दुकानदार बारह महीनों का सारा स्टॉक निकालते हैं या नहीं निकालते? निकालते हैं। वैसे ही इस पूरी लाइफ का स्टॉक, वह मन है। पिछली लाइफ का स्टॉक आपको इस भव में उदय में आता है और आपको आगे इन्स्ट्रक्शन देता है। अभी भीतर नया मन बन रहा है। यह पुराना मन है, वह अभी डिस्चार्ज होता रहता है और नया मन तैयार हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : मन किस तरह डिस्चार्ज होता है और वह किस तरह बनता है, उसका पता किस तरह चल सकता है?

दादाश्री : मन में जो विचार आते हैं, उनमें आप तन्मयाकार हो जाते हो, वह आत्मा की शक्ति नहीं है। वह तो भीतर निर्बलता है, उसके कारण यह तन्मयाकार हो जाता है। अज्ञानता के कारण तन्मयाकार होता है। यह मूल आत्मा वैसा नहीं है। वह तो अनंत शक्तिवाला, अनंत ज्ञानवाला है। परंतु यह जो आपका माना हुआ आत्मा है, उसके कारण यह सब झंझट है। यानी कि विचार के साथ तन्मयाकार हुए, तभी से नया चार्ज होने लगेगा।

जिन्हें स्वरूप का ज्ञान है, वे तो जो विचार आते हैं, उनमें तन्मयाकार नहीं होंगे। इसलिए जैसे ही उसका टाइम होगा कि मन डिस्चार्ज हो जाएगा। फिर नया चार्ज नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : परंतु इसमें तो ओटोमेटिक तन्मयाकार हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, ओटोमेटिक ही हो जाते हैं, उसी को भ्रांति कहते हैं न! इसमें खुद का कोई पुरुषार्थ है ही नहीं। जब तक खुद पुरुष नहीं हुआ, तब तक पुरुषार्थ है ही नहीं। यह तो प्रकृति आपको ज़बरदस्ती नचाती है।

प्रश्नकर्ता : शरीर और मन के बीच क्या संबंध है?

दादाश्री : शरीर का सारा ही नियंत्रण, इन पाँच इन्द्रियों का, सभी का नियंत्रण मन के हाथ में है। मन आँख से कहे कि यह तेरे देखने जैसा नहीं है, तब फिर आँखें तुरंत देख लेती हैं, और मन मना करे तो आँखें देख रही होंगी, फिर भी बंद हो जाएगी। यानी कि शरीर पर सारा ही नियंत्रण मन का है।

प्रश्नकर्ता : बहुत बार मन अंदर से कहता है कि नहीं देखना है, फिर भी देख लेते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : देख लेता है वह तो उसका मूल स्वभाव है, परंतु नहीं देखना है वैसा नक्की करे, तो फिर से देखेगा ही नहीं। देखना तो आँखों का स्वभाव है। इन्द्रियों के स्वभाव के अनुसार इन्द्रियाँ तो ललचाती ही रहती हैं, परंतु मन के मना करने पर फिर वे देखेंगी ही नहीं। अब 'मन के ऊपर किसका नियंत्रण है' वह देखना है। आपके मन पर किसका नियंत्रण है?

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का।

दादाश्री : बुद्धि क्या करती है?

प्रश्नकर्ता : बुद्धि सार-असार का भेद बताती है।

दादाश्री : बुद्धि की इच्छा अनुसार होता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं होता।

दादाश्री : बुद्धि के ऊपर किसका नियंत्रण है?

प्रश्नकर्ता : उसका पता नहीं।

दादाश्री : अहंकार का, और किसका?

मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, ये चार अंतःकरण के भाग हैं। इन चार जनों का इस शरीर पर नियंत्रण है, और इन चार जनों का नियंत्रण है, इसलिए भ्रांति खड़ी है। 'खुद के' हाथ में नियंत्रण आ जाए तो फिर यह माथापच्ची नहीं रहेगी, फिर पुरुषार्थ उत्पन्न होगा।

प्रश्नकर्ता : वह हाथ में आ जाए, उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : वह सब 'ज्ञानीपुरुष' कर देते हैं। जो खुद बंधनमुक्त हो चुके हों, वे हमें मुक्त कर सकते हैं। जो खुद बंधा हुआ हो, वह दूसरों को किस तरह मुक्त कर सकेगा? और फिर कलियुग के मनुष्यों में इतनी शक्ति नहीं है कि अपने आप कर सकें। इस कलियुग के मनुष्य कैसे हैं? ये तो फिसलते-फिसलते आए हैं, फिसल गए इसलिए अब उनसे अपने आप चढ़ा जा सके, ऐसा है ही नहीं, इसलिए 'ज्ञानीपुरुष' की हेल्प लेनी पड़ेगी।

जहाँ इन्टरेस्ट, वहीं एकाग्रता

प्रश्नकर्ता : दादा, मुझे भगवान में एकाग्रता नहीं रहती।

दादाश्री : आप सब्ज़ी लेने या साड़ी लेने जाती हो, उसमें एकाग्रता रहती है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, रहती है। मोह होता है इसलिए रहती है।

दादाश्री : भगवान में और मोक्ष में आपको इन्टरेस्ट ही नहीं, इसलिए उसमें एकाग्रता नहीं रहती।

अरे, एक स्त्री बहुत सुंदर थी और उसका पति एकदम साँवला था। उस स्त्री से मैंने एक दिन पूछा, 'यह तेरा पति साँवला है, तो तेरा भाव उस पर संपूर्ण रहता है?' तब उसने कहा कि, 'मेरे पति मुझे बहुत प्रिय है।' अब ऐसा साँवला पति उसे प्रिय है, पर भगवान आपको प्रिय नहीं लगते! यह भी एक आश्चर्य है न!

फिर ये पूछती हैं कि, मेरा मन एकाग्र क्यों नहीं हो पाता? सब्ज़ी लेने जाए, वहाँ एकाग्रता किस तरह हो जाती है? ये तो अनुभव की बातें हैं। यह कोई गप्प नहीं है। यह तो भगवान में इन्टरेस्ट ही नहीं, इसलिए एकाग्रता नहीं रहती। यह तो भगवान के प्रति आसक्ति हो जाएगी तो भगवान में एकाग्रता रहेगी।

जब तक पैसों में इन्टरेस्ट है तब तक पैसे-पैसे करता है और भगवान में इन्टरेस्ट आया तो पैसे का इन्टरेस्ट छूट जाएगा। यानी कि आपका इन्टरेस्ट बदलना चाहिए।

अब भगवान में इन्टरेस्ट नहीं है, तो उसमें आपका दोष नहीं है। जो वस्तु देखी नहीं हो, उसमें इन्टरेस्ट किस तरह आएगा? इस साड़ी को तो आप देखती हो, उसके रंगरूप देखते हैं इसलिए उसमें इन्टरेस्ट आएगा ही, लेकिन भगवान तो दिखते ही नहीं न? तब ऐसा कहा है कि, भगवान के प्रतिनिधि जैसे जो 'ज्ञानीपुरुष' हैं, वहाँ पर आपका इन्टरेस्ट रखो। वहाँ इन्टरेस्ट आएगा और उनमें इन्टरेस्ट आया, तो भगवान को पहुँच गया समझो।

जहाँ कषाय हैं, वहाँ इन्टरेस्ट रहे तो वे इन्टरेस्ट कषायिक होते हैं। वह कषायिक प्रतीति है। वह प्रतीति टूट जाती है बाद में, यानी राग से बैठती और द्वेष से छूटती है और भगवान के प्रतिनिधि में इन्टरेस्ट राग से नहीं आता। उनके पास राग करने जैसा कुछ होता ही नहीं न?

[१२]

प्राकृत गुणों का विनाश हो जाएगा!

अपने पर जिसकी छाया पड़े, उसका रोग अवश्य घुस जाता है। यह हाफ़ूज़ का आम ऊपर से कितना ही रूपवान हो, लेकिन उसका हमें क्या करना है? भले ही कितने भी गुण हों, फिर भी क्या करना है? कोई कहे कि साहब, इसमें इतने सारे गुण हैं, गुणों का धाम है न?

तब वीतरागों ने क्या कहा?

यह फर्स्टक्लास गुणों का धाम तो है। परंतु वह किसके अधीन है? वे गुण उसके खुद के अधीन नहीं हैं। पित्त, वायु और कफ के अधीन हैं। ये तीनों ही गुण यदि बढ़ जाएँ, तो उसे सन्निपात हो जाएगा और तुझे गालियाँ देगा! एक अक्षर भी किसी को गाली या अपशब्द नहीं बोले, वैसा मनुष्य, सन्निपात होने पर क्या करता है? इसलिए भगवान ने कहा है कि एक ही *गुंठाणे* (४८ मिनट्स) में ये सभी पौद्गलिक गुण फ्रेक्चर हो सकते हैं, ये गुण इतने विनाशी हैं। तू कमाई कर-करके कितने दिनों तक करेगा? और त्रिदोष होते ही सब एक साथ खत्म हो जाएँगे!

जब मनुष्य से दुःख सहन नहीं होता, तब दिमाग़ में क्रेक पड़ता है। उसे सन्निपात नहीं कहते, परंतु क्रेक कहते हैं। हमें ऐसा लगता है कि ऐसा कैसा बोल रहा है? वह इसलिए कि इस इन्जन में क्रेक पड़ गया है, उसकी दादा के पास से वेल्डिंग करवा लेना। नये इन्जन में भी क्रेक पड़ जाता है! दुःख सहन नहीं हो पाए और सच्चा पुरुष हो, तो क्रेक हो जाता है, वर्ना ढीठ हो जाता है। ढीठ से तो क्रेक अच्छा, क्रेक का तो हम वेल्डिंग कर दें तो इन्जन चल पड़ता है। सभी नये ही इन्जन, लेंकेशायर में से लाए हुए, परंतु हेड क्रेक हो गए हैं तो चलेंगे किस तरह? इन मनुष्यों

के भी हेड में क्रेक पड़ जाता है। वे तृतियम् ही बोलते हैं। हम पूछें कुछ और वे बोलते हैं कुछ और?

इसलिए इन गुणों की कोई क़ीमत ही नहीं है। बासमती के सुंदर चावल हों, परंतु उनका दूसरे दिन क्या होता है? सड़ जाते हैं! तो ये पौद्‌गलिक गुण सड़ जाएँगे। सेठ बहुत दयालु दिखते हैं, परंतु किसी दिन नौकर पर चिढ़ जाएँ, तब निर्दयता निकलती है। वह अपने से देखी नहीं जाती। अतः यह समझने जैसी बात है!

ज्ञानी की विराधना का मतलब ही...

प्रश्नकर्ता : पूर्वभव में यदि ज्ञानी की विराधना की हो तो उसका परिणाम क्या आता है? ये सब लक्षण यदि मुझमें हैं, तो उसके लिए क्षमा दी जा सकती है या वह भोगना ही पड़ेगा?

दादाश्री : ज्ञानी तो खुद ही उसका सारा इलाज कर देते हैं। ज्ञानी तो करुणावाले होते हैं। इसलिए वे, जितना उनकी सत्ता में हो उतनी दवाई तो पिला ही देते हैं सभी को। परंतु उनकी सत्ता से बाहर की वस्तु तो भोगनी ही पड़ती है, क्योंकि विसर्जन कुदरत के हाथ में है।

प्रश्नकर्ता : विराधना के लिए पछतावा होता रहता है।

दादाश्री : उसका पछतावा होता है, दुःख का वेदन करता है, भोगना पड़ता है, असमाधि रहती है, उसका अंत ही नहीं आता। वह छोड़ती ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : उसका अंत ही नहीं आएगा, क्या ऐसा है दादा?

दादाश्री : अंत नहीं आएगा, उसका अर्थ यह है कि वह कहीं दो-चार दिनों में खत्म हो जाए, ऐसी चीज़ नहीं होती। किसी मनुष्य की इस कमरे जितनी टंकी होती है और किसी की पूरी बिल्डिंग जितनी टंकी होती है। उसमें क्या फर्क नहीं होगा?

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, वह खाली तो हो ही जाएगा न?

दादाश्री : खाली हो जाएगा। खाली हो जाएगा ऐसा मानकर हमें चलते रहना है, लेकिन फिर से वैसी भूल नहीं होनी चाहिए। नहीं तो वह पाइप बंद हो जाएगा। फिर यदि भूल होने को हो तो तीन उपवास करना, परंतु विराधना मत होने देना!

ज्ञानी के राजीपे की चाबी

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान, आपकी सच्ची पहचान प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए? और आपका *राजीपा* (गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता) प्राप्त करने के लिए हमें किस प्रकार पात्रता प्राप्त करनी चाहिए?

दादाश्री : *राजीपा* प्राप्त करने के लिए तो 'परम विनय' की ही ज़रूरत है। दूसरी किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। 'परम विनय' से ही *राजीपा* मिलता है। ऐसा कुछ है ही नहीं कि पैर दबाने से *राजीपा* मिलता है। मुझे गाड़ियों में घुमाओ तो भी *राजीपा* नहीं मिलेगा। 'परम विनय' से ही मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : 'परम विनय' समझाइए।

दादाश्री : जिसमें विशेषरूप से 'सिन्सियारिटी' और 'मॉरेलिटी' (नैतिकता) हो और जिसे हमारे साथ एकता रहे, जुदाई नहीं लगे, 'मैं और दादा एक ही हैं' ऐसा लगता रहे, वहाँ सभी शक्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। 'परम विनय' का अर्थ तो बहुत बड़ा होता है। अपने यहाँ सत्संग में इतने लोग आते हैं, लेकिन यहाँ पर 'परम विनय' के कारण बिना नियम के सब चलता है। 'परम विनय' है, इसलिए नियम की ज़रूरत नहीं पड़ी।

जो हमारी आज्ञा में विशेष रूप से रहें, उन्हें परिणाम अच्छा मिलता है। उन्हें हमारा *राजीपा* प्राप्त हो जाता है। आप ऐसा परिणाम बताओ कि मुझे आपको मेरे पास बिठाने का मन हो।

[१३]

घर्षण से गढ़ाई

हम ब्रह्मांड के मालिक हैं (आत्मस्वरूप की दृष्टि से)। इसलिए किसी जीव में दख़लंदाज़ी नहीं करनी चाहिए। हो सके तो हेल्प करो और नहीं हो सके तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन किसीमें दख़लंदाज़ी होनी ही नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी उसका अर्थ ऐसा हुआ कि पर-आत्मा को परमात्मा मानें?

दादाश्री : नहीं। मानना नहीं है, वह है ही परमात्मा। मानना तो गप्प कहलाएगा। गप्प तो याद रहे या न भी रहे, यह तो वास्तव में परमात्मा ही है। परंतु ये परमात्मा विभूति स्वरूप में आए हुए हैं। दूसरा कुछ है ही नहीं। फिर भले ही कोई भीख माँग रहा हो, परंतु वह भी विभूति है और राजा हो, वह भी विभूति है। अपने यहाँ राजा होते हैं, उन्हें विभूति स्वरूप कहते हैं। भिखारी को नहीं कहते। मूल स्वरूप है, उसमें से विशेषता उत्पन्न हुई है। विशेष रूप हुआ है, इसलिए विभूति कहलाता है, और विभूति, वे भगवान ही माने जाएँगे न! इसलिए किसीमें भी दख़ल तो करनी ही नहीं चाहिए। सामनेवाला दख़ल करे तो उसे हमें सहन कर लेना चाहिए, क्योंकि भगवान यदि दख़ल करें तो हमें उसे सहन करना ही चाहिए।

हम वास्तव में 'व्यवहार स्वरूप' नहीं हैं। 'यह' सारा सिर्फ टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट है। जिस तरह बच्चे खिलौनों से खेलते हैं, वैसे ही पूरा जगत् खिलौनों से खेल रहा है! खुद अपने हित का कुछ करता ही नहीं। निरंतर परवशता के दु:ख में ही रहता है और टकराता रहता है। संघर्षण और घर्षण से आत्मा की सारी अनंत शक्तियाँ फ्रेक्चर हो जाती हैं।

नौकर कप-प्लेट फोड़ दे तो अंदर संघर्षण हो जाता है। उसका क्या कारण है? भान नहीं है, जागृति नहीं है कि मेरा कौन सा और पराया कौन सा? पराये का, मैं चलाता हूँ या और कोई चलाता है?

यह जो आपको ऐसा लगता है कि 'मैं चलाता हूँ', तो उसमें से आप कुछ भी नहीं चलाते हो। वह तो आप सिर्फ मान बैठे हो। आपको जो चलाना है उसकी आपको खबर ही नहीं है। पुरुष बन जाएँ, तब फिर पुरुषार्थ हो सकता है। पुरुष ही नहीं बने, तब तक पुरुषार्थ किस तरह से हो सकेगा?

व्यवहार शुद्ध करने के लिए क्या चाहिए? कोमनसेन्स कम्पलीट चाहिए। स्थिरता-गंभीरता चाहिए। व्यवहार में कोमनसेन्स की ज़रूरत है। कोमनसेन्स अर्थात् एवरीव्हेर एप्लीकेबल। स्वरूपज्ञान के साथ कोमनसेन्स हो तो बहुत दीपायमान होगा।

प्रश्नकर्ता : कोमनसेन्स किस तरह प्रकट होता है?

दादाश्री : कोई खुद से टकराए, लेकिन खुद किसी से नहीं टकराए, इस तरह से रहे, तो कोमनसेन्स उत्पन्न होता है। लेकिन खुद को किसी से टकराना नहीं चाहिए, नहीं तो कोमनसेन्स चला जाएगा! घर्षण खुद की तरफ़ से नहीं होना चाहिए।

सामनेवाले के घर्षण से कोमनसेन्स उत्पन्न होता है। यह आत्मा की शक्ति ऐसी है कि घर्षण के समय कैसा बर्ताव करना, उसका सब उपाय बता देती है और एक बार बता दे, फिर वह ज्ञान जाता नहीं है। ऐसे करते-करते कोमनसेन्स इकट्ठा होता है।

अपना विज्ञान प्राप्त करने के बाद व्यक्ति इस तरह से रह सकता है। या फिर सामान्य जनता में कोई व्यक्ति इस तरह से रह सके, ऐसे पुण्यशाली लोग होते हैं! परंतु वे तो कुछ ही बाबत पर इस तरह से रह सकते हैं, हरएक बाबत में नहीं रह सकते!

सारी आत्मशक्ति यदि कभी खत्म होती हो तो वह घर्षण से। संघर्ष

से थोड़ा भी टकराए तो खतम! सामनेवाला टकराए तो हमें संयमपूर्वक रहना चाहिए! टकराव तो होना ही नहीं चाहिए। फिर यह देह खत्म होना हो तो हो जाए, परंतु टकराव में नहीं आना चाहिए।

देह तो किसी के कहने से चला नहीं जाता। देह तो व्यवस्थित के ताबे में है!

इस जगत् में बैर से घर्षण होता है। संसार का मूल बीज, बैर है। जिसके बैर और घर्षण, दोनों बंद हो गए उसका मोक्ष हो गया! प्रेम बाधक नहीं है, बैर जाए तब प्रेम उत्पन्न होता है।

मेरा किसी के खास घर्षण नहीं होता। मुझे कोमनसेन्स ज़बरदस्त है इसलिए आप क्या कहना चाहते हो, वह तुरंत ही समझ में आ जाता है। लोगों को ऐसा लगता है कि ये दादा का अहित कर रहे हैं, परंतु मुझे तुरंत समझ में आ जाता है कि यह अहित, अहित नहीं है। सांसारिक अहित नहीं है और धार्मिक अहित भी नहीं है, और आत्मा संबंध में अहित है ही नहीं। लोगों को ऐसा लगता है कि आत्मा का अहित कर रहे हैं, परंतु हमें उसमें हित समझ में आता है। इतना इस कोमनसेन्स का प्रभाव है। इसलिए हमने कोमनसेन्स का अर्थ लिखा है कि 'एवरीव्हेर एप्लीकेबल।'

आजकल की जनरेशन में कोमनसेन्स जैसी वस्तु है ही नहीं। जनरेशन टु जनरेशन कोमनसेन्स कम होता गया है।

पूरा जगत् घर्षण और संघर्षण में पड़ा हुआ है। यह दिवाली के दिन सब नक्की करते हैं कि आज घर्षण नहीं करना है, इसलिए उस दिन अच्छा-अच्छा खाने को मिलता है, अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं, सबकुछ ही अच्छा-अच्छा मिलता है। जहाँ जाओ वहाँ 'आओ, आओ' करें, वैसा प्रेम मिलता है। संघर्ष नहीं हो तो प्रेम रहता है। सही-गलत देखने की ज़रूरत ही नहीं है। व्यवहारिक बुद्धि व्यवहार में तो काम आती ही है, परंतु वह तो अपने आप एडजस्ट है ही। परंतु दूसरी विशेष बुद्धि है, वही हमेशा संघर्ष करवाती है!

प्रश्नकर्ता : सभी घर्षणों का कारण यही है न कि एक 'लेयर' से दूसरे 'लेयर' (मनुष्यों के विकास के स्तर) का अंतर बहुत अधिक है?

दादाश्री : घर्षण, वह प्रगति है! जितनी मोथापच्ची होती है, घर्षण होता है, उतना ही आगे बढ़ने का रास्ता मिलता है। घर्षण नहीं होगा तो वहीं के वहीं रहोगे। लोग घर्षण ढूँढ़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : घर्षण प्रगति के लिए है, ऐसा करके ढूँढे तो प्रगति होगी?

दादाश्री : परंतु वे समझकर नहीं ढूँढ़ते! भगवान कहीं आगे नहीं ले जा रहे हैं, घर्षण आगे ले जाता है। घर्षण कुछ हद तक आगे ला सकता है, फिर ज्ञानी मिलें तभी काम होता है। घर्षण तो कुदरती रूप से होता है। नदी में पत्थर इधर से उधर घिस-घिसकर गोल होता है, उस तरह।

प्रश्नकर्ता : घर्षण और संघर्षण में क्या फर्क है?

दादाश्री : जिनमें जीव नहीं हो, वे सब टकराएँ, तो वह घर्षण कहलाता हैं और जीववाले टकराएँ, तब संघर्षण होता है।

प्रश्नकर्ता : संघर्षण से आत्मशक्ति रुंध जाती है न?

दादाश्री : हाँ, सही बात है। संघर्ष हो उसमें हर्ज नहीं है। मैं वह भाव निकाल देने को कहता हूँ कि 'हमें संघर्ष करना है'। 'हममें' संघर्ष करने का भाव नहीं होना चाहिए, फिर भले ही 'चंदूभाई' संघर्ष करे। भाव रुंध जाएँ ऐसा हमें नहीं रहन-ा चाहिए!

देह का टकराव हो जाए और चोट लगी हो तो इलाज करवाने से ठीक हो जाता है। परंतु घर्षण और संघर्षण से मन में जो दाग़ पड़ गए हों, बुद्धि पर दाग़ पड़ गए हों तो उन्हें कौन निकालेगा? हज़ारों जन्मों तक भी नहीं जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : अत्यधिक घर्षण आए तो जड़ता आ जाती है न?

दादाश्री : जड़ता तो आ जाती है परंतु शक्तियाँ भी खत्म हो जाती

हैं। अनंत शक्तियाँ उसी के कारण नहीं दिखतीं। शक्तियाँ अनंत है, परंतु घर्षण के कारण सभी खत्म हो गई हैं! भगवान महावीर का एक भी घर्षण नहीं हुआ था। जन्म हुआ तब से लेकर ठेठ तक! और अपने तो पचास हज़ार, लाख होने चाहिए, उसके बदले करोड़ों होते हैं, उसका क्या? अरे! दिन में भी बीस-पच्चीस बार तो होता ही है। यों ही ज़रा आँख ऊँची हो जाए कि घर्षण, दूसरों पर कुछ उल्टा भाव हुआ, वह सब घर्षण! इस दीवार के साथ घर्षण हो जाए तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : सिर फूट जाएगा।

दादाश्री : वह तो जड़ है! और यह तो चेतनवालों के साथ घर्षण है, फिर क्या होगा? घर्षण ही सिर्फ नहीं हो, तो मनुष्य मोक्ष में जाए। कोई सीख गया कि मुझे घर्षण में आना ही नहीं है, तो फिर उसे बीच में गुरु की या किसी की भी ज़रूरत नहीं है। एक-दो जन्मों में सीधा मोक्ष में जाएगा। 'घर्षण में आना ही नहीं है' ऐसा यदि उसकी श्रद्धा में आ गया और निश्चित ही कर लिया, तो तब से ही समकित हो गया! इसलिए यदि कभी किसी को समकित करना हो तो हम गारन्टी देते हैं कि जाओ, घर्षण नहीं करने का निश्चय करो, तब से ही समकित हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : घर्षण और संघर्षण से मन और बुद्धि पर घाव लगते हैं?

दादाश्री : अरे! मन पर, बुद्धि पर तो क्या, पूरे अंतःकरण पर घाव लगते रहते हैं और उसका असर शरीर पर भी पड़ता है! यानी घर्षण से तो कितनी सारी मुश्किलें हैं!

प्रश्नकर्ता : घर्षण नहीं होता हो, तो उसे सच्चा अहिंसक भाव पैदा हुआ माना जाएगा?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं! परंतु इन दादा के पास से जाना कि इस दीवार के साथ घर्षण करने में इतना 'फायदा' है, तो भगवान के साथ घर्षण करने में कितना 'फायदा'? इतना जानने से ही परिवर्तन होता रहेगा!

अहिंसा तो पूरी तरह से समझ में आए, ऐसी नहीं है, और पूरी तरह

से समझना बहुत मुश्किल है। इसके बदले तो इतना पकड़ा हो न कि, 'घर्षण में कभी भी नहीं आना है।' तब फिर क्या होगा? कि शक्तियाँ सलामत रहेंगी, और दिनोंदिन शक्तियाँ बढ़ती ही जाएँगी। फिर घर्षण से होनेवाला नुकसान नहीं होगा!

कभी घर्षण हो जाए तो घर्षण के बाद हम प्रतिक्रमण करें तो वह मिट जाएँगे। यानी यह समझना चाहिए कि यहाँ पर घर्षण हो जाता है, तो वहाँ प्रतिक्रमण करना चाहिए, नहीं तो बहुत जोखिमदारी है। इस ज्ञान से मोक्ष में तो जाओगे, परंतु घर्षण से मोक्ष में जाने में अड़चन बहुत आएगी और देर लगेगी!

इस दीवार के लिए उल्टे विचार आएँ तो हर्ज नहीं है, क्योंकि एकपक्षीय नुकसान है। जब कि जीवित व्यक्तियों के लिए एक उल्टा विचार आया कि जोखिम है। दोनों पक्षों को नुकसान होता है। परंतु उसके बाद यदि हम प्रतिक्रमण करें तो सब दोष चले जाएँगे। इसलिए जहाँ-जहाँ घर्षण होता है, वहाँ पर प्रतिक्रमण करो तो घर्षण खत्म हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : घर्षण कौन करवाता है? जड़ या चेतन?

दादाश्री : पिछले घर्षण ही घर्षण करवाते हैं! जड़ या चेतन का इसमें प्रश्न ही नहीं है। आत्मा इसमें हाथ डालता ही नहीं। यह सब घर्षण *पुद्गल* ही करवाता है, परंतु जो पिछले घर्षण हैं वे फिर से घर्षण करवाते हैं। जिनके पिछले घर्षण खत्म हो चुके हैं, उन्हें फिर से घर्षण नहीं होता। नहीं तो घर्षण और उसके ऊपर से घर्षण, उसके ऊपर से घर्षण इस तरह से बढ़ता ही रहता है।

पुद्गल अर्थात् क्या कि वह पूरा जड़ नहीं है। वह मिश्रचेतन है। यह विभाविक *पुद्गल* कहलाता है। विभाविक अर्थात् विशेषभाव से परिणामित हुआ *पुद्गल,* वही सब करवाता है! जो शुद्ध *पुद्गल* है, वह *पुद्गल* ऐसा-वैसा नहीं करवाता। यह *पुद्गल* तो मिश्रचेतनवाला बन चुका है। आत्मा का विशेष भाव और इसका विशेष भाव, दोनों मिलकर तीसरा रूप बना - प्रकृति स्वरूप हुआ। वही सारा घर्षण करवाता है!

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं, घर्षण से शक्तियाँ सब खत्म हो जाती हैं। तो जागृति से शक्ति फिर से खिंचकर आ जाएगी क्या?

दादाश्री : शक्तियों को खींचने की ज़रूरत नहीं है। शक्तियाँ तो हैं ही। अब उत्पन्न हो रही हैं। पूर्व में (पिछले जन्म में) जो घर्षण हुए थे न, उससे नुकसान हुआ था, वही वापस आ रहा है। परंतु अब यदि नया घर्षण खड़ा करें तो फिर से शक्ति चली जाएगी, आई हुई शक्ति भी चली जाएगी और यदि खुद घर्षण होने ही नहीं दे तो शक्ति उत्पन्न होती रहेगी!

[१४]

प्रतिकूलता की प्रीति

प्रश्नकर्ता : हर किसी को अनुकूल संयोग ही चाहिए, ऐसा क्यों?

दादाश्री : अनुकूल अर्थात् सुख, जिसमें *शाता* (सुख-परिणाम) लगे वह अनुकूल, *अशाता* (दु:ख-परिणाम) लगे वह प्रतिकूल। आत्मा का स्वभाव आनंदवाला है, इसलिए उसे प्रतिकूलता चाहिए ही नहीं न! इसलिए छोटे से छोटा जीव हो, उसे भी यदि अनुकूल नहीं आए तो खिसक जाता है!

इसलिए अंतिम बात यह समझ लेनी है कि प्रतिकूल और अनुकूल को एक कर डालो। इस चीज़ में कुछ तथ्य नहीं है। इस रुपये के सिक्के में आगे रानी होती है और पीछे लिखा हुआ होता है, उसके जैसा है। उसी तरह इसमें कुछ है ही नहीं। अनुकूल और प्रतिकूल सब कल्पनाएँ ही हैं।

आप शुद्धात्मा बन गए, इसलिए फिर अनुकूल भी नहीं है और प्रतिकूल भी नहीं है। यह तो जब तक आरोपित भाव है, तभी तक संसार है और तभी तक अनुकूल और प्रतिकूल का झंझट है। अब तो जगत् को जो प्रतिकूल लगता है, वह हमें अनुकूल लगता है। प्रतिकूलता आए तभी हमें पता चलता है कि पारा चढ़ा है या उतरा है।

हम घर पर आएँ और आते ही कुछ *उपाधि* खड़ी हो गई तो हम जान जाते हैं कि हमें अभी तक ऊँचे-नीचे परिणाम बरत रहे हैं। वर्ना भीतर ठंडक हो गई है, ऐसा भी पता चलता है। उसके लिए थर्मामीटर चाहिए न? उसका थर्मामीटर बाज़ार में नहीं मिलता है, अपने घर पर एकाध हो

तो अच्छा। अभी यह कलियुग है, दूषमकाल है, इसलिए घर में दो-चार 'थर्मामीटर' होते ही हैं, एक नहीं होता! नहीं तो हमें कौन नापेगा? किसी को किराए पर रखें, तो भी नहीं करेगा! किरायेवाला अपना अपमान करेगा, लेकिन उसका मुँह फूला हुआ नहीं होगा, इसलिए हम समझ जाएँगे कि यह बनावटी है! और यह तो 'एक्ज़ेक्ट'! मुँह-वुँह फूला हुआ, आँखें लाल, पैसे खर्च करने पर भी ऐसा नहीं हो सकता जबकि यह तो हमें मुफ्त में मिलता है!

यह संसार आँखों से दिखने में सुंदर लगे ऐसा है। वह छूटे किस तरह? मार खाए और चोट लगे, फिर भी वापस भूल जाता है। ये लोग कहते हैं न कि बैराग नहीं रहता, लेकिन वह रहेगा किस तरह?

वास्तव में संयोगों और शुद्धात्मा के सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं। फिर संयोग भी दो प्रकार के हैं-प्रतिकूल और अनुकूल। उनमें, अनुकूल में कोई परेशानी नहीं आती, प्रतिकूल ही परेशान करते हैं। उतने ही संयोगों को हमें सँभाल लेना है, और फिर संयोग वियोगी स्वभाव के होते हैं। इसलिए उसका समय हो जाएगा, तब चलता बनेगा। हम उसे 'बैठ-बैठ' कहें, फिर भी खड़ा नहीं रहेगा!

खराब संयोग अधिक नहीं रहते। लोग दुःखी क्यों है? क्योंकि खराब संयोगों को याद कर-करके दुःखी होते हैं। वह गया, अब किस लिए रोना-धोना मचाया है? जले उस समय रोए तो बात अलग है। पर अब तो तेरे ठीक होने की तैयारी हुई है, फिर भी शोर मचाता है कि देखो, 'मैं जल गया, मैं जल गया!' करता रहता है।

आपके भी अब सिर्फ संयोग ही बचे हैं। मीठे संयोगों का आपको उपयोग करना नहीं आता। मीठे संयोगों का आप वेदन करते हो, इसलिए कड़वों का भी वेदन करना पड़ता है। परंतु यदि मीठे को 'जानो', तो कड़वे में भी 'जानपना' रहेगा! लेकिन आपकी अभी पहले की आदतें जाती नहीं, इसलिए वेदन करने जाते हो। आत्मा वेदन करता ही नहीं, आत्मा जानता ही रहता है। जो वेदन करता है वह भ्राँत आत्मा है, प्रतिष्ठित आत्मा है।

उसे भी हमें जानना है कि 'ओहोहो! यह प्रतिष्ठित आत्मा जलेबी में तन्मयाकार हो गया है।'

महावीर भगवान ने उनके शिष्यों को सिखाया था कि आप बाहर जाते हो और लोग एकाध लकड़ी मारें तो आपको ऐसा समझना है कि सिर्फ लकड़ी ही मारी है न? हाथ तो नहीं तोड़ा न? इतनी तो बचत हुई! अर्थात् इसे ही लाभ मानना। कोई एक हाथ तोड़े तो, दूसरा तो नहीं तोड़ा न? दो हाथ काट दिए, तब कहो पैर तो हैं न? दो हाथ और दो पैर काट डाले तो कहना कि मैं जीवित तो हूँ न? आँखों से तो दिख रहा है न? लाभ-अलाभ भगवान ने दिखाया। तू रोना मत, हँस, आनंद कर। बात गलत नहीं है न?

भगवान ने सम्यक् दृष्टि से देखा था, उससे नुकसान में भी फ़ायदा दिखता है।

छुटकारे की चाबी कौन सी?

इस जगत् का नियम क्या है? कि शक्तिशाली अशक्त को मारता है। कुदरत तो किसे शक्तिशाली बनाती है कि पाप कम किए हों, उसे शक्तिशाली बनाती है और पाप अधिक किए हों, उसे अशक्त बनाती है।

यदि आपको छुटकारा पाना हो तो एक बार मार खा लो। मैंने ज़िंदगीभर ऐसा ही किया है। उसके बाद फिर मैंने सार निकाल लिया कि मेरे लिए किसी भी प्रकार की मार नहीं रही, भय भी नहीं रहा। पूरा 'वर्ल्ड' क्या है, मैंने उसका सार निकाल लिया है। मुझे खुद को तो सार मिल गया है, परंतु अब लोगों को भी सार निकालकर देता हूँ।

यानी कभी न कभी तो इस लाइन पर आना ही पड़ेगा न? नियम किसी को नहीं छोड़ता है। ज़रा सा गुनाह किया कि चार पैरोंवाले बनकर भोगना पड़ेगा। चार पैरों में फिर सुख लगेगा क्या?

गुनाह मात्र बंद कर दो। अहिंसा से आपको किसी भी प्रकार की मार पड़ने का भय नहीं रहेगा। कोई मारेगा, कोई काट लेगा, उतना भी

भय मत रखना। यह पूरा कमरा साँपों से भरा हुआ हो, फिर भी यदि अहिंसक पुरुष अंदर प्रवेश करे तो साँप एक-दूसरे पर चढ़ जाएँगे, परंतु उन्हें छूएँगे नहीं!

इसलिए सावधानीपूर्वक चलना। यह जगत् बहुत ही अलग प्रकार का है। बिल्कुल न्याय स्वरूप है! जगत् का सार निकालकर अनुभव की स्टेज पर लेंगे, तभी काम होगा न? 'इसका क्या परिणाम आएगा?' उसकी 'रिसर्च' करनी पड़ेगी न?

प्रश्नकर्ता : मार खाने के बाद 'रिसर्च' करता है न?

दादाश्री : हाँ, असली 'रिसर्च' तो मार खाने के बाद ही होती है। मारने के बाद 'रिसर्च' नहीं हो पाती।

जगत् निर्दोष-निश्चय से, व्यवहार से

दादाश्री : लोगों को, खुद के दोष नहीं दिखते होंगे न?

प्रश्नकर्ता : नहीं दिखते।

दादाश्री : क्यों? उसका क्या कारण होगा? इतने सारे बुद्धिशाली लोग हैं न?

प्रश्नकर्ता : दूसरों के सभी दोष दिखते हैं।

दादाश्री : वे भी सच्चे दोष नहीं दिखते। खुद की बुद्धि से नाप-नापकर सामनेवाले के दोष निकालता है। इस जगत् में हमें तो किसी का भी दोष नहीं दिखता।

प्रश्नकर्ता : दादा, पूरा जगत् निर्दोष हैं। वह 'रियल' भाव से ठीक है, परंतु 'रिलेटिव' भाव से तो उस वस्तु में दोष रहेगा ही न?

दादाश्री : हाँ, परंतु हम अब 'रिलेटिव' में रहना ही नहीं चाहते न? हमें तो 'रियल' भाव में ही रहना है। 'रिलेटिव' भाव अर्थात् संसारभाव। आपको 'रिलेटिव' में अच्छा लगता है या 'रियल' में?

प्रश्नकर्ता : 'रियल' में ही अच्छा लगता है, दादा! लेकिन दोनों में ही रहना पड़ता है न? हम निश्चय से समझते हैं कि सब निर्दोष ही हैं, लेकिन जब व्यवहार में कई बार दूसरी तरफ़ भी देखना पड़ता है न?

दादाश्री : नहीं, व्यवहार ऐसा नहीं कहता कि सामनेवाले के दोष देखने पड़ेंगे। व्यवहार में तो 'हम' भी रहते ही हैं न? फिर भी हमें जगत् निर्दोष ही दिखता है।

जगत् में दोषित कोई है ही नहीं। दोषित दिखते हैं, वह अपनी ही भूल है। फिर भी इतने सारे कोर्ट, वकील, सरकार, सब दोषित ही कहते हैं न?

प्रश्नकर्ता : हमें कैसा मानना चाहिए? व्यवहार से तो दोषित हैं ही न?

दादाश्री : व्यवहार से कोई दोषित नहीं है।

शुद्ध व्यवहार से कोई दोषित है ही नहीं। निश्चय से सभी शुद्धात्मा हो गए, इसलिए उनके दोष हैं ही नहीं न?

और दोषित होते तो महावीर को कोई तो दोषित दिखता, परंतु भगवान को कोई दोषित नहीं दिखा। इतने बड़े-बड़े खटमल काटते थे, लेकिन वे दोषित नहीं दिखे।

दोषदर्शन, उपयोग से

प्रश्नकर्ता : याद करके पिछले दोष देखे जा सकते हैं?

दादाश्री : पिछले दोष, वास्तव में तो उपयोग से ही दिखते हैं। याद करने से नहीं दिखते। याद करने के लिए तो सिर खुजलाना पड़ता है। आवरण आ जाते हैं, तब याद करना पड़ता है न? इन नगीनभाई के साथ खिटपिट हो गई हो, तब यदि नगीनभाई का प्रतिक्रमण करें तो नगीनभाई हाज़िर हो ही जाएँगे। सिर्फ वैसा उपयोग ही रखना है। अपने मार्ग में याद करने का तो कुछ है ही नहीं। याद करना, वह तो 'मेमोरी' के अधीन है।

प्रश्नकर्ता : 'मेमोरी' अर्थात् बुद्धि के अधीन कहलाता है?

दादाश्री : 'मेमोरी' अर्थात् यदि आवरण बड़ा हो, तो एक घंटे तक याद नहीं आता, जैसे बड़ा बादल आ गया हो, और कभी-कभी पाँच मिनट में ही दिख जाता है, दो मिनट में भी दिख जाता है। इस प्रकार का याददाश्त का अनुभव आपको नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : कई बार तो घंटों तक भी ठिकाना नहीं पड़ता। अब नियम ऐसा है कि एकाग्रता से आवरण टूटते हैं। जो आवरण आधे घंटे का हो, वह एकाग्रता से पाँच मिनट में खत्म हो जाए।

[१५]

उपयोग सहित वहीं पर 'जागृति', उपयोग रहित वह 'मिकेनिकल'

प्रश्नकर्ता : 'मिकेनिकल' और 'जागृतिपूर्वक', इन दोनों के बीच का फर्क समझाइए।

दादाश्री : पूरा जगत् नींद में चल रहा है। वह सब 'मिकेनिकल' (भौतिक की तरफ झुकाववाला) कहलाता है। उसे भावनिद्रा कहा है। ये सब भावनिद्रावाले, 'मिकेनिकल' कहे जाएँगे। अब हर एक व्यक्ति उसके खुद के व्यापार में, फ़ायदे-नुकसान में जागृत है या नहीं? यानी जब व्यवसाय करता है तब उसमें जागृतिपूर्वक रहता है, और बस में बैठते समय मनुष्य जागृत रहता है या नहीं? वहाँ पर 'मिकेनिकल' नहीं होता, जागृतिपूर्वक होता है। अब जगत् इसे जागृतिपूर्वक कहता है। वास्तव में तो यह भी 'मिकेनिकल' ही है।

फ़ॉरेन के काफी कुछ लोग 'मिकेनिकल' ही कहलाते हैं। ये जानवर-तिर्यंच, ये सारे 'मिकेनिकल' कहलाते हैं न!

प्रश्नकर्ता : ये देवी-देवता भी 'मिकेनिकल' कहलाएँगे न?

दादाश्री : देवी-देवता 'मिकेनिकल' नहीं कहलाते। उन्हें जागृति तो है। कुछ देवी-देवता तो ऐसे हैं कि जिन्हें ऐसा पता चलता है कि खुद 'मिकेनिकल' में रहते हैं। इसलिए वे इससे ऊब जाते हैं कि ऐसी अवस्था नहीं होनी चाहिए। सभी देवी-देवता ऐसे नहीं होते। उनमें से कई तो ऐसे होते हैं कि बस मस्त होकर घूमते रहते हैं। वह 'मिकेनिकल' कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : ये भजन गाते हैं, उस समय खुद शब्द बोलता है लेकिन भाव कहीं और हों तो वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : वह सब 'मिकेनिकल' कहलाता है। 'मिकेनिकल' यानी उपयोगरहित और उपयोगपूर्वक कार्य हो उसे जागृति कहते हैं।

उपयोग दो प्रकार के : एक शुभ उपयोग होता है और दूसरा शुद्ध उपयोग होता है। जगत् में शुद्ध उपयोग नहीं होता, परंतु शुभाशुभ उपयोग होता है, और किसी का अशुद्ध उपयोग भी होता है। इस अशुभ उपयोग को और अशुद्ध उपयोग को उपयोग नहीं माना जाता। शुभ उपयोग को और शुद्ध उपयोग को ही उपयोग माना जाता है। अन्य (अशुभ और अशुद्ध को) तो सिर्फ पहचानने के लिए ही उपयोग कहा जाता है कि यह किस प्रकार का उपयोग है। अशुभ उपयोग और अशुद्ध उपयोग, वे सब 'मिकेनिकल' हैं और शुभ उपयोग में अंश जागृति होती है। इस भव का और परभव का हित किसमें है, ऐसी जागृति रहती है।

खुद के घर के बारे में, व्यवसाय के बारे में, अन्य किसी चीज़ के बारे में जागृति होती है, परंतु वह जागृति उतने में ही बरतती है। और बाकी सब जगह सोता है। परंतु वास्तव में इस जागृति को भी 'मिकेनिकल' ही कहा जाता है।

'मिकेनिकल' कब छूटता है? खुद का हित और अहित, दोनों निरंतर जागृति में रहें, तब 'मिकेनिकल' छूटता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा! हित और अहित, दोनों भौतिक में समाते हैं न?

दादाश्री : ऐसा नहीं है, शुभमार्ग में भी जागृति कहा जाता है। परंतु वह कब? इस भव में और परभव में लाभकारी हो वैसा शुभ हो, तब उसे जागृति कहते है। नहीं तो वो दान दे रहा हो, सेवा कर रहा हो, परंतु आगे की जागृति उसे कुछ भी नहीं होती। जागृतिपूर्वक सभी क्रियाएँ करे तो अगले जन्म का हित होगा, नहीं तो सबकुछ नींद में ही चला जाएगा। यह दान दिया, वह सब नींद में गया! जागते हुए चार आने भी जाएँ तो

बहुत हो गया! ये दान देते हैं और भीतर यहाँ की कीर्ति की इच्छा होती हो तो वह सब नींद में गया। परभव के हित के लिए यहाँ पर जो दान दिया जाता है, वह जागृत कहलाता है। हिताहित का भान अर्थात् 'खुद का हित किसमें है और खुद का अहित किसमें है' उस अनुसार जागृति रहे, वह! अगले जन्म का कोई ठिकाना नहीं हो और यहाँ दान दे, उसे जागृत किस तरह कहा जाएगा?

यह तो एक-एक शब्द यदि समझे, अर्थ ही समझे, 'फुल डेफिनेशन' समझे, तो वीतरागों के शब्द ऐसे हैं कि कल्याण हो जाए!

शुद्ध उपयोग का अभ्यास

स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति के बाद आपको क्या करना है?

आपको अब उपयोग रखना है। अभी तक आत्मा का 'डायरेक्ट' शुद्ध उपयोग था ही नहीं। प्रकृति जैसे नचाती थी, वैसे आप नाचते थे, और फिर कहते हो कि 'मैं नाचा! मैंने यह दान किया, मैंने ऐसा किया, वैसा किया, इतनी सेवा की!' अब आपको आत्मा प्राप्त हो गया, इसलिए आपको उपयोग में रहना है। अब आप पुरुष बने हैं और आपकी प्रकृति जुदा हो गई है। प्रकृति अपना काम किए बिना रहेगी नहीं, वह छोड़ेगी नहीं। और आपको, पुरुष को, पुरुषार्थ में रहना है यानी कि पुरुष को पुरुषार्थ करना है। 'ज्ञानीपुरुष' ने आज्ञा दी है, उसमें रहना है। उपयोग में रहना है।

उपयोग अर्थात् क्या? यों बाहर निकले और यों गधे जा रहे हों, कुत्ते जा रहे हों, बिल्ली जा रही हो और हम देखें नहीं और ऐसे ही चलते रहें, तो अपना उपयोग बेकार गया कहा जाएगा। उसमें तो उपयोग रखकर उसमें आत्मा देखते-देखते जाएँ तो वह शुद्ध उपयोग कहलाएगा। ऐसा शुद्ध उपयोग यदि कोई एक घंटा रखे तो उसे इन्द्र का अवतार मिलेगा, इतनी अधिक क़ीमती वस्तु है यह!

प्रश्नकर्ता : शुद्ध उपयोग व्यवहार में, व्यवसाय में रह सकता है क्या?

दादाश्री : व्यवहार का और शुद्ध उपयोग का लेना-देना नहीं है। व्यापार कर रहे हों या और कुछ भी करते हों, लेकिन स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के बाद, स्वयं पुरुष होने के बाद शुद्ध उपयोग रह सकता है। स्वरूप ज्ञान की प्रप्ति से पहले किसी को शुद्ध उपयोग नहीं रह सकता। अब आप शुद्ध उपयोग रख सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी गधे को हम परमात्मा की तरह देखें, परमात्मा मानें तो.....

दादाश्री : नहीं, नहीं। परमात्मा नहीं मानना है, परमात्मा तो भीतर बैठे हैं वे परमात्मा हैं और बाहर बैठा है, वह गधा है। उस गधे के ऊपर बोरी रखकर और भीतरवाले परमात्मा को देखकर चलना है।

पत्नी में परमात्मा देखकर व्यवहार करना। वर्ना पत्नी से विवाह किया है, तो क्या संन्यासी बन जाएँ? ये जवान लड़के क्या संन्यासी बन जाएँ? नहीं, नहीं, संन्यासी नहीं बनना है। भीतर भगवान देखो। भगवान क्या कहते हैं? 'मेरे दर्शन करो। मुझे और कोई पीड़ा नहीं है। मुझे कोई हर्ज नहीं है। व्यवहार, व्यवहार में बरतता है, उसमें आप मुझे देखो, शुद्ध उपयोग रखो।'

प्रश्नकर्ता : पेकिंग को पीड़ा होती है, उसका क्या?

दादाश्री : वह पीड़ा किसी को भी नहीं होती। गधे पर बोरियाँ रखो, फिर भी उसे पीड़ा नहीं होती और नहीं रखो, तब भी पीड़ा नहीं होती। गधे को तो हम बहुत अच्छी तरह पहचानते हैं। हम कांट्रेक्टर का व्यवसाय करते हैं, इसलिए हमारे यहाँ दो सौ-दो सौ गधे काम करने आते हैं। ऐसे-ऐसे कान गिरा देते है, तब हम समझ जाते हैं कि इतना अधिक वज़न उठाया है, फिर भी वह अपनी मस्ती में ही है! उसकी मस्ती वह जाने। आपको क्या पता चले वह!

उपयोग जागृति

प्रश्नकर्ता : यह रेशम का कीड़ा है, वह मेहनत करके कोकून

बनाता है और फिर खुद ही उसमें फँसता है! फिर बाहर निकलने के लिए कोकून की माया का छेदन करना पड़ता है। अब उसके कितने लेयर्स हैं? ये सब....

दादाश्री : लेयर्स-वेयर्स कुछ भी नहीं, सिर्फ घबराहट ही है! यह मैंने आपको ज्ञान दिया न! इसलिए अब आप शुद्धात्मा हो गए। इसलिए अब ये मन-वचन-काया और 'चंदूभाई' के नामकी जो-जो माया है, वह सब 'व्यवस्थित' के ताबे में है। भीतर 'व्यवस्थित' प्रेरणा देगा। इसलिए आपको तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसी में आप रहो, और इन 'चंदूभाई' का क्या हो रहा है, 'चंदूभाई' क्या कर रहे हैं, वह आप देखते रहो। बस इतना हो गया तो 'आप' पूर्ण हुए। दोनों अपने-अपने काम करते रहेंगे। 'चंदूभाई' 'चंदूभाई' का काम करेंगे। उसमें अब दख़ल मत करो, यानी आप कोकून के बाहर निकल गए। एक ही दिन 'आप' दख़ल नहीं करो, तो आपको समझ में आ जाएगा कि 'ओहोहो! मैं कोकून के बाहर निकल गया।'

एक ही दिन रविवार को आप यह प्रयोग करके तो देखो। आपने जो पाँच (इन्द्रियों के) घोड़ों की लगाम पकड़ी है, उसे छोड़कर मुझे पकड़ने दो न! फिर आप आराम से रथ में बैठो और कहना कि, 'दादा, आपको जैसे चलाना हो वैसे चलाइए, हम तो बस आराम से बैठे हैं!' फिर देखो, आपका रथ गड्ढ़े में नहीं गिरेगा। यह तो आपको चलाना नहीं आता और आप उसे चलाने जाते हो। इसलिए जब 'स्लोप' (ढलान) आए तब लगाम ढीली रख देते हो और चढ़ाई पर चढ़ना हो तो खींचते रहते हो! तो यह सब विरोधाभासी है। वर्ना मैंने जो आत्मा दिया है न, तो उस कोकून के बाहर आप निकल ही गए हो!

लेकिन अब आपको उपयोग सेट करना पड़ेगा। अर्थात् आत्मा आपको दिया है, परंतु आत्मा का उपयोग ऐसी वस्तु है कि स्लिप होने का उपयोग तो सहज ही रहता है उसे! यानी यह उपयोग सेट करना है। उसके लिए खुद को जागृति रखनी पड़ेगी, पुरुषार्थ करना पड़ेगा। क्योंकि खुद पुरुष बन गया है!

अब स्लिप होने का उपयोग किसे कहते है? एक मिलमालिक सेठ थे। वे मेरे साथ भोजन करने बैठे। उसकी वाइफ सामने आकर बैठ गई। मैंने कहा, 'क्यों आप ऐसे सामने आकर बैठी हैं?' तब सेठानी ने कहा, 'ये सीधी तरह से भोजन नहीं करते। तो आज आप आये हैं, तो ज़रा सीधी तरह खाएँ, इसलिए मैं बैठी हूँ!'

तब सेठ ने कहा, 'उठ, उठ, तू तो बेअक़्ल है।' मैं समझ गया सब कि 'सेठ कैसे होंगे'। मैंने सेठ से कहा, 'सेठानी आपके हित के लिए कह रही हैं। आप सीधी तरह से भोजन करो तो आपका शरीर अच्छा रहेगा। उल्टा उसे बेअक़्ल कहकर किसलिए धमका रहे हो?' तब सेठ ने कहा कि 'उसकी बात तो ठीक है। मैं जब खाना खाने बैठता हूँ, तब मेरा चित्त मिल में रहता है, वहाँ सेक्रेटरी के साथ बातें करता रहता हैं और यहाँ पर यह शरीर खाता रहता है!' इसे, स्लिप हो चुका उपयोग कहा जाता है। फिर मैंने सेठ से कहा, ''सेठ, यह आपका उपयोग स्लिप हो गया। उससे क्या होगा जानते हो? जब चित्त 'एबसेन्ट' हो उस समय यदि आप भोजन करो, तो 'हार्टफेल' के साधन उत्पन्न होंगे!' भोजन करते समय कभी भी चित्त 'एबसेन्ट' नहीं रखना चाहिए!'' तब सेठ ने कहा, ''मेरा चित्त 'एबसेन्ट' ही रहता है, मुझे कोई रास्ता बताइए।'' उसके बाद मैंने उन्हें रास्ता बताया कि 'कैसे चित्त हाज़िर रह सकता है।' अब उस सेठ को पैसे गिनने को दिए हों, तब क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : भोजन करना भी भूल जाएगा।

दादाश्री : उस समय उसका उपयोग पैसे गिनने में ही रहेगा। एक बनिये के बेटे को नौकरी में छह सौ की तनख़्वाह मिलती थी। उससे मैंने पूछा कि, 'तनख़्वाह में एक-एक के नोट तुझे दें तो तू क्या करेगा?' तब उसने कहा कि, 'मैं गिनकर लूँगा!' 'अरे, छह सौ नोट तू कब गिनेगा? इसका अंत कब आएगा?' इतने में कोई शिकारी हो, तो वह ऐसे झपटकर चलता बनेगा, और ये रुपये गिनने में तू उपयोग रखे तो, तेरा कितना टाइम बिगड़े? बहुत हुआ तो पाँच रुपये कम निकलेंगे, और क्या होगा? और ये लोग कम नोट देंगे ही नहीं न! सब गिन-गिनकर लेते हैं, ऐसा वे जानते

हैं। अपने जैसे पुण्यशाली तो कोई ही होंगे कि जो बिना गिने लें। इसलिए अपना तो ऐसे के ऐसे ही निकल जाएगा। इसमें टाइम कौन वेस्ट करे? तब उसने कहा कि, 'पाँच-पाँच पैसे हों, तब भी मैं गिनकर लूँगा!' धन्यभाग हैं इनके! ऐसे उपयोग व्यर्थ जाता है, स्लिप हो जाता है।

यदि शुद्धात्मा में उपयोग होगा तो वह सभी जगह पर हेल्प करेगा। खाएँ, पीएँ, व्यवसाय करें, उन सभी जगह पर 'हेल्प' होगी। क्योंकि आत्मा (प्रतिष्ठित) इसमें और कुछ नहीं करता, सिर्फ दख़ल ही करता रहता है।

दख़ल का अर्थ क्या होता है? कोई पूछे कि 'दही किस तरह बनता है? वह मुझे सिखाइए, मुझे बनाना है।' तो मैं उसे तरीका बताऊँ कि दूध गरम करके, ठंडा करना। फिर उसमें एक चम्मच दही डालकर हिलाना। फिर ढँककर आराम से सो जाना, फिर कुछ भी मत करना। अब वह रात को दो बजे 'यूरिन' के लिए उठा हो, तब वापस अंदर रसोई में जाकर दही में उँगली डालकर हिलाकर देखता है कि दही बन रहा है या नहीं? इसे दख़ल करना कहते हैं, और उससे सुबह दही में गड़बड़ हो जाती है! इसी तरह इस संसार में गड़बड़ करके लोग जीते हैं! आत्मा का उपयोग नहीं हटने देना, उसी को उपयोग जागृति कहते हैं।

उपयोग किसे कहते है? मान लो डेढ़ मील तक दोनों तरफ़ समुद्र हो और बीच में एक ही आदमी चल सके, उतने संकरे पुल पर से आपको चलने को कहा हो तो उस समय जो जागृति रखते हो, उसे उपयोग कहते हैं। अब उस घड़ी यदि बैंक का विचार आए कि इतनी रकम बची है और इतनी भरनी है, तो उसे तुरंत ही एक तरफ़ धकेल देता है और जागृति को पुल पर चलने के लिए ही 'कोन्सेन्ट्रेट' करता है!

शास्त्रकारों ने कहा है कि खाते समय, पीते समय उपयोग रखो, हर एक काम करते समय उपयोग में रहो। उपयोग अर्थात् खाते समय अन्य कुछ भी नहीं हो। चित्त को हाज़िर रखना, वह उपयोग है। समुद्र दोनों तरफ़ हो, वहाँ पर चित्त को हाज़िर रखेगा या नहीं रखेगा? छोटे बच्चे भी खेल को एक तरफ़ रखकर जागृत हो जाएँगे! वे भी बहुत पक्के होते हैं!

किसी देहधारी को उपयोग नहीं हो, ऐसा नहीं हो सकता। पैसे गिनते समय आप देख आना। उस घड़ी बहू आई हो, बेटी आई हो तो भी वह उन्हें देखता है, लेकिन उसे नज़र नहीं आता। वह पत्नी कहती है कि, 'आप पैसे गिन रहे थे तब हम आए थे, फिर भी हम आपको नहीं दिखे?' तब वह कहता है कि, 'नहीं, मेरा लक्ष्य नहीं था!' आँखें देखें फिर भी दिखे नहीं, वह उपयोग!

अभी भी हमारा शुद्धात्मा में उपयोग है। आपके साथ बातें कर रहा हूँ या भले हू कुछ भी कर रहा हूँ, लेकिन हमारा उपयोग में उपयोग रहता है! ये मन-वचन-काया उनका कार्य करते हैं, वहाँ पर भी उपयोग में उपयोग रखा जा सकता है।

आपको खुद को तो जितना रहे उतना ठीक। नहीं रहे तो थोड़े ही कोई सुरसागर में (बड़ौदा का तालाब) गिरना चाहिए? अपना यह सुरसागर तालाब ढूँढ़ने का धंधा नहीं है।

आत्मा और यह प्रकृति दोनों ही अलग हैं, स्वभाव से अलग हैं। सब तरह से अलग हैं। संसार में आत्मा बिल्कुल भी उपयोग में नहीं आता। सिर्फ आत्मा का प्रकाश ही उपयोग में आता रहता है। वह प्रकाश नहीं हो तो यह प्रकृति बिल्कुल भी चलेगी ही नहीं। यह प्रकाश है, तो यह सारी प्रकृति चल रही हैं, बाकी आत्मा इसमें कुछ भी नहीं करता।

[१६]

बात को सीधी समझ जाओ न!

प्रश्नकर्ता : चारित्र किसे कहते है?

दादाश्री : 'ज्ञाता-दृष्टा' रहा, उतना ही भाग चारित्र कहलाता है। 'चंदूभाई' को आप देखते ही रहो, चंदूभाई का मन क्या करता है, मन में क्या-क्या विचार आते हैं, उसकी वाणी क्या बोल रही है! उन सबको 'आप' देखते ही रहो। ये बाहर सब कौन-कौन मिलते हैं! वे स्थूल संयोग। फिर मन में सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग, उन सबको आप देखते रहो, वह आपके आत्मा का स्वभाव है और वही चारित्र कहलाता है! उसमें देखना-जानना और परमानंद में रहना होता है और दुनिया का भ्राँति का स्वभाव क्या है कि देखना-जानना और दुःखानंद में रहना! दुःख और आनंद, दुःख और आनंद उन दोनों का मिक्सचर!

प्रश्नकर्ता : राग-द्वेष किस तरह से जाएँगे?

दादाश्री : 'देहाध्यास' है, तब तक राग-द्वेष हैं, 'देहाध्यास' मिटा कि राग-द्वेष गए!

'देहाध्यास' अर्थात् 'यह देह मैं हूँ, यह वाणी मैं बोलता हूँ, यह मन मेरा है,' वह देहाध्यास। आपका यह सब चला गया, यानी देहाध्यास गया और 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भान रहा तो फिर वीतराग कहलाएगा। फिर भी जो राग-द्वेष दिखते हैं, वे तो होते ही रहेंगे, उसे भगवान ने चारित्रमोह कहा है। मूल मोह, दृष्टिमोह खत्म हो गया। जो उल्टा ही चल रहा था, वह अब सीधा चलने लगा। दृष्टि सीधी हो गई। परंतु पहले के जो परिणाम हैं, वह मोह, परिणामी मोह तो अभी आएगा। उसे वर्तन मोह कहते हैं। लोग

आपको दिखाते भी हैं कि यह आपमें मोह भरा हुआ है और आपको उन्हें 'हाँ' कहना पड़ता है।

यहाँ पर आज भगवान खुद आए हों और कोई पूछे कि भगवान! ये 'महात्मा' आलू की सब्ज़ी क्यों बार-बार माँगते रहते हैं? क्या इनका यह मोह गया नहीं है?

तब भगवान उन्हें क्या कहेंगे, पता है? भगवान कहेंगे, ''यह मोह है, लेकिन यह चारित्रमोह है, 'डिस्चार्ज' मोह है। उनकी ऐसी इच्छा नहीं है, परंतु आ पड़ा है, इसलिए यह सारा मोह उत्पन्न हो रहा है और यह खा लेने के बाद उन्हें ऐसा कुछ भी नहीं रहेगा!'' खाने में ज़रा विशेषता हुई, वह 'चारित्रमोह' है। और सिर्फ भूख के लिए ही खाया, उसे चारित्रमोह नहीं कहा जाता। भूख के लिए खाने से पहले कहे कि, 'सब्ज़ी लाओ, चटनी लाओ', तो हम नहीं समझ जाएँगे कि इसका मोह है? और खाते-खाते दाल ज़रा बचा ली हो तो वह भी चारित्रमोह है। हम उन्हें पूछें कि यह दाल क्यों नहीं खाई? तब वे कहते हैं कि, 'नहीं, ज़रा ठीक नहीं लगी।' वह भी एक प्रकार का मोह ही है न? खाना रहने दिया वह भी मोह और अधिक खा गया, वह भी मोह।

और जिसे राग-द्वेष नहीं हैं, कोई मोह नहीं है, उसके सामने तो जो भी आए, वह ले लेता है। दूसरी कुछ झंझट ही नहीं रहती, उसे तो मोह नहीं कहते। परंतु इस मोह की क़ीमत नहीं है। यह मोह तो लाखों मन (वज़न) का होता है, लेकिन यह मोह *निकाली* मोह होने की वजह से इसकी कोई क़ीमत ही नहीं है। दर्शनमोह जाने के बाद, जो मोह बचता है, वह चारित्रमोह। उसकी कोई क़ीमत ही नहीं है, वह 'डिस्चार्ज मोह' है और जिसका दर्शनमोह अभी तक गया नहीं है, ऐसे बड़े त्यागी हों, परंतु वे यदि कभी ज़रा सी सब्ज़ी अधिक माँग लें, तो भी उस मोह की बहुत क़ीमत है! 'अरे, भाई, हम रोज़ अधिक सब्ज़ी माँगते हैं, फिर भी हमें कुछ नहीं मिलता और इन्हें एक दिन में ही इतना सबकुछ मिल गया?'

तब कहे, 'हाँ, एक दिन में बहुत भयंकर दोष लग जाते हैं', क्योंकि

वह तो सचमुच में मोह है, इसलिए एक दिन में ही पूरे त्याग का फल चला जाता है और स्वरूपज्ञानी 'महात्माओं को' भले ही कितना भी मोह हो, फिर भी उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता! इस बात को समझना ही है। यह चारित्रमोह बहुत-बहुत सूक्ष्म चीज़ है।

शरीर के पोषण के लिए ही खुराक लेना। उसमें लोग ऐसा नहीं कहते कि इस भाई ने मोह किया है, लेकिन उसमें तरह-तरह की चटनियाँ, अचार वगैरह सब ले, आम का रस ले, उसे जगत् ऐसा कहता है कि 'आपमें मोह है।' अरे! मुझे भी कहते हैं न! मैं आम, अचार, चटनी खाता हूँ, तब मुझे भी कहते हैं। लेकिन वह वर्तन मोह है, उसका हम *निकाल* करते हैं। *निकाल* किया इसलिए फिर से उत्पन्न नहीं होगा। जो पहले के 'डिस्चार्ज' के रूप में था, वह जा रहा है।

प्रश्नकर्ता : लोग उसे क़बूल नहीं करेंगे।

दादाश्री : लोग उसे समझते भी नहीं, वे तो इसे मोह की तरह ही देखते हैं। महावीर भगवान उस मोह को ही देखते थे। मोह तो, कपड़े पहनना भी मोह है और नंगे फिरना भी मोह है। दोनों ही मोह हैं। लेकिन 'डिस्चार्ज' मोह है। पहले 'मैं चंदूभाई हूँ' मानकर उल्टा ही चलता रहता था, वह अब सीधा हुआ। उसकी पूरी दृष्टि सुधर गई। इसलिए अंदर नए मोह का जथ्था उत्पन्न नहीं होता। परंतु पुराना मोह है, उसके परिणाम आते हैं, उन्हें भुगते बगैर तो चारा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि दृष्टिमोह से चारित्रमोह उत्पन्न हुआ, ऐसा?

दादाश्री : दृष्टिमोह और चारित्रमोह, ये दोनों मोह एक हो जाएँ तब उसे 'अज्ञानमोह' कहा जाता है। पूरा ही जगत् उस मोह में ही फँसा है न? इनमें से एक सो जाए तो दूसरे का हल आ जाएगा, ऐसा कहते है। यह दृष्टिमोह जाए तो बस पूरा हो गया। फिर चारित्रमोह की क़ीमत चार आने भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : परंतु क्रमिक मार्ग में उस चारित्रमोह को कोई भी प्रतिज्ञा लेकर, अहंकार करके निकाल देते है न?

दादाश्री : दृष्टिमोह जाना चाहिए, तभी जो बाकी बचा, वह चारित्रमोह माना जाएगा। अर्थात् चारित्रमोह कब कहलाएगा? दर्शनमोह टूटने पर मोह का विभाजन हो जाता है। उसमें से एक भाग खत्म हो गया और जो दूसरा भाग बचा, वह चारित्रमोह, 'डिस्चार्ज' मोह है। यदि स्वरूप का भान हो जाए तो 'चार्ज' मोह खत्म हो जाता है। यह 'चार्ज' मोह ही हानिकारक है। 'चार्ज' मोह का अर्थ ही दर्शनमोह।

प्रश्नकर्ता : परंतु लोग तो डिस्चार्ज मोह को निकालने के लिए माथापच्ची करते हैं न?

दादाश्री : नहीं। डिस्चार्ज मोह को तो वे लोग समझते ही नहीं। जगत् तो उसे ही 'मोह' कहता है। 'डिस्चार्ज' मोह को निकालने के लिए दूसरा मोह खड़ा किया है, उसी का नाम 'क्रमिक मार्ग।' यानी हम कुछ अलग कहना चाहते है कि इस पीड़ा में किस लिए उतरते हो? सीधी बात समझ जाओ न? यदि सीधा समझोगे तो हल आएगा। तब वे कहते हैं कि सीधा समझानेवाले कोई हों, तब सीधा समझेंगे न? जहाँ सीधा समझानेवाले हैं ही नहीं, वहाँ क्या होगा? वर्ना ज्ञान तो था ही न, लेकिन जहाँ ज्ञानी नहीं होते, वहाँ क्या हो सकता है?

आप सब ये लड्डू-पूड़ी खाते हो, तो मैं किसी को डाँटने आता हूँ? मैं जानता हूँ कि यह अपने मोह का *निकाल* कर रहा है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे भी आप कहाँ किसी को डाँटते हैं?

दादाश्री : यह डाँटने जैसा है ही नहीं। सभी *निकाल* कर रहे हैं, वहाँ क्या डाँटना? दर्शनमोह हो और वह उल्टा चल रहा हो, तब तो डाँटना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : किसी का डिस्चार्ज मोह देखकर ऐसी प्रेरणा ली कि 'मैं इससे भी अधिक अच्छा करूँ', ऐसे मोह में उतर पड़े, तो वह कौन सा मोह है?

दादाश्री : वह भी सारा डिस्चार्ज मोह ही कहलाता है। हमें ऐसा

दिखता है कि इसने कुछ नया किया है, लेकिन वह करता नहीं है। वह जो कुछ भी नया करता है वह भी डिस्चार्ज मोह है। यह हमारी 'साइन्टिफिक' खोज है। यदि समझे तो हल ला सकें, ऐसा है। एक जन्म में करोड़ों जन्मों के परिणामों का नाश हो जाए, ऐसा है!

प्रश्नकर्ता : परंतु इस डिस्चार्ज मोह का अंत कब आएगा?

दादाश्री : जब तक यह देह है, तब तक डिस्चार्ज मोह रहेगा। और मेरी आज्ञा का पालन किया है, उससे दूसरा मोह उत्पन्न किया है, वह एक जन्म के लिए आपके काम आएगा।

[१७]

कर्मफल-लोकभाषा में, ज्ञानी की भाषा में

प्रश्नकर्ता : सबकुछ यहीं के यहीं भुगतना है, ऐसा कहते हैं। वह क्या है?

दादाश्री : हाँ, भुगतना यहीं के यहीं है, परंतु वह इस जगत् की भाषा में। अलौकिक भाषा में इसका क्या अर्थ है?

पिछले जन्म में अहंकार का, मान का कर्म बँधा हो, तो इस जन्म में उनके सारे बिल्डिंग बनते हैं, तो फिर उससे वह मानी बनता है। किस लिए मानी बनता है? कर्म के हिसाब से वह मानी बनता है। अब मानी बना, उसे जगत् के लोग क्या कहते हैं कि, 'यह कर्म बाँध रहा है, यह ऐसा मान लेकर घूमता रहता है।' जगत् के लोग इसे कर्म कहते हैं। जब कि भगवान की भाषा में यह कर्म का फल आया है। फल अर्थात् यदि मान नहीं करना हो, फिर भी करना ही पड़ता है, हो ही जाता है।

और जगत् के लोग जिसे कहते हैं कि यह क्रोध करता है, मान करता है, अहंकार करता है, अब उसका फल यहीं पर भुगतना पड़ता है। मान का फल यहीं पर क्या आता है कि अपकीर्ति फैलती हैं, अपयश फैलता है। वह यहीं पर भुगतना पड़ता है। यह मान करें, उस समय यदि मन में ऐसा रहे कि यह गलत हो रहा है, ऐसा नहीं होना चाहिए, हमें निर्मानी बनने की ज़रूरत है, ऐसे भाव हों तो वह नया कर्म बाँधता है। उसके कारण अगले जन्म में फिर वह निर्मानी बनता है।

कर्म कि थ्योरी ऐसी है! गलत होते समय भीतर भाव बदल जाएँ तो नया कर्म उस तरह का बँधता है। और गलत करे और ऊपर से खुश

हो कि, 'ऐसा ही करना चाहिए।' तो फिर से नया कर्म मज़बूत हो जाता है, निकाचित हो जाता है। उसे फिर भोगना ही पड़ेगा।

पूरा साइन्स ही समझने जैसा है। वीतरागों का विज्ञान बहुत गुह्य है।

परिणाम में समता

अपने 'अक्रम' का सिद्धांत ऐसा है कि पैसे गिर रहे हों, तो पहले गिरने बंद करो और फिर जो पहले गिर चुके हैं, वे बीन लेना! जगत् तो बीनता ही रहता है। अरे जो गिर रहे हैं पहले उन्हें तो बंद कर, नहीं तो *निकाल* ही नहीं होगा!

आत्मा के अलावा बाकी का सब क्या है? व्यवहार है। वह व्यवहार पराश्रित है। आपके हाथ में इतना सा भी नहीं है। लोग पराश्रित को स्वाश्रित मानते हैं, एक ने माना, दूसरे ने माना इसलिए खुद ने भी मान लिया। फिर इससे संबंधित कोई विचार ही नहीं आता। एक बार रोग घुस गया, तो फिर निकले किस तरह? फिर तो यह संसार रोग बढ़कर 'क्रोनिक' हो गया। जब रोग 'क्रोनिक' नहीं हुआ था, तब नहीं निकल पाया। वह अब 'क्रोनिक' होने के बाद किस तरह निकलेगा? यह विज्ञान मिलेगा तब छूटेगा।

आपका जितना भी व्यवहार है, यदि वह सब पूरा कर दिया, तब फिर आपको व्यवहार से संबंधित बहुत मुश्किल नहीं आएगी। भीतर जैसी भावना हो वह सब पहले से तैयार होता है! 'विहार लेक' पर घूमने गए थे, वहाँ मुझे नया ही विचार आया कि ये सौ लोग-पचास स्त्रियाँ और पचास पुरुष सभी मिलकर माताजी का गरबा करें तो कितना अच्छा! तो इस विचार के साथ जैसे ही घूमकर ऐसे देखने गया, तो वहाँ तो सब ऐसे खड़े हो चुके थे और गरबा करने लगे! अब इसके लिए मैंने किसी से कहा नहीं था, फिर भी हो गया! यानी ऐसा होता है! आपका सोचा हुआ बेकार नहीं जाता, बोलना बेकार नहीं जाता। अभी तो लोगों का कैसा है? कुछ फलित ही नहीं होता। वाणी भी फलित नहीं होती, विचार भी नहीं फलते और वर्तन भी नहीं फलता। तीन बार उगाही के लिए धक्के खाए, फिर भी देनदार नहीं मिलता! लेकिन अगर कभी मिल जाए, तो वह गुस्सा करता रहता है!

इसमें तो कैसा है कि घर बैठे पैसे लौटाने आए ऐसा मार्ग है! पाँच-सात बार उगाही के लिए चक्कर काटने पर भी वह नहीं मिलें, और अंत में मिले तब वह कहता है कि एक महीने बाद आना। उस घड़ी आपके परिणाम नहीं बदलें, तो घर बैठे पैसा आएगा!

आपके परिणाम बदल जाते हैं न? 'यह बेअक्ल है, नालायक है, चक्कर बेकार गया।' वगैरह। यानी आपके परिणाम बदले हुए होते हैं। फिर से आप जाओ तब वह आपको गालियाँ देता है। मेरे परिणाम नहीं बदलते, फिर क्या चिंता? परिणाम बदल जाएँ, तो वह बिगड़नेवाला नहीं होगा, फिर भी बिगड़ेगा।

बाघ हिंसक है या बिलीफ़?

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ यही है कि हम बिगाड़ते हैं?

दादाश्री : अपना सबकुछ हम ही बिगाड़ते हैं। हमें जितनी अड़चनें आती हैं, वे सब हमारी ही बिगाड़ी हुई हैं। कोई टेढ़ा हो तो उसे सुधारने का रास्ता क्या है? तब कहे कि 'सामनेवाला चाहे कितना भी दु:ख दे रहा हो, फिर भी उसके लिए उल्टा विचार तक नहीं आए', वह उसे सुधारने का रास्ता! इससे अपना भी सुधरता है और उसका भी सुधरता है! जगत् के लोगों को उल्टा विचार आए बगैर रहता नहीं। और हमने तो 'समभाव से *निकाल*' करने को कहा है, 'समभाव से *निकाल*' यानी उसके लिए कोई भी विचार नहीं करना है।

यदि बाघ के प्रतिक्रमण करें तो बाघ भी अपने कहे अनुसार काम करेगा। बाघ में और मनुष्य में कोई फर्क नहीं है। फर्क आपके स्पंदन का है। उनका असर होता है। 'बाघ हिंसक है' जब तक आपके मन में ऐसा ध्यान रहे, तब तक वह हिंसक ही रहता है और बाघ 'शुद्धात्मा है' ऐसा ध्यान रहे तो, वह शुद्धात्मा ही है। सभीकुछ हो सके, ऐसा है।

इस बॉल को फेंकने के बाद अपने आप स्वभाव से ही परिणाम बंद हो जाएँगे। वह सहज स्वभाव है। वहाँ पर पूरे जगत् की मेहनत बेकार

गई! जगत् परिणाम को बंद करने जाता है और कॉज़ेज़ चलते ही रहते है! इसलिए फिर बड़ में से बीज और बीज में से बड़ बनते ही रहते हैं। पत्तियाँ काटने से दिन नहीं बदलेंगे। उसे तो, मूल सहित निकाल देंगे, तब काम होगा। हम तो उसके मुख्य जड़ में ज़रा दवाई डाल देते हैं, तो पूरा पेड़ सूख जाता है।

यह संसारवृक्ष कहलाता है। इस ओर कड़वे फल आते हैं, इस ओर मीठे फल आते हैं। वे वापस खुद को ही खाने पड़ते हैं।

एक बार आम पर बंदर आएँ और आम तोड़ दें, तो मालिक के परिणाम कहाँ तक बिगड़ते हैं? परिणाम इतने अधिक बिगाड़ते हैं कि आगे-पीछे का सोचे बिना बोल देता है कि, 'यह आम का पेड़ काट देंगे तभी ठीक रहेगा!' अब यह तो भगवान की साक्षी में बात निकली, वह क्या बेकार जाएगी? परिणाम नहीं बिगड़ेंगे तो कुछ भी नहीं होगा। सबकुछ शांत हो जाएगा। बंद हो जाएगा!

भाव और इच्छा की उत्पत्ति

प्रश्नकर्ता : भाव और इच्छा में क्या फर्क है?

दादाश्री : इस जगत् में जो दिखता है, उसे लोग भाव कहते हैं। भाव तो किसी को दिखते ही नहीं। खुद को भी पता नहीं चलता कि क्या भाव किया?

प्रश्नकर्ता : यह ज्ञान मिलने के बाद हमें बहुत सारे भाव होते हैं, तो उनसे कर्म 'चार्ज' नहीं होंगे?

दादाश्री : भाव आपको होंगे ही किस तरह? 'आप' वापस फिर से 'चंदूभाई' बन जाओगे, तो भाव होंगे। यदि आप 'चंदूभाई' बन जाओगे तब अहंकार होगा, उसके बाद भाव होगा। 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भान रहे, तभी भाव होगा।

प्रश्नकर्ता : और ये जो इच्छाएँ होती हैं, वह कर्तापन नहीं है?

दादाश्री : नहीं, अब आपकी सभी इच्छाएँ, अस्त होती हुई इच्छाएँ कहलाती हैं। इच्छा तो मुझे भी होती है! बारह बज गए हों, तो मैं भी ऐसे रसोई की तरफ़ देखने जाता हूँ, तब आप नहीं समझ जाओगे कि दादाजी की कोई इच्छा है! वह भी अस्त होती हुई इच्छा कहलाती है! पलभर के बाद वे सभी इच्छाएँ अस्त हो जाएँगी। वे उगती हुई इच्छाएँ नहीं कहलातीं! वे सभी *निकाली* बाबत कहलाती हैं।

प्रश्नकर्ता : काम करें और बीच में इच्छा आए तो उस हर एक बार कौन सा 'टेस्ट' 'अप्लाइ' करें कि जिससे पता चल जाए कि ये 'डिस्चार्ज' इच्छाएँ हैं और ये 'चार्ज' इच्छाएँ हैं?

दादाश्री : आप 'चंदूभाई' बन जाओगे तभी 'चार्ज' होगा। इसमें उलझने की कोई ज़रूरत ही नहीं है। यह तो विज्ञान है! अपना 'अक्रम विज्ञान' कहता है कि, सैद्धांतिक बोलना ताकि फिर से चूंथामण (बारबार सही क्या और गलत क्या पर सोचकर उलझना) नहीं करनी पड़े। फिर से चूंथामण करना पड़े, उसका अर्थ ही क्या?

लोगों ने मान लिया है कि आत्मा को इच्छा होती है। फिर वापस ऐसा कहते है कि मेरी इच्छा बंद हो गई। इच्छाएँ यदि आत्मा का गुण हो तो फिर किसी की बंद होंगी ही नहीं न! यह तो विशेष परिणाम है! इसके बावजूद भी आत्मा वीतराग रहा है! लोगों को उसका पता ही नहीं है। वे तो ऐसा ही कहते हैं कि मेरा आत्मा ही ऐसा बिगड़ गया है, मेरा आत्मा पापी है, रागी-द्वेषी है। अब कुछ लोग आत्मा को शुद्ध ही कहते हैं। वे फिर दूसरी तरह से मार खाते हैं। आत्मा शुद्ध ही है, इसलिए कुछ करना ही नहीं है। फिर मंदिर क्यों जाता है? पुस्तकें क्यों पढ़ता है? अब ये दोनों ही भटक मरे हैं। आत्मा वैसा नहीं है। यह बहुत ही सूक्ष्म बात है। इसीलिए तो सभी शास्त्रों ने कहा है कि, 'आत्मज्ञान जानो! आत्मा खुद ही परमात्मा है!'

रिकॉर्ड की गालियों से आपको गुस्सा आता है?

प्रश्नकर्ता : ये मन-वचन-काया पर हैं और पराधीन है, इसलिए 'व्यवस्थित' के अधीन हुआ न?

दादाश्री : हाँ, 'व्यवस्थित' के अधीन है। आत्मा के अधीन नहीं, ऐसा हम कहना चाहते हैं। 'पर' अर्थात् तेरा नहीं है और 'पराधीन' अर्थात् तेरे हाथ का खेल नहीं है। तेरा नक्की किया हुआ इसमें नहीं हो सकेगा।

किसीने गाली दी, तो वह पराधीन है। हम ऐसा कहते हैं, कि रिकॉर्ड है, उसका क्या कारण है कि सामनेवाले को गाली देने की शक्ति ही नहीं है। वह तो 'व्यवस्थित' के ताबे में है! यानी वास्तव में यह 'रिकार्ड' ही है, और ऐसा समझ लो, फिर आपको क्यों गुस्सा आएगा क्या? 'रिकार्ड' बोल रहा हो कि 'चंदूभाई खराब है, चंदूभाई खराब है', तो उससे आपको गुस्सा आएगा? यह तो मन में ऐसा लगता है कि, यह 'उसने' बोला इसलिए गुस्सा आता है! वास्तव में 'वह' बोलता ही नहीं है। वह रिकार्ड बोलता है और वह तो, जो आपका है वही आपको वापस दे रहा है।

कुदरत की कितनी अच्छी व्यवस्था है! यह बहुत ही समझने जैसा है। अक्रम विज्ञान ने तो सभी बहुत अच्छे स्पष्टीकरण दे दिये हैं। 'व्यवस्थित' की तो यह नयी ही बात है!

अकर्म दशा का विज्ञान

प्रश्नकर्ता : कोई भी गलत काम करें, तब कर्म तो बँधेंगे ही, ऐसा मैं मानता हूँ।

दादाश्री : तो अच्छे कर्मों का बंधन नहीं है?

प्रश्नकर्ता : अच्छे और बुरे, दोनों से कर्म बँधते हैं न?

दादाश्री : अरे! अभी भी आप कर्म बाँध रहे हो! अभी आप बहुत ऊँचा पुण्य का कर्म बाँध रहे हो! परंतु कर्म कभी भी बँधे ही नहीं, ऐसा दिन नहीं आता न? इसका क्या कारण होगा?

प्रश्नकर्ता : कुछ न कुछ तो कर ही रहे होंगे न, अच्छा या बुरा?

दादाश्री : हाँ, परंतु कर्म नहीं बँधे, ऐसा रास्ता नहीं होगा? भगवान महावीर किस तरह कर्म बाँधे बगैर छूटे होंगे? यह देह है, तो कर्म तो

होते ही रहेंगे! खाना पड़ता है, संडास जाना पड़ता है, सबकुछ नहीं करना पड़ता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, परंतु जो कर्म बाँधे होंगे, उनके फल फिर भोगने पड़ेंगे न?

दादाश्री : कर्म बाँधेगा तब तो फिर अगला जन्म हुए बगैर रहेगा नहीं! यानी कर्म बाँधेंगे तो अगले जन्म में जाना पड़ेगा! लेकिन भगवान महावीर को अगले जन्म में नहीं जाना पड़ा था! तो कोई रास्ता तो होगा न? कर्म करें, फिर भी कर्म नहीं बँधे, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : होगा।

दादाश्री : आपको ऐसी इच्छा होती है कि कर्म नहीं बँधे? कर्म करने के बावजूद कर्म नहीं बँधे, ऐसा विज्ञान होता है। वह विज्ञान जानो तो मुक्त हो जाओगे!

कर्म बाधक नहीं...

प्रश्नकर्ता : अपने कर्मों के फल के कारण यह जन्म मिलता है न?

दादाश्री : हाँ, पूरी ज़िंदगी कर्म के फल भोगने हैं! और उनमें से नये कर्म उत्पन्न होते हैं, यदि राग-द्वेष करे तो! यदि राग-द्वेष नहीं करे तो कुछ भी नहीं। कर्म हैं उसमें हर्ज नहीं है। कर्म तो, यह शरीर है इसलिए होंगे ही, परंतु राग-द्वेष करता है, उसमें हर्ज है। वीतराग क्या कहते हैं कि वीतराग बनो! इस जगत् में जो कुछ भी काम करते हो, उसमें काम की क़ीमत नहीं है। परंतु उसके पीछे राग-द्वेष हों, तभी अगले जन्म का हिसाब बँधता है। यदि राग-द्वेष नहीं होते तो ज़िम्मेदार नहीं है! पूरा देह, जन्म से मरण तक अनिवार्य है। उसमें से जो राग-द्वेष होते हैं, उतना ही हिसाब बँधता है। इसलिए वीतराग क्या कहते हैं कि वीतराग होकर निकल जाओ!

हमें तो कोई गालियाँ दे तो हम समझ जाते हैं कि ये अंबालाल पटेल को गाली दे रहे हैं, *पुद्गल* को गाली दे रहे हैं। आत्मा को तो वे जान

ही नहीं सकते, पहचान ही नहीं सकते न! इसलिए 'हम' स्वीकार नहीं करते। 'हमें' छूता ही नहीं, हम वीतराग रहते हैं! हमें उस पर राग-द्वेष नहीं होते। इसलिए फिर एक अवतारी या दो अवतारी होकर सब खत्म हो जाएगा!

वीतराग इतना ही कहना चाहते हैं कि कर्म बाधक नहीं हैं। तेरी अज्ञानता बाधक है! देह है तब तक कर्म तो होते ही रहेंगे, परंतु अज्ञानता जाएगी तो कर्म बँधने बंद हो जाएँगे!

[१८]

'सहज' प्रकृति

प्रश्नकर्ता : ज्ञानियों की सहज प्रकृति किसे कहते हैं?

दादाश्री : विचार आएँ परंतु असर नहीं करें, तो प्रकृति सहज कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : प्रकृति सहज किस तरह होगी और कब होगी?

दादाश्री : चारित्र मोह में दख़ल नहीं करें, तो प्रकृति सहज होती जाएगी। 'मूल' आत्मा तो सहज है ही, परंतु प्रकृति सहज हो जाएगी, तब मोक्ष होगा।

इन पुरुषों से तो स्त्रियाँ अधिक सहज हैं। यहाँ की स्त्रियों से फ़ॉरेनवाले अधिक सहज हैं, और उनसे भी अधिक ये जानवर, पशु-पक्षी, वगैरह सहज हैं।

प्रश्नकर्ता : इन सबकी सहजता ज्ञान से है या अज्ञानता से?

दादाश्री : उनकी सहजता अज्ञानता से है। इन गायों-भैंसों की सहजता कैसी है? गाय उछलकूद करे, सींग मारने आए, फिर भी वह सहज है। सहज अर्थात् जो प्रकृतिक स्वभाव है, उसमें तन्मयाकार रहना, दख़ल नहीं करना, वह! परंतु ये अज्ञानता से सहज हैं!

गाय के बछड़े को यदि पकड़ने जाएँ तो उसकी आँखों में खूब दुःख जैसी जलन दिखती है, इसके बावजूद वह सहज है! इस सहज प्रकृति में जिस तरह 'मशीन' अंदर चलती रहती है, वैसे ही, वह खुद भी मशीन की तरह चलती ही रहती है। खुद के हिताहित का बिल्कुल भी भान नहीं

रहता। मशीन अंदर हित दिखाए तो हित करती है, अहित दिखा रही हो तो अहित करती है। किसी का खेत देखकर उसमें घुस जाती है।

प्रश्नकर्ता : उसमें वे कोई भाव नहीं करते न?

दादाश्री : उन्हें तो कुछ '*निकाल*' करने का होता ही नहीं न! वह तो उनका स्वभाव ही ऐसा है, सहज स्वभाव! उनका बच्चा चार-छह महीने का होने के बाद फिर चला जाता है, तो उन्हें कोई तकलीफ नहीं। उनकी देखभाल चार-छह महीनों तक ही रखते हैं। और अपने लोग तो...

प्रश्नकर्ता : मरने तक रखते हैं।

दादाश्री : नहीं, सात पीढ़ियों तक रखते हैं! गाय, वह बच्चे की देखभाल छह महीनों तक रखती है। ये फ़ॉरेन के लोग अठारह वर्ष का हो जाए तब तक रखते हैं, और अपने हिन्दुस्तान के लोग तो सात पीढ़ियों तक रखते हैं।

अर्थात् सहज वस्तु ऐसी है कि उसमें बिल्कुल भी जागृति नहीं रहती। भीतर से जो उदय में आया, उस उदय के अनुसार भटकना, वह सहज कहलाता है। यह लट्टू घूमता है, वह ऊँचा होता है, नीचा होता है, कितनी बार ऐसे गिरने लगता है, एक इंच कूदता भी है, तब हमें ऐसा लगता है कि 'अरे, गिरा, गिरा।' तब तो मुआ वापस घूमने लगता है, वह सहज कहलाता है!

'असहज' की पहचान

सहज प्रकृति अर्थात् जैसा लपेटा हुआ हो उसी तरह खुलकर घूमता है, दूसरा कोई झंझट नहीं।

ज्ञानदशा की सहजता में तो, आत्मा यदि इसका ज्ञाता-दृष्टा रहे तभी वह सहज हो सकेगा। और उसमें हस्तक्षेप किया कि वापस बिगड़ जाएगा। 'ऐसा हो जाए तो अच्छा, ऐसा नहीं हो तो अच्छा।' ऐसे दख़ल करने जाए कि असहज हो जाएगा।

सेठ की दुकान का दिवालिया निकलनेवाला हो, फिर भी कोई भिक्षुक आए, तो सेठानी उसे साड़ी वगैरह देती है, और यह सेठ एक दमड़ी भी नहीं देता। सेठ बेचारे को अंदर होता रहता है कि अब क्या होगा? क्या होगा? जब कि सेठानी तो आराम से साड़ी-वाड़ी देती है, वह सहज प्रकृति कहलाती है। अंदर जैसा विचार आया वैसा कर देती है। सेठ को तो अंदर विचार आए, लाओ दो हज़ार रुपये धर्मदान दें, तो तुरंत ही वापस मन में कहेगा, अब दिवालिया निकल रहा है, क्या दें? छोड़ो न अब! वह बात को उड़ा देता है!

सहज तो, मन में जैसा विचार आए वैसा ही करता है और वैसा नहीं करे तो भी (प्रतिष्ठित) आत्मा की दख़ल नहीं रहती, तो वह सहज है!

यह 'ज्ञान' दिया हुआ हो, उसे गाड़ी में चढ़ते समय कहाँ पर जगह है और कहाँ नहीं, ऐसा विचार आता है। वहाँ सहज नहीं रहा जाता। अंदर खुद दख़ल करता है। उसके बावजूद भी इस 'ज्ञान' में ही रहो, 'आज्ञा' में ही रहो, तो प्रकृति सहज हो जाएगी। फिर चाहे कैसा भी होगा फिर भी, लोगों को सौ गालियाँ देता होगा फिर भी वह प्रकृति सहज है, क्योंकि हमारी आज्ञा में रहा इसलिए खुद की दख़ल मिट गई और तभी से प्रकृति सहज होने लग गई। 'अपनी' यह सामायिक करते हो, उस समय भी प्रकृति बिल्कुल सहज कहलाती है!

क्रमिक मार्ग में ठेठ तक सहज दशा नहीं हो पाती। वहाँ तो, 'यह त्याग करूँ, यह त्याग करूँ, ऐसा करना चाहिए, ऐसा नहीं करना चाहिए।' उसकी परेशानी अंत तक रहती है!

सहज → असहज → सहज

हिन्दुस्तान के लोग असहज हैं, इसलिए चिंता अधिक है। क्रोध-मान-माया-लोभ बढ़ गए, इसलिए चिंता बढ़ गई। नहीं तो कोई मोक्ष में जाए, ऐसे नहीं हैं। और कहेंगे, 'हमें कहीं मोक्ष में नहीं आना है, यहाँ बहुत अच्छा है।' इन फ़ॉरेन के लोगों से कहें कि, 'चलो मोक्ष में।' तब वे कहेंगे, 'नहीं, नहीं, हमें मोक्ष की कोई ज़रूरत नहीं है!'

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसा हुआ न कि सहजता में से असहजता में जाते हैं। फिर वह असहजता 'टॉप' पर जाती है। उसके बाद फिर मोक्ष की तरफ जाते हैं?

दादाश्री : असहजता में 'टॉप' पर जाते हैं, उसके बाद फिर पूरी जलन देखते हैं, अनुभव करते हैं, तब मोक्ष में जाने का निश्चय करते हैं। बुद्धि, आंतरिक बुद्धि खूब बढ़नी चाहिए। फ़ॉरेन के लोगों की बाह्य बुद्धि होती है, वे सिर्फ भौतिक का ही दिखाती है। नियम कैसा है, जैसे -जैसे आंतरिक बुद्धि बढ़ती है, वैसे-वैसे दूसरे पलड़े में जलन खड़ी होती है!

प्रश्नकर्ता : 'टॉप' पर की असहजता में जाने के बाद फिर सहजता में आने के लिए क्या करता है?

दादाश्री : फिर रास्ता ढूँढ निकालता है कि इसमें सुख नहीं है। इन स्त्रियों में सुख नहीं है, बच्चों में सुख नहीं है। पैसों में भी सुख नहीं है। ऐसे उनकी भावना बदलती है! ये फ़ॉरेन के लोग तो स्त्री में सुख नहीं, बच्चों में सुख नहीं, ऐसा तो कोई कहेगा ही नहीं न! वह तो, जब उस तरह की जलन खड़ी हो, तब कहता है कि अब यहाँ से भागो कि जहाँ कोई मुक्त होने की जगह है। अपने तीर्थंकर मुक्त हो चुके हैं वहाँ चलो, हमें यह नहीं पुसाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी उस समय उनका भाव बदल जाना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : भाव नहीं बदलेंगे, तो हल ही नहीं आएगा! ये लोग जिनालय में जाते हैं, महाराज के पास जाते हैं, भाव नहीं बदलेंगे तो ऐसे कोई जाएगा ही नहीं न!

आज पब्लिक में असहजता कम हो चुकी है, तो मोह बढ़ा हुआ है। इसलिए उन्हें किसी चीज़ की पड़ी ही नहीं होती।

चंचलता, वही असहजता है। ये फ़ॉरेन के लोग बाग में बैठे हों, तो आधे-आधे घंटे तक हिले-डुले बगैर बैठे रहते हैं! और अपने लोग धर्म की जगह पर भी हिलते-डुलते रहते हैं! क्योंकि आंतरिक चंचलता है।

फ़ॉरेन के लोगों की चंचलता ब्रेड और मक्खन में होती है। और अपने लोगों की चंचलता सात पीढ़ी की चिंता में होती है!

(प्रतिष्ठित) आत्मा सहज हो जाएगा, फिर देह सहज होगी। उसके बाद फिर हमारे जैसा मुक्त हास्य उत्पन्न होगा।

अप्रयत्न दशा

प्रयास मात्र से सबकुछ उल्टा होता है। अप्रयास होना चाहिए। सहज होना चाहिए। प्रयास हुआ इसलिए सहज नहीं रहा। सहजता चली जाती है।

सहज भाव में बुद्धि का उपयोग नहीं होता। सुबह बिस्तर में से उठे तब दातुन करो, चाय पीओ, नाश्ता करो, ऐसा सब सहजभाव से होता ही रहता है। उसमें मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का उपयोग नहीं करना पड़ता। जिनमें इन सबका उपयोग होता है, उसे असहज कहते हैं।

आपको कोई वस्तु चाहिए और सामने कोई व्यक्ति मिले और कहे कि, 'लो, यह वस्तु', तो वह सहजभाव से मिला हुआ कहा जाएगा।

सहज अर्थात् अप्रयत्न दशा

प्रश्नकर्ता : मोक्ष भी सहजरूप से आता हो तो मनुष्य को उसके लिए प्रयत्न करने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : प्रयत्न कोई करता ही नहीं है। यह तो सिर्फ अहंकार करता है कि मैंने प्रयत्न किया!

प्रश्नकर्ता : यह मैं यहाँ पर आया हूँ, वह प्रयत्न करके ही आया हूँ न?

दादाश्री : वह तो आप ऐसा मानते हो कि मैं यह प्रयत्न कर रहा हूँ, आप सहज रूप से ही यहाँ पर आए हो। मैं वह जानता हूँ और आप वह नहीं जानते हो। आपका इगोइज़म आपको दिखाता है कि 'मैं था तो हुआ।' वास्तव में सभी क्रियाएँ स्वाभाविक रूप से हो रही होती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर करने जैसा कुछ रहता ही नहीं, ऐसा है?

दादाश्री : करने जैसा भी कुछ नहीं रहता और नहीं करने जैसा भी कुछ नहीं रहता। जगत् जानने लायक है।

प्रश्नकर्ता : जानें किस तरह?

दादाश्री : 'यह क्या हो रहा है' उसे 'देखते' रहना है और 'जानते' रहना है।

प्रकृति का पृथक्करण

प्रश्नकर्ता : प्रकृति का एनालिसिस किस तरह से करें, वह समझाइए।

दादाश्री : सुबह उठें, तभी से अंदर चाय के लिए शोर मचाती है या किस के लिए शोर मचाती है, ऐसा पता नहीं चलता? वह प्रकृति है। फिर और क्या माँगती है? तब कहे कि, 'ज़रा नाश्ता, चिवड़ा कुछ लाना।' वह भी पता चलता है न? इस तरह पूरे दिन प्रकृति को देखे तो प्रकृति का एनालिसिस हो जाता है। उससे दूर रहकर सबकुछ देखना चाहिए! यह सब अपनी मर्ज़ी से कोई नहीं करता, प्रकृति करवाती है!

प्रश्नकर्ता : यह तो स्थूल हुआ। परंतु अंदर जो चलता है उसे किस तरह देखें?

दादाश्री : वह इच्छा किसे हुई, वह हमें देख लेना है। यह इच्छा मेरी है या प्रकृति की है, वह हमें देख लेना है। क्योंकि भीतर दो ही चीज़ें हैं।

प्रश्नकर्ता : अलग रहकर 'देखना' उस तरह की प्रेक्टिस करनी पड़ेगी?

दादाश्री : एक ही दिन करोगे तो यह सब आ ही जाएगा फिर। यह सब सिर्फ एक ही दिन करने की ज़रूरत है। बाकी के और सब दिनों में वही का वही पुनरावर्तन है।

इसलिए हम एक रविवार के दिन लगाम छोड़ देने का प्रयोग करने को कहते हैं। उससे अपने मन में जो ऐसा होता है कि, 'हमने यह लगाम पकड़ी है, तभी यह चल रहा है', वह निकल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : लगाम पकड़ी ऐसा कहा, यानी वह अहंकार हुआ न?

दादाश्री : हाँ, परंतु वह डिस्चार्ज अहंकार है। अहंकार को हमें जान लेना चाहिए और यह भी जानना चाहिए कि यह किस आधार पर चल रहा है? उसके बावजूद भी अभी तक उसका भाव उल्टा रहता है कि मेरे कारण चल रहा है! इसलिए ऐसा प्रयोग करोगे न, तो वह सब बाहर निकल जाएगा!

यह तो बच्चा हमसे कहे, 'मैं तेरा बाप हूँ।' तो उस घड़ी हमें ऐसा होता है कि 'यही बोल रहा है।' तब हमें गुस्सा आता है और बेटा कब क्या बोलेगा, वह कहा नहीं जा सकता। अर्थात् वाणी रिकॉर्ड है, वह बोलनेवाले की खुद की शक्ति नहीं है, अपनी भी शक्ति नहीं है। यह तो पराई चीज़ फिंक जाती है, ऐसी जागृति रहनी चाहिए।

इस प्रकार से आगे बढ़ते-बढ़ते तो किसी 'नगीनभाई' की मैं बात करूँ तो उस घड़ी मुझे ऐसा भीतर ख्याल रहना ही चाहिए कि वह 'शुद्धात्मा' है। कोई पुस्तक पढ़ रहे हों, तब उसमें 'मंगलादेवी ने ऐसा किया और मंगलादेवी ने वैसा किया', तो उस समय मंगलादेवी का आत्मा दिखना चाहिए।

इस प्रकार जितना हो सके उतना करना। ऐसा नहीं कि आज के आज ही पूरा कर लेना है। इसमें 'क्लास' नहीं लाना है, परंतु पॉसिबल करना है। धीरे-धीरे सबके साथ शुद्ध प्रेमस्वरूप होना है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध प्रेमस्वरूप अर्थात् किस तरह रहना चाहिए?

दादाश्री : कोई व्यक्ति अभी गाली दे गया और फिर आपके पास आया तब भी आपका प्रेम जाए नहीं, उसे शुद्ध प्रेम कहते हैं। फूल चढ़ाए तो भी बढ़े नहीं। बढ़े-घटे वह सब आसक्ति है। जबकि बढ़े नहीं, घटे नहीं, वह शुद्ध प्रेम है।

प्रकृति पर कंट्रोल कौन करता है?

प्रश्नकर्ता : प्रकृति पर कंट्रोल नहीं रहता। बाकी शुद्धात्माभाव ठीक तरह से रहता है।

दादाश्री : कंट्रोल करने का काम तो पुलिसवाले को सौंप दो! प्रकृति पर कंट्रोल नहीं करना है। कंट्रोल करना शुभाशुभ मार्ग में होता है, आपकी प्रकृति पर कंट्रोल कौन लाएगा अब? आप मालिक नहीं हो। आप अब 'चंदूभाई' नहीं हो और जो कर रहा है, वह सब 'व्यवस्थित' कर रहा है। अब आप उसे कंट्रोल किस तरह करोगे?

प्रश्नकर्ता : जो दोष दिखते हैं, वे जाएँगे न?

दादाश्री : जो दिखने लगे, वे तो चले ही गए समझो न! जगत् को खुद के दोष दिखते ही नहीं, औरों के दोष दिखते हैं। आपको खुद के दोष दिखे न?

प्रश्नकर्ता : खुद के दोष दिखते हैं, परंतु वे टाले नहीं जा सकते।

दादाश्री : नहीं ऐसा कुछ मत करना। ऐसा हमें नहीं करना है। यह विज्ञान है। यह तो 'चंदूभाई' क्या कर रहे हैं, वह आपको देखते रहना है। बस, इतना ही आपको करना है। आपका और कोई काम ही नहीं है। चंदूभाई के आप *ऊपरी* हो। चंदूभाई तो 'व्यवस्थित' के ताबे में है। 'व्यवस्थित' प्रेरणा देता है और चंदूभाई लट्टू की तरह घूमता है! और चंदूभाई की बहुत बड़ी भूल हो तब आपको कहना है कि 'चंदूभाई! ऐसा करोगे तो नहीं पुसाएगा।' इतना आपको कहना है!

प्रकृति का सताना

प्रश्नकर्ता : मोक्ष अनुभव में आता है, परंतु प्रकृति अपना स्वभाव नहीं छोड़ती। उससे ऊब जाते हैं।

दादाश्री : प्रकृति अपना स्वभाव छोड़ेगी ही नहीं न? घर के सामने सरकार चारों तरफ गटर खोल दे तो? गटर अपना गुण बताएगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बताएगा।

दादाश्री : उस घड़ी आपको कौन सी दृष्टि में रहना पड़ेगा?

प्रश्नकर्ता : ज्ञाता-दृष्टा।

दादाश्री : एशो-आराम करने जाएँगे तो हमें गंध आएगी, इसलिए ज्ञाता-दृष्टा ही रहना। प्रकृति में गटर-वटर आएँ, तब उसमें जागृत रहना।

प्रश्नकर्ता : 'हम' 'पड़ोसी' को 'देखते' रहें और उसे सही रास्ते पर मोड़ने का प्रयत्न नहीं करें तो वह कैसे चलेगा? वह दंभ नहीं कहलाएगा?

दादाश्री : हमें मोड़ने का क्या अधिकार? दख़ल नहीं करनी है। उसे कौन चलाता है, वह जानते हो? हम चलाते भी नहीं है और हम मोड़ते भी नहीं है। वह 'व्यवस्थित' के ताबे में है। तो फिर दख़ल करने से क्या मतलब है? जो हमारा 'धर्म' नहीं है, उसमें दख़ल करने जाएँ तो परधर्म उत्पन्न होगा!

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में ही ज्ञान से ही हमारा उल्टा आचरण स्टॉप हो जाएगा या नहीं?

दादाश्री : हो भी सकता है! 'ज्ञानीपुरुष' के कहे अनुसार करे तो पाँच-दस वर्ष में हो सकता है। अरे, एकाध वर्ष में भी हो सकता है! 'ज्ञानीपुरुष' तो तीन लोक के नाथ कहे जाते हैं। वहाँ पर क्या नहीं हो सकता? कुछ बाकी रहेगा क्या?

इन दादा के पास बैठकर सबकुछ समझ लेना पड़ेगा। सत्संग के लिए टाइम निकालना पड़ेगा।

'अमे केवलज्ञान प्यासी,
दादाने काजे आ भव देशुं अमे ज गाळी...' - नवनीत

इन्हें तृषा किसकी है?

केवलज्ञान की ही तृषा है। हममें अब दूसरी कोई तृषा रही नहीं। तब हम उसे कहें, 'अंदर रही है तृषा, उसकी गहराई से जाँच तो कर?' तब कहे, 'वह तो प्रकृति में रही है, मेरी नहीं रही। प्रकृति में तो किसी को चार आना रह गई हो, किसी की आठ आना रह गई हो तो किसी की बारह आना रह गई हो, तो बारह आनेवाले को भगवान दंड देते होंगे?' तब कहे, 'ना, भाई तेरी जितनी कमी है, उतनी तू पूरी कर।'

अब प्रकृति है तब तक उसकी सभी कमियाँ पूरी हो ही जाएँगी। यदि दख़ल नहीं करोगे तो प्रकृति कमी पूरी कर ही देगी। प्रकृति खुद की कमी खुद पूरी करती है। अब इसमें 'मैं करता हूँ' कहा कि दख़लंदाज़ी हो जाएगी!

'ज्ञान' नहीं लिया हो तो प्रकृति का पूरे दिन उल्टा ही चलता रहता है, और अब तो सीधा ही चलता रहता है। प्रकृति कहे कि, 'तू सामनेवाले को उल्टा सुना दे', लेकिन अंदर कहेगा कि, 'नहीं, ऐसा नहीं करते। उल्टा सुनाने का विचार आया, उसका प्रतिक्रमण करो।' और ज्ञान से पहले तो उल्टा सुना भी देता था और ऊपर से कहता था कि और ज़्यादा सुनाने जैसा है।

इसलिए अभी जो अंदर चलता रहता है वह समकित बल है! ज़बरदस्त समकित बल है। वह रात-दिन निरंतर काम करता ही रहता है!

प्रश्नकर्ता : वह सब काम प्रज्ञा करती है?

दादाश्री : हाँ, वह काम प्रज्ञा कर रही है। प्रज्ञा मोक्ष में ले जाने के लिए, खींच-खींचकर भी मोक्ष में ले जाएगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, प्रकृति का फोर्स कईबार बहुत आता है।

दादाश्री : वह तो जितनी भारी प्रकृति होगी उतना फोर्स अधिक होगा।

प्रश्नकर्ता : परंतु उस समय 'ज्ञान' भी उतना ही ज़ोरदार चलता है।

दादाश्री : हाँ, 'ज्ञान' भी ज़ोरदार चलता है। यह 'अक्रम विज्ञान' है, इसलिए मारपीट करके, लड़कर भी ठिकाने ला देगा!

करारों से मुक्त

दादाश्री : 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा आपको लगता है अब?

प्रश्नकर्ता : स्वप्न में भी नहीं।

दादाश्री : क्या बात करते हो? कर्तापन गया मतलब ममता गई, हमारी खुद की ममता गई, लेकिन पहले के करार किए हुए हैं इसलिए सामनेवाले की ममता अभी तक है! सामनेवाले लोगों के साथ जो करार किए हुए हैं, वे करार पूरे तो करने पड़ेंगे न? वह व्यक्ति यदि छोड़ दे तो हर्ज नहीं है, परंतु हिसाब चुकाए बिना कौन छोड़ देगा?

ऐसा 'रियल मार्ग' शायद ही कभी होता है। वहाँ संपूर्ण पद प्राप्त होता है! वहाँ पर स्वतंत्रता, सच्ची आज़ादी मिलती है! भगवान भी *ऊपरी* न रहे, वैसी आज़ादी प्राप्त होती है! भले ही यह 'औरत' *ऊपरी* रहे, उसमें हर्ज नहीं है, परंतु भगवान तो *ऊपरी* नहीं ही रहने चाहिए! 'औरत' तो जब तक जीएगी तब तक *ऊपरी* रहेगी। परंतु भगवान तो हमेशा के लिए *ऊपरी* बनकर बैठेंगे न?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष नहीं होगा तो फिर वापस आना पड़ेगा न?

दादाश्री : आएगा, तब भी एक-दो जन्म के लिए ही! लेकिन मुख्य तो क्या है? कि अपनी तरफ के करार पूरे हो जाने चाहिए। उनकी तरफ के करार भले ही रहें, उनकी तरफ के करार तो वे पूरे करेंगे, परंतु आपकी तरफ के, बीवी-बच्चों के, सबके हिसाब तो चुकाने पड़ेंगे न?

अपना यह सारा करारी माल है, उसमें आपका शुद्ध उपयोग चला नहीं जाता। यह माल तो जैसे-जैसे समभाव से *निकाल* होता जाएगा, वैसे-वैसे आपका संयम बढ़ता जाएगा। संयम को ही पुरुषार्थ कहा है। जैसे-जैसे संयम बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे उसका *निकाल* भी जल्दी होता जाएगा। ओटोमेटिक सबकुछ होते-होते 'केवलज्ञान' पर आ जाएगा।

'आपको' कुछ भी नहीं करना है। आपको तो निश्चय करना है कि 'मुझे दादाजी की आज्ञा का पालन करना है।' और पालन नहीं हो सके तो भी उसकी चिंता नहीं करनी है। आपको दृढ़ निश्चय करना है कि 'मेरी सास डाँटती है' तो वे दिखें उससे पहले ही मन में तय करना कि ''मुझे दादा की आज्ञा पालनी है और इनके साथ 'समभाव से *निकाल*' करना ही है।'' फिर यदि समभाव से *निकाल* नहीं हो, तो आप जोखिमदार नहीं। आप आज्ञा पालन करने के अधिकारी हो, आप अपने निश्चय के अधिकारी हो, उसके परिणाम के अधिकारी आप नहीं हो! आपका निश्चय होना चाहिए कि मुझे आज्ञा पालन करना ही है, फिर नहीं किया जा सके तो उसका खेद आपको नहीं करना है। परंतु मैं आपको दिखाऊँ उसके अनुसार प्रतिक्रमण करना। अतिक्रमण किया, इसलिए प्रतिक्रमण करो। इतना सरल, सीधा और सुगम मार्ग है, इसे समझ लेना है!

[१९]

दु:ख देकर मोक्ष में नहीं जा सकते

प्रश्नकर्ता : मनुष्य होने के नाते में हमारा धर्म क्या है?

दादाश्री : किस तरह इस जगत् में अपने मन-वचन-काया लोगों के काम में आएँ, वही अपना धर्म है। लोगों के कुछ काम करें, वाणी से किसी को अच्छी बात समझाएँ। बुद्धि से समझाएँ, किसी को दु:ख न हो वैसा अपना आचरण रखें, वह अपना धर्म है। किसी जीव को दु:ख नहीं हो, उसमें यदि सभी जीवों के लिए नहीं हो सके तो सिर्फ मनुष्यों के लिए ही ऐसा प्रण करना चाहिए। और यदि मनुष्यों के लिए ऐसा प्रण किया हुआ हो तो सभी जीवों के लिए प्रण करना चाहिए कि इस मन-वचन-काया से किसी जीव को दु:ख न हो। इतना ही धर्म समझना है!

यह तो शादी करके जाती है, तब सास उसे दु:ख देती है और वह सास को दु:ख देती है। फिर नर्कगति बाँधते हैं। सास भी समझ जाती है कि बेटे को खो देना हो तो शादी करवाओ!

आपके सब अरमान पूरे हो चुके हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : आपका ज्ञान लेने के बाद ऐसा रहता है कि जैसे गंगा का पवित्र झरना बह जाता है, वैसे ही हमें भी बह जाना है।

दादाश्री : हाँ, बह जाना। किसी को भी असर नहीं हो, किसी को भी दु:ख नहीं हो, उस तरह से। किसी को भी दु:ख देकर हम मोक्ष में जा सकें, ऐसा नहीं हो सकता। हमसे किसी को दु:ख हुआ तो हम जा रहे होंगे तो वहाँ से वह रस्सी डालकर पकड़ेगा कि खड़े रहो। और यदि हम सभी को सुख देंगे तो सभी जाने देंगे। चाय-पानी करवाएँगे तो भी

जाने देंगे, पान देंगे तो भी, कुछ नहीं तो लौंग का दाना देंगे तो भी जाने देंगे। लोग आशा रखते हैं कि कुछ मिलेगा। लोग आशा नहीं रखेंगे तो आप मेहरबान कैसे? मोक्ष में जानेवाले मेहरबान कहलाते हैं। तो मेहरबानी दिखाते-दिखाते हमें जाना है।

प्रश्नकर्ता : लोगों को आशा रहती है, परंतु हमें आशा रखने की क्या ज़रूरत?

दादाश्री : हमें आशा नहीं रखनी है। यह तो उन्हें पान-सुपारी या कुछ भी देकर चलने लगना है। वर्ना ये लोग तो उल्टा बोलकर रोकेंगे। इसीलिए हमें अटा-पटाकर काम निकाल लेना है। लोग ऐसे ही मोक्ष में नहीं जाने देंगे। लोग तो कहेंगे कि, 'यहाँ क्या दुःख है कि वहाँ चले? यहाँ हमारे साथ मज़े करो न?'

प्रश्नकर्ता : परंतु हम लोगों का सुनें तब न?

दादाश्री : सुनेंगे नहीं, तब भी वे उल्टा करेंगे। उनके लिए चारों दिशाएँ खुली हैं और आपकी एक ही दिशा खुली है। इसलिए उन्हें क्या? वे उल्टा कर सकते हैं और आपको उल्टा नहीं करना है।

सभी को राज़ी रखना है। राज़ी करके चलते बनना है। ऐसे आपके सामने ताककर देख रहा हो, तब उसे 'कैसे हो साहब?' कहा, तो वह जाने देगा और ताककर देख रहा हो और आप कुछ नहीं बोले, तब वह मन में कहेगा कि यह तो बहुत अकड़वाला है! फिर वह हंगामा करेगा!

प्रश्नकर्ता : हम सामनेवाले को राज़ी करने जाएँ तो अपने में राग नहीं आ जाएगा?

दादाश्री : उस तरह से राज़ी नहीं करना है। इस पुलिसवाले को किस तरह राज़ी रखते हो? पुलिसवाले के प्रति राग होता है आपको?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : राज़ी। वह भी सबको राज़ी रखने की ज़रूरत नहीं है।

अपने रास्ते में कोई आड़े आए, तब उसे समझा-पटाकर काम निकाल लेना है। इन्हें तो आड़े आते देर नहीं लगती। उनमें से किसी का आपको धक्का लग जाए, तो बदले में शिकायत करने मत जाना, परंतु उसे अटा-पटाकर काम निकाल लेने जैसा है।

फ़र्ज पूरे करो, लेकिन सावधानी से

प्रश्नकर्ता : सर्विस के कारण किसी के साथ कषाय हो जाएँ या करने ही पड़ें, तो उससे आत्मा पर कुछ असर होता है?

दादाश्री : नहीं, लेकिन फिर पछतावा होता है न?

प्रश्नकर्ता : फ़र्ज़ पूरे करने में कषाय करने पड़ें तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : आपकी बात ठीक है। ऐसा संपूर्ण संयम नहीं होता कि फ़र्ज़ पूरा करते समय भी संयम रह सके, फिर भी किसी को बहुत दुःख हो जाए तो मन में ऐसा होना चाहिए कि 'अरे, अपने हाथ से ऐसा नहीं हो तो अच्छा।'

प्रश्नकर्ता : लेकिन फ़र्ज़ तो अदा करना ही चाहिए न? ये पुलिसवाले क्या करते हैं?

दादाश्री : फ़र्ज़ तो अदा करना ही पड़ेगा, उसके बिना चलेगा नहीं। वह तो, दो-तीन चोर घूम रहे हों तो पुलिसवाले को पकड़ने ही पड़ेंगे, उसके बिना चलेगा ही नहीं। वह व्यवहार है। परंतु अब उसमें दो भाव रहते हैं, एक तो फ़र्ज़ पूरा करते समय क्रूरता नहीं रहनी चाहिए। पहले जो क्रूर भाव रहता था, वह अब नहीं रहना चाहिए। अपना आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) बिगड़े नहीं, वैसे रखना चाहिए। वर्ना फ़र्ज़ तो अदा करना ही पड़ेगा। गुरखा हो उसे भी फ़र्ज़ अदा करना पड़ता है, और दूसरी तरफ मन में ऐसा पश्चाताप रहना चाहिए कि ऐसा काम अपने हिस्से में नहीं आए तो अच्छा!

[२०]

अनादि का अध्यास

प्रश्नकर्ता : जब-जब हम अपने व्यवहार में और वर्तन में आते हैं तब, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' या 'चंदूभाई हूँ' उसका कुछ भी पता नहीं चलता।

दादाश्री : उसे समझ लेने की ज़रूरत है। 'आप' चंदूभाई भी हो और 'आप' 'शुद्धात्मा' भी हो! बाय रिलेटिव व्यू पोइन्ट से आप 'चंदूभाई' और बाय रियल व्यू पोइन्ट से आप 'शुद्धात्मा' हो! रिलेटिव सारा विनाशी है। विनाशी भाग में आप चंदूभाई हो! विनाशी व्यवहार सारा चंदूभाई का है और अविनाशी आपका है! अब 'ज्ञान' के बाद अविनाशी में आपकी जागृति रहती है।

समझने में ज़रा कमी रह जाए तो कभी किसी से ऐसी भूल हो जाती है। सभी से नहीं होती।

आप सिर्फ चंदूभाई ही नहीं हो। किसी जगह पर आप सर्विस करे, तो आप उसके नौकर हो। तब आपको नौकर के सभी फर्ज़ पूरे करने हैं। कोई कहीं हमेशा के लिए नौकर नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण इतने अधिक होते हैं कि एक काम पूरा नहीं किया हो, वहाँ दूसरा तैयार रहता है। वहाँ पर प्रतिक्रमण का उपयोग करने लगें, तब दूसरा फोर्स इतना अधिक आता है कि उसे 'पेन्डिंग' रखना पड़ता है।

दादाश्री : वे तो ढेर सारे आएँगे। उस ढेर सारे का समभाव से *निकाल* करोगे, तब फिर धीरे-धीरे वह ज़ोर कम होगा। यह सब *पुद्गल* है, *पुद्गल* यानी क्या कि *पूरण* (चार्ज होना, भरना) जो किया है वह अभी

गलन (डिस्चार्ज होना, खाली होना) हो रहा है, उसका समभाव से *निकाल* करो।

इसलिए आप अमुक अपेक्षा से चंदूभाई हो और अमुक अपेक्षा से सेठ भी हो। अमुक अपेक्षा से इनके ससुर भी हो। परंतु आप अपनी 'लिमिट' जानते हो या नहीं जानते कि 'किन-किन अपेक्षाओं से मैं ससुर हूँ?' वह पीछे पड़ जाए कि 'आप हमेशा के लिए इनके ससुर हो', तब आप कहेंगे, 'नहीं भई, हमेशा के लिए कोई ससुर होता होगा?'

आप तो 'शुद्धात्मा' हो और 'चंदूभाई' तो *वळगण* (बला, पाश, बंधन) है। परंतु अनादिकाल का यह अध्यास है, इसलिए हर बार उसी ओर खींच ले जाता है। डॉक्टर ने कहा हो कि दाएँ हाथ का उपयोग मत करना, फिर भी दायाँ हाथ थाली में डाल देता है। लेकिन 'यह' जागृति ऐसी है कि तुरंत ही पता चल जाता है कि यह भूल हुई। आत्मा ही जागृति है। आत्मा ही ज्ञान है। परंतु पहले की अजागृति आती है, इसलिए कुछ समय तक अजागृति की मार खाता है।

प्रश्नकर्ता : यह बेटा मेरा है, यह बेटी मेरी है, ऐसा होता है, उसे फिर ऐसा भी होता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'यह तो मेरा नहीं है, मेरा नहीं है।'

दादाश्री : भीतर गुणन होता है, उसमें फिर भाग लगा देते हैं। भीतर सब तरह-तरह के कारक हैं। एक-दो ही नहीं। यह तो सारी माया है। इसलिए यह तो हमें तरह-तरह का दिखाएगी। इन सभी को हमें पहचानना पड़ेगा। यह अपना हितेच्छु है, यह अपना दुश्मन है, इस तरह सभी को पहचानना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : हमारे भीतर तो उल्टी-सीधी सभी तरह की टोलियाँ इकट्ठी हैं, वह तो रोज़ का ही है।

दादाश्री : कोई भी भाव हमारे भीतर उत्पन्न हो और उसका बवंडर उठे तो वहीं से छोड़ देना सबकुछ। बवंडर उठा कि तुरंत ही ऐसा पता चल जाता है कि सबकुछ उल्टे रास्ते पर है। जहाँ थे वहाँ से 'मैं शुद्धात्मा

हूँ' करके भाग जाना। निराकुलता में से थोड़ी भी व्याकुलता उत्पन्न हुई कि 'यह हमारा स्थान नहीं है' करके भाग जाना।

प्रश्नकर्ता : यहीं पर मुझसे भूल हो जाती है। जब आकुलता-व्याकुलता होती है तब मैं भाग नहीं जाता, बल्कि सामने बैठा रहता हूँ।

दादाश्री : अभी बैठने जैसा नहीं है। आगे जाकर बैठना। अभी तक पूरी तरह शक्ति नहीं आई है, शक्ति आए बिना बैठोगे तो मार खाओगे। 'अपना' तो निराकुलता का प्रदेश! जहाँ पर कोई भी आकुलता-व्याकुलता है, वहाँ पर कर्म बंधेंगे। निराकुलता से कर्म नहीं बंधेगे। व्याकुल होकर इस संसार का कोई भी फायदा नहीं होगा और जो होगा वह तो व्यवस्थित है, इसलिए निराकुलता में रहना चाहिए। जब तक शुद्ध उपयोग रहेगा, तब तक निराकुलता रहेगी।

हमारी बुद्धि बचपन में ऐसी थी। सामनेवाले के लिए 'स्पीडी' अभिप्राय बना देती थी। किसी के भी लिए स्पीडी अभिप्राय बना देती थी। इसलिए मैं समझ सकता हूँ कि आपका यह सब कैसा चल रहा होगा?

वास्तव में तो किसी के लिए भी अभिप्राय रखने जैसा जगत् है ही नहीं। किसी के लिए अभिप्राय रखना, वही अपना बंधन है और किसी के लिए अभिप्राय नहीं रहे, वही अपना मोक्ष है। किसी का और हमारा क्या लेना-देना? वह अपने कर्म भोग रहा है, हम अपने कर्म भोग रहे हैं। सब अपने-अपने कर्म भोग रहे हैं। उसमें किसी का लेना-देना ही नहीं है, किसी के लिए अभिप्राय बनाने की ज़रूरत ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अब हमारे अभिप्राय कहाँ पड़ जाते हैं, व्यवहार में पड़ते हैं। यह तो ऐसा होता है कि मुझे पता भी नहीं होता और कहेंगे, 'इन चंदूभाई से कहा है, आपको ५००० रुपये दे गए न?' तो मुझे पता भी नहीं चलता कि यह मेरे नाम से झूठ बोलकर आया है। इसलिए फिर अभिप्राय पड़ जाता है कि यह झूठा है, गलत है।

दादाश्री : भगवान ने तो यहाँ तक कहा है कि कल एक व्यक्ति आपकी जेब में से सौ रुपये ले गया और आपको भनक लगने से या

आसपास के वातावरण से पता चल गया। फिर दूसरे दिन जब वह आए तब देखते ही उस पर शंका करो, तो वह गुनाह है।

प्रश्नकर्ता : और यदि ऐसा अभिप्राय रहे कि यह झूठा है, तो वह गुनाह है?

दादाश्री : शंका करे, वहीं से गुनाह उत्पन्न होता है। भगवान ने क्या कहा है कि 'कल उसके कर्म के उदय से वह चोर था और आज शायद नहीं भी हो।' यह तो सब उदय के अनुसार है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर हमें कैसा बर्ताव करना चाहिए? यदि हम अभिप्राय नहीं रखेंगे तो उसे लत लग जाएगी कि 'यह तो ठीक है, ये तो कुछ बोलेंगे ही नहीं। इसलिए रोज़-रोज़ आक्षेप लगाते जाओ।'

दादाश्री : नहीं, हमें तो, उसके लिए अभिप्राय दिए बिना सावधानीपूर्वक चलना है। आप पैसे जेब में रखते हों और आपको पता चले कि यह व्यक्ति जेब में से निकालकर ले गया है, तो किसी के प्रति अभिप्राय नहीं बंधे इसलिए आपको पैसे दूसरी जगह पर रख देने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं, यह तो एक व्यक्ति जिसका खुद का कोई दूसरा लेनदार हो, उसे ऐसा कहेगा, 'मैंने चंदूभाई से कहा है, उन्होंने आपको पैसे भेज दिए हैं।' तब होता है कि मैं तुझे मिला नहीं, तू मुझे मिला नहीं और इतना झूठ बोल रहा है? मेरे साथ ऐसा हो, वहाँ पर अब किस तरह से व्यवहार करना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, ऐसा सब झूठ भी बोलता है, परंतु वह बोला किसलिए? क्यों दूसरे का नाम नहीं दिया और चंदूभाई का ही देता है? इसलिए कहीं न कहीं आप गुनहगार हो। आपके कर्म का उदय ही आपका गुनाह है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यहाँ पर मेरा व्यवहार कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : राग-द्वेष से यह संसार खड़ा होता है। इसका मूल ही राग-द्वेष है। राग-द्वेष क्यों होते हैं? तब कहें कि किसी के बीच में

दख़लंदाज़ी की कि राग-द्वेष खड़ा हुआ। वह घर में से चोरी करके ले गया हो, फिर भी यदि आप उसे चोर मानोगे, तो आपका राग-द्वेष उत्पन्न हो जाएगा। क्योंकि 'यह चोर है' ऐसा आप मानते हो और वह तो लौकिक ज्ञान है जबकि अलौकिक ज्ञान वैसा नहीं है। अलौकिक में तो एक ही शब्द कहते हैं कि 'वह तेरे ही कर्म का उदय है। उसके कर्म का उदय और तेरे कर्म का उदय, वे दोनों एक हुए, इसलिए वह ले गया। उसमें तू वापस किसलिए अभिप्राय डालता है कि यह चोर है?'

हम तो आपसे कहते हैं न कि, सावधानीपूर्वक चलो, पागल कुत्ता अंदर घुस जाएगा, ऐसा लगे कि तुरंत ही 'अपना' दरवाज़ा बंद कर दो। परंतु उस पर यदि आप ऐसा कहो कि 'यह पागल ही है' तो वह अभिप्राय डाला कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : अरे दादा, कुत्ता घुस जाएगा, तब दरवाज़ा बंद करने के बदले मैं तो सामने ज़ोर लगाऊँ और दरवाज़ा बंद करते हुए दरवाज़े का भी फज़ीता करूँ और कुत्ते का भी फज़ीता करूँ!

दादाश्री : यह सब लौकिक ज्ञान है। भगवान का अलौकिक ज्ञान तो क्या कहता है कि किसी पर आरोप ही मत लगाना, किसी के लिए अभिप्राय मत डालना, किसी के लिए कोई भाव ही मत करना। 'जगत् निर्दोष ही है!' ऐसा जानोगे तो छूट जाओगे। जगत् के तमाम जीव निर्दोष ही हैं और मैं अकेला ही दोषित हूँ, मेरे ही दोषों के कारण मैं बंधा हुआ हूँ, ऐसी दृष्टि हो जाएगी, तब छूटा जा सकेगा।

भगवान ने जगत् निर्दोष देखा था, मुझे भी कोई दोषित नहीं दिखता है। फूलों का हार चढ़ाए तो भी कोई दोषित नहीं है और गालियाँ दे तो भी कोई दोषित नहीं है, और जगत् निर्दोष ही है। यह तो मायावी दृष्टि के कारण सब दोषित दिखते हैं। इसमें सिर्फ दृष्टि का ही दोष है।

दानेश्वरी व्यक्ति दान दे, तो उसे वह कहता है, 'ये दान दे रहे हैं, ये कितने अच्छे लोग हैं?' जब कि भगवान कहते हैं कि तू क्यों खुश हो रहा है? वह अपने कर्म का उदय भोग रहा है। दान लेनेवाले भी अपने

कर्म का उदय भोग रहे हैं। तू बिना बात बीच में क्यों झंझट कर रहा है? चोरी करनेवाले चोरी करते हैं, वे भी उनके कर्म का उदय भोग रहे हैं। पूरा जगत् अपने-अपने कर्म का ही वेदन कर रहा है!

हमने आपको जब से देखा, जब से पहचाना, तब से हमारा तो कभी भी अभिप्राय नहीं बदलता। फिर आप ऐसे धूमो या वैसे घूमो, वह सब आपके कर्म के उदय के अधीन है।

जब तक खुद के दोष नहीं दिखते और दूसरों के ही दोष दिखते रहते हैं, जब तक वैसी दृष्टि है तब तक संसार खड़ा रहेगा। और जब औरों का एक भी दोष नहीं दिखेगा और खुद के सभी दोष दिखेंगे, तब समझना कि मोक्ष में जाने की तैयारी हुई, बस इतना ही दृष्टिफेर है!

दूसरों के दोष दिखना, वह हमारी ही दृष्टि की भूल है। क्योंकि ये सभी जीव खुद की सत्ता से नहीं हैं, परसत्ता से है। खुद के कर्म के अधीन है। निरंतर कर्म ही भुगत रहे हैं! उसमें किसी का दोष होता ही नहीं है। जिसे यह समझ में आ गया, वह मोक्ष में जाएगा। नहीं तो वकीलों जैसा समझ में आया, तो यहीं पर रहेगा। यहाँ का न्याय तोलेगा तो यहीं पर रहेगा।

[२१]

चीकणी 'फाइलों' में समभाव

प्रश्नकर्ता : संसार में सब से बड़ा कार्य, इन फाइलों का 'समभाव से *निकाल*' करना, वही है न?

दादाश्री : हाँ, इन 'फाइलों' की ही झंझट है। इन 'फाइलों' के कारण ही आप फँसे हुए हो। इन 'फाइलों' ने ही आपको रोका है, दूसरा कोई रोकनेवाला नहीं है। बाकी सभी जगह आप वीतराग ही हो।

प्रश्नकर्ता : भाव बहुत होता है फिर भी समभाव से *निकाल* नहीं हो पाए, तो क्या करें?

दादाश्री : हाँ, वैसा होता है, परंतु उसकी जोखिमदारी अपनी नहीं है। हमें ऐसा नक्की रखना चाहिए कि 'समभाव से *निकाल*' नहीं हो सके, फिर भी हमें अपना 'समभाव से *निकाल*' करने का भाव बदलना नहीं है। मन में ऐसा नहीं होना चाहिए कि 'अरे, अब *निकाल* नहीं करना है।' ''मुझे 'समभाव से *निकाल*' करना ही है,'' ऐसा भाव हमें छोड़ना नहीं है। 'समभाव से *निकाल*' नहीं हो, वह 'व्यवस्थित' के ताबे की बात है।

प्रश्नकर्ता : अगर आज *निकाल* नहीं हुआ तो, कल-परसों तो होगा ही न?

दादाश्री : अस्सी प्रतिशत *निकाल* तो अपने आप ही हो जाता है। यह तो दस-पंद्रह प्रतिशत ही नहीं हो पाता। वह भी अगर बहुत *चीकणी* (गाढ़) हो, उसी का। उसमें भी हम गुनहगार नहीं हैं, 'व्यवस्थित' गुनहगार है। हमने तो नक्की ही किया है कि 'समभाव से *निकाल*' करना ही है। अपने सभी प्रयत्न समभाव से *निकाल* करने के होने चाहिए।

अभी तो हर एक की *चीकणी फाइल* होती है। *चीकणी फाइल* नहीं लाऐ होते, तो वर्षों तक ज्ञानी के पास बैठने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा कुछ कीजिए कि फटाक से फाइलें खत्म हो जाए।

दादाश्री : ऐसा है कि आत्मा की जो शक्ति है, वह जब तक प्रकट नहीं होगी, तब तक पूर्णकार्य नहीं होगा। अब यदि मैं कर दूँ तो आपकी शक्ति प्रकट हुए बिना ही रह जाएगी। प्रकट तो आपको ही करनी चाहिए न? आवरण तो तोड़ना पड़ेगा न? और आपने तय किया कि 'इन फाइलों का *निकाल* करना ही है', तभी से वे आवरण टूटने लगेंगे। उस के लिए आपको कुछ भी मेहनत नहीं करनी है। सिर्फ आपको तो ऐसा भाव ही करना है। सामनेवाली फाइल टेढ़ी चले, फिर भी आपको तो फाइल का समभाव से *निकाल* करना है।

आपको तो आत्मा को निरालंब करना है। निरालंब नहीं होगा तो अवलंबन रह जाएँगे और अवलंबन रहेंगे, तब तक एब्सोल्यूट नहीं हो पाएगा! निरालंब आत्मा, वह एब्सोल्यूट आत्मा है। तो वहाँ तक आपको पहुँचना है। भले इस भव में नहीं पहुँचा जा सके, उसमें हर्ज नहीं है। अगले भव में तो वैसा हो ही जानेवाला है, यानी इस भव में तो आपको आज्ञा का पालन करके समभाव से *निकाल* ही करना है। वह बड़ी आज्ञा है, और *चीकणी फाइलें,* वे कितनी होंगी? वे कोई थोड़े ही दो सौ-पांच सौ होंगी? दो-चार ही होंगी, और असल मज़ा ही, जहाँ पर *चीकणी फाइल* हो, वहाँ पर आता है न!

प्रश्नकर्ता : कईबार *चीकणी फाइल* का *निकाल* करते-करते बहुत भारी पड़ जाता है, बुखार आ जाता है!

दादाश्री : वे सारी निर्बलताएँ निकल जाती हैं। जितनी निर्बलता निकली, उतना बल आपमें उत्पन्न होगा। पहले था, उसके मुकाबले आपको अधिक बल महसूस होगा।

हम एक गाँव में कोन्ट्रैक्ट का काम करने गए थे। पुल बनाना था,

सन् १९३९ में। तब मेरी उम्र ३०-३१ वर्ष की थी। उस गाँव का बनिया पूरे दिन व्यापार करता था, परंतु रात को जुआ खेलकर आता था और पैसे बिगाड़ता था। रात को बनिया देर से आता था, इसलिए उसकी पत्नी उसे अच्छी तरह मारती थी। गाँव के लोग हमें कहने आए कि, 'चलिए सेठ, वहाँ देखने जैसा है।' मैंने कहा, 'अरे, क्या देखने जैसा है?' तब उन लोगों ने कहा, 'आप चलिए तो सही।' तब हम वहाँ गए। वहाँ दरवाज़ा अंदर से बंद किया हुआ देखा। अंदर उसकी पत्नी ऐसे लकड़ी मार रही होगी, तब बनिया क्या कह रहा था, ''ले, लेती जा, ले, लेती जा, 'ले, लेती जा'!'' यह तो सही है! यह नया शास्त्र पढ़ा हमने! तब गाँववाले मुझे कहने लगे कि ''पत्नी रोज़ उसे इस तरह मारती है और सेठ क्या बोलता है कि 'ले लेती जा'!'' यह सेठ भी अक्लवाला है न! यह तो दुनिया है। दुनिया में तरह-तरह के रंग होते हैं! बनिये ने आबरू रखी न? आपको तो ऐसी आबरू रखनी नहीं है। आपकी तो आबरू है ही। आपको तो सिर्फ समभाव से *निकाल* करना है।

एक वकील ने तो अपने मुवक्किल से कहा कि, 'आप यहाँ से जाते हो या नहीं? नहीं तो आपको कुत्ते से कटवाऊँगा!' इसका नाम वकील, LL.B.! अब मुवक्किल भी ऐसे ही हैं।

बगैर ठौर-ठिकाने की यह दुनिया है। हम इसे 'पोलम्पोल' कहते हैं। गुनहगार छूट जाता है और बेगुनाह पकड़ा जाता है! इसे पोलम्पोल नहीं कहें तो क्या कहें? इस जगत् के व्यवहार से जगत् पोलम्पोल है और कुदरत के नियम से जगत् बिल्कुल नियम में है। लोगों को इसका हिसाब निकालना नहीं आता। यह दिखता है, वह हिसाब आया? ना, ना। यह कुदरत कहती है कि जो, पहले का हिसाब था, यह वह आया है और अब इसका हिसाब तो बाद में आएगा। इसलिए हमें भूल भोग लेनी है। जो अभी दु:ख भोग रहा है, वह उसकी खुद की ही भूल है, और किसी की भूल नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ये '*चीकणी फाइलें*' हैं, वे भी अपनी ही भूल है न?

दादाश्री : हाँ, उसे आपने ही *चीकणी* की है, इसलिए आपको उसकी चिपचिपाहट निकालनी है, और भोले मनुष्य की सभी फाइलें भोली होती हैं।

प्रश्नकर्ता : *चीकणी फाइलोंवाले* लुच्चे होते हैं?

दादाश्री : नहीं, उन्हें लुच्चा नहीं कह सकते। अहंकार की वजह से गाढ़ करते रहते हैं। और भोले मनुष्य 'ठीक है फिर', कहकर छोड़ देते हैं। उसे अहम् की बिल्कुल भी नहीं पड़ी होती।

वाणी में मधुरता, कॉज़ेज़ का परिणाम

दोष ही सारे वाणी के हैं। वाणी सुधरे नहीं, मीठी नहीं हो तो आगे जाकर फल नहीं देती। देह के दोष तो ठीक हैं, उन्हें भगवान ने 'लेट गो' किया है। परंतु वाणी तो दूसरों को चोट पहुँचाती है न?

वाणी में मधुरता आई कि गाड़ी चली। वह मधुर होते-होते अंतिम अवतार में इतनी मधुर हो जाती है कि उसके साथ किसी भी 'फ्रूट' की तुलना नहीं की जा सकती, इतनी मिठासवाली होती है! और कुछ लोग तो बोलें, तब ऐसा लगता है कि भैंसें रम्भा रही हों! यह भी वाणी है और तीर्थंकर साहबों की भी वाणी है!

प्रश्नकर्ता : यदि भाव ऐसे किए हों कि ऐसी स्यादवाद वाणी प्राप्त हो, ऐसी मधुर वाणी प्राप्त हो, तो वह भाव ही वैसी वाणी का रिकॉर्ड तैयार करेगा न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। वाणी तो, भाव से हमें ऐसी माँग हर रोज़ करनी चाहिए कि मेरी वाणी से किसी को भी दुःख नहीं हो और सुख हो। लेकिन सिर्फ माँग करने से ही कुछ नहीं हो पाएगा। वैसी वाणी उत्पन्न हो, उसके कॉज़ेज़ करने पड़ेंगे। तब उससे वैसा फल आएगा। वाणी फल है। सुख देनेवाली वाणी निकले, तब वह मीठी होती जाती है और दुःख देनेवाली वाणी कड़वी होती जाती है। फिर भैंसा रम्भाए और वह रम्भाए, दोनों एक जैसा लगता है!

मज़ाक से टूटता है वचनबल

प्रश्नकर्ता : वचनबल किस तरह उत्पन्न होता है?

दादाश्री : एक भी शब्द का उपयोग मज़ाक उड़ाने के लिए नहीं किया हो, एक भी शब्द का गलत स्वार्थ या किसी से धोखे से छीन लेने के लिए उपयोग नहीं किया हो, शब्द का दुरुपयोग नहीं किया हो, खुद का मान बढ़े उसके लिए वाणी नहीं बोली हो, तब वचनबल उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : खुद के मान के लिए और स्वार्थ के लिए ठीक है, परंतु मज़ाक उड़ाने में क्या हर्ज है?

दादाश्री : मज़ाक उड़ाना तो बहुत गलत है। इसके बजाय तो मान दो, वह अच्छा! मज़ाक तो, 'भगवान की उड़ाई' ऐसा कहा जाएगा! आपको ऐसा लगता है कि यह गधे जैसा आदमी है, लेकिन वह तो भगवान है! 'आफ्टर ऑल' वह क्या है, उसकी जाँच कर लो। आफ्टर ऑल तो भगवान ही है न?

मुझे मज़ाक उड़ाने की बहुत आदत थी। मज़ाक यानी कैसी कि बहुत नुकसानदेह नहीं, लेकिन सामनेवाले के मन पर असर तो होता था न? अपनी बुद्धि अधिक विकसित हो, उसका दुरुपयोग किसमें हुआ? कम बुद्धिवाले की मज़ाक उड़ाई उसमें! यह जोखिम जब से मुझे समझ में आया, तब से मज़ाक उड़ाना बंद हो गया। मज़ाक तो कभी उड़ाई जाती होगी? मज़ाक उड़ाना तो भयंकर जोखिम है, गुनाह है! मज़ाक तो किसी की भी नहीं उड़ानी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अधिक बुद्धिवाले की मज़ाक उड़ाने में क्या हर्ज है?

दादाश्री : नहीं, परंतु कम बुद्धिवाला स्वाभाविक रूप से मज़ाक उड़ाता ही नहीं न?

कोई भगवान ऐसे-ऐसे चल रहे हों तो हमारे यहाँ लोग हँसते हैं।

अरे, क्या मज़ाक उड़ा रहा है? भीतर भगवान समझ गए सबकुछ! भगवान की ऐसी दशा हुई, उस पर तू मज़ाक उड़ा रहा है, ऐसा? तेरी दशा भी वैसी ही होगी, ऐसा नियम ही है! इसलिए इस दशा का ध्यान रखो।

प्रश्नकर्ता : मुझसे तो बड़े लोगों का मज़ाक हो जाता है।

दादाश्री : ऐसा है कि आपने तो अभी यह बात समझ ली कि मज़ाक उड़ाना गुनाह है, मैं तो छोटी उम्र से ही जानता था, फिर भी आठ-दस वर्षों तक मज़ाक होती रही। आपकी आदत तो बहुत जल्दी ही चली जाएगी।

फिर भी ऐसी मज़ाक करने में हर्ज नहीं है कि जिससे किसी को दुःख नहीं हो और सभी को आनंद हो। उसे निर्दोष मज़ाक कहा है। वह तो हम अभी भी करते हैं, क्योंकि मूल (स्वभाव) जाता नहीं न? परंतु उसमें निर्दोषता ही होती है!

ज्ञानी की Flexibility

प्रश्नकर्ता : खिलौने जैसे छोटे बच्चों के साथ आपको किस तरह रास आता है?

दादाश्री : हम 'काउन्टर पुलियों' का सेट रखते हैं। इतने सारे सेट रखते हैं कि कोई व्यक्ति यहाँ पर आया कि उसी तरह से हमारी काउन्टर पुली सेट कर देते हैं। इसलिए इतना सा बच्चा आए और मुझे 'जय-जय' (नमस्कार) करे तो मुझे उसके साथ बातचीत करनी पड़ती है। हमसे बालक कभी भी भयभीत नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : आपकी समकक्षा का आए, तब क्या करते हैं?

दादाश्री : हमारी समकक्षा है ही नहीं। यह बेजोड़ पद माना जाता है। शास्त्रकारों ने ही इसे बेजोड़ कहा है।

हमें ट्रेन में कोई मिले और हम 'ज्ञानी' हैं ऐसा वह नहीं जानता हो, फिर भी हम पुली लगा देते हैं, 'हम पेसेन्जर हैं', ऐसी।

मेरी समकक्षा का आए तब तो मैं उसका शिष्य बन जाऊँ। हमने तो पहले से ही तय किया हुआ है कि हरएक का शिष्य बन जाना है, ताकि उसे अड़चन नहीं पड़े। जो शिष्य बनता है, वही खुद अपना गुरु बनेगा, इसलिए सावधानी से चलना। इसलिए गुरुपना मत कर बैठना। और उस व्यक्ति के शिष्य बन जाएँ तो हमें क्या फायदा होता है? हम उसके ही गुरु बन चुके होते हैं! उसे अड़चन आए तब उसे पूछने आना पड़ता है!

प्रश्नकर्ता : वह समझ में नहीं आया, दादा।

दादाश्री : हम शिष्य बने, इसलिए संबंध स्थापित हो गया। इसलिए फिर से वह हमारे पास शिष्य बनकर आएगा। हम उसके शिष्य नहीं बने होते तो वह हमारे पास आता नहीं और लाभ उठाता नहीं।

संसार - पारस्परिक संबंध

व्यवहार के संबंध च्युत स्वभाव के हैं और आप अच्युत हो। संसार के संबंध कब टूट जाएँ, उसका क्या भरोसा?

प्रश्नकर्ता : ऐसे ही हैं। ऐसा तो अनुभव में आ चुका है।

दादाश्री : तुझे भी अनुभव में आ गया? तेरी मम्मी भी च्युत स्वभाव की है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : हर किसी के साथ च्युत होनेवाला संबंध है, परंतु वह तो हमें मन में समझना है, व्यवहार में तो ऐसा बोलना है, 'मम्मी, मुझे आपके बगैर अच्छा नहीं लगता!'

मम्मी भी बोलती है, 'बेटे, मुझे तेरे बिना अच्छा नहीं लगता!' और अंदर समझती है कि, ये च्युत स्वभाव के हैं। यह सब ड्रामेटिक है। आप भीतर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा समझो और इन 'चंदूभाई' के नाम का नाटक करना है। इस ड्रामे में राग-द्वेष नहीं होता। ड्रामे में मार-पिटाई करते हैं,

लड़ाई करते हैं, लेकिन भीतर राग-द्वेष नहीं रहते हैं। यह ड्रामा जो चल रहा है उसकी तो तू रिहर्सल करके ही आया है। इसलिए तो 'व्यवस्थित' है, ऐसा हम कहते हैं, नहीं तो कभी का यह सब बदल नहीं देते?

इस दुनिया में ड्रामा करने की बजाय लोग, यदि कलेक्टर की जगह मिली हो तो वह घर पर सीधा बैठा रहता है, लेकिन ऑफिस की कुर्सी में तो आड़ा हो जाता है। हम घर पर जाएँ तो, 'आइए, बैठिए' और कुर्सी में हो तो ऊपर देखता भी नहीं! 'क्या यह कुर्सी तुझे काटती है?' वह तुझे पागलपन लगा देती है? 'मैं हूँ, मैं हूँ' करता है। अरे, किसमें है तू? घर पर तो तुझे पत्नी झिड़कती है!

कुछ तो समझना चाहिए न? सबके साथ पारस्परिक संबंध हैं। जगत् अर्थात् क्या? परस्पर सद्भावना। कलेक्टर हो या फिर नौकर हो, परंतु परस्पर सद्भावना होनी चाहिए और हेल्पिंग नेचर होना चाहिए, ओब्लाइजिंग नेचर होना चाहिए!

[२२]

आपको दुःख है ही कहाँ?

इस संसार में आपको दुःख है ही कहाँ? दुःख तो अस्पताल में है, जहाँ पैर ऊँचा बाँधा हुआ है! भयंकर जले हुए लोग हैं, उन्हें दुःख है। आप पर दुःख ही क्या पड़ा है? यों ही शोर मचाते रहते हो, बिना बात के! इन्हें तो छह-छह महीनों की जेल में डाल देना चाहिए! आप अच्छी चीज़ को खराब कहते हो, तो खराब को क्या कहोगे? अस्पताल में जहाँ दुःख है, उसे दुःख कहो और दुःख नहीं हो उसे दुःख कैसे कहा जाए? हम हमारी ज़िंदगी में कभी भी, 'दुःख है', ऐसा नहीं बोले हैं। ऐसा तो बोलते होंगे? आप क्या मूर्ख आदमी हैं? दो आने, चार आने, आठ आने, बारह आने, सभी एक जैसा?

दुःख तो अस्पतालवालों को है। इन बंगलों में, पलंग में सोए हुए हैं, उन्हें नहीं है। पैर ऊपर बांधे हुए हों, जले हुए हों, उन्हें आप देखकर आओ तो खुद को दुःख नहीं है, ऐसा आभास होगा। कुदरत के लिए आप को आनंद होगा कि 'ओहोहो! कुदरत ने कितनी अच्छी प्लेस (स्थान) मुझे दी है! यह तो लोगों को भान ही नहीं है न? इन्होंने तो अच्छे की भी बुराई की और कमज़ोर की भी बुराई की! बुराईयाँ करना, सिर्फ यही काम है। इसे मानवता कैसे कहेंगे? किसे तकलीफ कहना, उसकी लिमिट होनी चाहिए या नहीं? 'आज मुझे भूख नहीं लगी, आज मुझे यह तकलीफ है', यह तो कैसी 'मेडनेस'?

मेरे पैर में फ्रेक्चर हो गया था, तब कुछ लोग पैर में लटकाया हुआ वज़न देखकर कहते थे, 'आपको भगवान ने ऐसा दुःख किसलिए दिया होगा? अब, भगवान तो हैं ही नहीं!'

अरे भाई, मुझे कहाँ दु:ख दिया है? वह तो आपको ऐसा लगता है। इसे दु:ख नहीं कहते, दु:ख तो यहाँ पर छेद करके खाना पड़े, यहाँ पर छेद करके पेशाब करना पड़े, उसे दु:ख कहते हैं। ये छोटे बच्चे हैं, उन्हें बहुत दु:ख होता है बेचारों को। उसे जब दु:ख होता है तब रोता ज़रूर है, परंतु बोलता नहीं कि 'मुझे यहाँ दु:ख रहा है!' और ये अभागे लोग भोजन करते समय नौ रोटियाँ खा जाते हैं और कहेंगे कि 'मैं दु:खी हूँ!' क्या कहें इन लोगों को? दु:ख की परिभाषा होनी चाहिए या नहीं होनी चाहिए? और सुख की परिभाषा होनी चाहिए कि 'सुख किसे कहते हैं?'

संसार में सुख अपार है परंतु लोग भोग नहीं पाते! कैसे सुख हैं! खीर भी साथ में मिलती है और मालपूआ भी मिलता है, वह भी फिर असली घी के! घारी (एक प्रकार की मिठाई) मिलती है, दाल, चावल, सब्ज़ी मिलें, फिर भी ये दु:खी! इन मनुष्यों के सिवा दूसरे सभी जानवरों को पूछकर आओ कि, 'दु:ख है?' इसी तरह मनुष्यों में भी हल्की क़ौम में पूछकर आओ?

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप तो कहते हैं कि घारी खानी है और फिर उसमें तन्मय नहीं होना है।

दादाश्री : वह आपकी लाइन की बात है। आपको जैसा राज करना आए, वैसा राज करो! कैसे सुख सामने आकर खड़े हैं, तब दु:ख का गाना गाते रहते हैं!

इस जगत् में कभी भी रोने-धोने जैसा है ही नहीं। सिर्फ बीस-इक्कीस वर्ष की जवान लड़की हो और उसका कोई बच्चा वगैरह नहीं हो और वह विधवा हो गई हो, तो उसके लिए रोने-धोने जैसा है। रोना-धोना, यानी क्लेश करने जैसी तो कोई वस्तु है ही नहीं जगत् में! फिर भी पूरा दिन क्लेश, क्लेश और क्लेश! अरे, क्या पढ़े? आपने कैसी पढ़ाई की है? इसे पढ़ना-लिखना कहेंगे ही नहीं न? 'थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी' समझनी चाहिए न?

सासों से पूछें तब कहेंगी, 'मेरी बहू खराब है।' उसी प्रकार, सभी

बहुओं से पूछें तब कहेंगी कि, 'मेरी सास खराब है!' अरे, ऐसा कैसे हो सकता है? सभी बहुएँ, सभी सासें खराब हैं?

ये जानवर भी कुछ हद तक के दुःखों को रिस्पॉन्स नहीं देते और मनुष्य रिस्पोन्स दे देते हैं, इतनी अधिक फूलिशनेस है!

इन लोगों का दृष्टिबिंदु १०० प्रतिशत गलत है।

प्रश्नकर्ता : सभी १०० प्रतिशत गलत हैं, ऐसा कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : खुली आँखों से अंधे हैं। खुली आँखों से अंधे यानी खुद के हिताहित का भान नहीं है। मैं क्या बोलूँ तो हित, क्या करूँ तो हित, और मैं क्या जानूँ तो हित, वह मालूम ही नहीं है। हर किसी चीज़ में नकल करने में शूरवीर हो गए हैं! सबकुछ बदल गया है। अपने हिन्दुस्तान के लोग तो किसी की नकल करते ही नहीं थे। असल में तो हमारी नकल पूरे जगत् ने की है। यह मॉडर्न जमाना आया है, उससे मुझे दिक्कत नहीं है। मैं समझता हूँ कि यह युग है, तो यह युग इस तरह से चलता ही रहेगा। मैं युग से दूर नहीं रहता, परंतु यह हित किया या अहित किया, वह मैं समझता हूँ। इन लोगों ने संपूर्ण अहित किया है।

मुझे भले ही कितना भी बुख़ार आए लेकिन घरवालों ने किसीने कभी भी जाना नहीं। उसमें क्या बताना? ये लोग बुख़ारवाले नहीं हैं? इन्हें क्या बताना? ये तो फिर भूल जाएँगे बेचारे! 'मैं तो अनंत शक्तिवाला हूँ' मुझे भला इन लोगों को क्या बताना?

ये लोग तो 'बुख़ार है, बुख़ार है' करके फिर थर्मामीटर लाकर लगाते हैं! १०० डिग्री, १०१ डिग्री, १०२ डिग्री ऐसे गिनते रहते हैं! अरे, यह तो बुख़ार पता लगाने का साधन है। साध्य वस्तु नहीं!

मुझे दुःख है ऐसा कहते हो? दुःख तो था 'रिलेटिव' में, वह 'रियल' में नहीं था। वह आरोपित था। जहाँ पर आप नहीं हो, वहाँ पर दुःख माना गया है, 'रोंग बिलीफ़' से! २५ प्रतिशत था, उसे आपने कहा कि 'मुझे यह दुःख पड़ा है' ऐसा बोले, कि वह १०० प्रतिशत हो गया!

प्रश्नकर्ता : मैं शरीर के साथ एकाकार हो गया। इसलिए मुझे २५ प्रतिशत के बदले १०० प्रतिशत दु:ख महसूस होता है।

दादाश्री : पूरा संसार 'मैं ही चंदूभाई हूँ' ऐसा ही समझता है। यह तो, ऐसा जुदा व्यवहार, आप अब सीखे!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि अब कहें 'दु:ख चंदूभाई को है' तो दु:ख २५ प्रतिशत का २५ प्रतिशत ही रहेगा न?

दादाश्री : हाँ, फिर बढ़ेगा नहीं। नहीं तो १०० प्रतिशत हो जाता है। यह तो लोगों को भान ही नहीं है। वे दु:ख को बल्कि बढ़ा देते हैं। खुद के दु:खों का वर्णन करके दु:ख को बल्कि बढ़ा देते हैं!

लोग चिंता करते रहते हैं न? यह चिंता करने की भी हद होती है। सभी कहीं 'ज्ञानी' नहीं होते कि जिन्हें चिंता होती ही नहीं। यानी उसका कोई नियम होगा या नहीं होगा? कब तक चिंता करनी? चिंता यानी चिंतना करते रहना कि अब क्या करूँगा?

यह तो भगवान को बुरा-भला कहते हैं, कुदरत को बुरा-भला कहते हैं! फिर न्याय जैसा रहा ही कहाँ?

ढाई वर्ष का बच्चा, छोटा बच्चा मर जाए, तो भी रोते हैं और बाईस वर्ष का विवाहित मर जाए, तो भी रोते हैं, और पैंसठ वर्ष का बूढ़ा मर जाए, तो भी रोते हैं! तब तुझे इसमें क्या समझ आया? कहाँ रोना है और कहाँ पर नहीं रोना, वह समझता ही नहीं!

प्रश्नकर्ता : इस प्रकार बुद्धि का उपयोग तो कभी हुआ ही नहीं।

दादाश्री : वह नहीं होगा, तब तक जगत् में सुख किस तरह हो पाएगा? मनुष्यों को, जानवरों को सुख ही है। मनुष्यों को कोई दु:ख होता होगा? सिर्फ इतना ही है कि इन्हें भोगना नहीं आता।

यह बात सभी मनोवैज्ञानिकों को देनी है। इससे भी आगे की बात है। 'यह' 'बुलबुला' नहीं फूटे, तब तक काम निकलेगा। फूट गया तो खत्म हो गया!

हस्ताक्षर के बिना मृत्यु भी नहीं

यात्रा में जानेवाले थे, चार बजे गाड़ी में बैठनेवाले थे, वे सभी लोग चार-चार महीने पहले से जानते थे न? और मरते समय क्यों नहीं कहते कि मुझे जाना है? यह तो ठेठ तक ऐसा नहीं कहता। मन में आशा ही रखता है कि अभी कोई दवाई ऐसी आएगी और मेल बैठ जाएगा! और रात को फिर अंदर बहुत दुःख पड़े, तब फिर वही खुद कहता है कि इसके बजाय छूट जाऊँ तो अच्छा! यह मरना है, वह भी हस्ताक्षर किए बिना नहीं आता! ये इन्कमटेक्सवाले हर एक बात में पहले हस्ताक्षर करवाते हैं। उसी तरह मरने में भी पहले हस्ताक्षर होते हैं, उसके बाद ही मरा जाता है!

प्रश्नकर्ता : हस्ताक्षर नहीं करे तो मौत नहीं आएगी न?

दादाश्री : हस्ताक्षर नहीं करेगा तो मौत नहीं आएगी। ये सब हस्ताक्षर कर देते होंगे या नहीं?

प्रश्नकर्ता : एक्सिडेन्ट से जो मर जाते हैं, वे तो कहाँ से हस्ताक्षर करेंगे?

दादाश्री : उसने भी हस्ताक्षर किए हुए होते हैं। हस्ताक्षर किए बिना तो कभी मरा ही नहीं जा सकता। उसके बिना तो मरने का अधिकार ही नहीं है। मृत्यु तो आपकी मालिकी की है, उसमें और किसी की दख़ल नहीं होती। और एक बार आपके हस्ताक्षर हो गए फिर आपका नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में हस्ताक्षर किए थे या पिछले जन्म में?

दादाश्री : इस जन्म में ही हस्ताक्षर कर दिए होते है। पिछले जन्म में तो उसकी योजना के रूप में होता है, परंतु रूपक में इस जन्म में ही आता है।

मैं और मेरे मामा के बेटे रावजीभाई एक दिन बाहर सो रहे थे। अंदर से मेरी बा (माताजी) बोलीं, 'हे भगवान! अब छूट जाऊँ तो अच्छा!' मैंने रावजीभाई से कहा, 'देखो, ये बा ने हस्ताक्षर कर दिए!' क्योंकि भीतर

दु:ख होता है, वह सहन नहीं होता तब मनुष्य भाव कर देता है कि अरे, छूट जाएँ तो अच्छा। वह हस्ताक्षर कर देता है।

प्रश्नकर्ता : अभानता में हस्ताक्षर कर दिए।

दादाश्री : अभानता में नहीं, भान सहित हस्ताक्षर कर देते हैं। फिर दूसरे दिन सुबह पूछें कि, 'आपका यहाँ से जाने का विचार हुआ है या क्या?' तब कहेंगे, 'नहीं भाई, मेरा शरीर अच्छा है।'

प्रश्नकर्ता : जन्म लेकर तुरंत मर जाते हैं, वह क्या है?

दादाश्री : उन सबके भाव तो अंदर हो ही जाते हैं, अंदर उसका हिसाब हो ही जाता है। हिसाब हुए बगैर कहीं मृत्यु नहीं आती। अचानक कुछ भी नहीं आता। सब इन्सिडेन्ट हैं, एक्सिडेन्ट नहीं होते।

हार्ट अटेक आए तब बहुत दर्द होता है, उस घड़ी एक थोड़ा सा ऐसा भाव हो जाता है कि, 'मुक्त हो जाएँ तो अच्छा', और फिर जब अंदर ज़रा शांत पड़े तब बोलता है, 'डॉक्टर मुझे ठीक कर दो, हाँ! डॉक्टर, मुझे ठीक कर दो!' अरे, लेकिन हस्ताक्षर कर दिए थे वहाँ पर तो? मृत्यु से पहले क्यों नहीं सोचता?

'मुझे कल अहमदाबाद जाना है' ऐसा तय करता है अथवा तो 'मुझे यात्रा में जाना है' ऐसा चार महीने पहले से ही तय कर लेता है, लेकिन इस मृत्यु में तो कोई तय ही नहीं करता और उसका विचार आए तो भी विचार बदल देता है कि, 'नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। वह तो सिर्फ विचार आ रहे हैं, मेरा शरीर तो बहुत अच्छा है। अभी और भी पचास वर्ष जीए, ऐसा है।'

बाकी, जो निष्पक्षपाती हो, उसे तो सब पता चल जाता है। बोरिया-बिस्तर बाँध रहे हों तो पता नहीं चलेगा कि ये जाने की तैयारी कर रहे हैं! अंदर बोरिया-बिस्तर बंध रहे होते हैं, वे हमें दिखते भी हैं, फिर भी अंदर देखें नहीं तो अपनी ही भूल है न? और पहले तो कुछ लोग इतने सरलकर्मी थे कि वे कहते भी थे 'पाँच दिन बाद, एकादशी के दिन मेरा छुटकारा है' और उसके अनुसार होता भी था! तब क्या दूसरों के लिए

कुछ अलग नियम हैं? नियम वही का वही है। यह तो इसका मोह है। मरते समय घर के लोग कहेंगे कि 'चाचा, अब आप मंत्र बोलो', फिर भी वह नहीं बोलता। ऊपर से चाचा क्या कहता है, 'यह बेअक्ल है न?' लो, यह अक्ल का बोरा! बाज़ार में बेचने जाएँ तो चार आने भी नहीं दे कोई! चाचा का जीव बेटी का विवाह करने में अटका होता है, वह मन में सोचता रहता है कि यह रह गई है।

जो निष्पक्षपाती हो चुके हों, उन्हें मृत्यु का पता कैसे नहीं चलेगा? मृत्यु का उसे भय लगता है! दूसरे गाँव जाने का, यात्रा में जाने का उसे भय नहीं लगता! क्योंकि उसके मन में ऐसा होता है कि मैं वापस आऊँगा, 'अरे वापस आया या न भी आया! उसका तो क्या ठिकाना?'

हम तो स्टीमर के कान में फूँक मारते हैं कि 'तुझे जब डूबना हो तब डूबना, हमारी इच्छा नहीं है।' स्टीमर तो फायदे के लिए पानी में उतारा, वह पानी है, तो एक दिन डूब भी सकता है! ऐसे ही इस देह से कहें, 'तुझे छूटना हो तब छूट जाना, मेरी इच्छा नहीं है!' क्योंकि नियम इतना अच्छा है कि किसी को भी छोड़नेवाला नहीं है, यहाँ पर कहीं किसी को दया आए ऐसा नहीं है। इसलिए बेकार ही बिना काम के दया किसलिए माँगते हो कि 'हे भगवान, बचाना!' भगवान तो किस तरह बचाएँगे? भगवान खुद ही नहीं बचे थे न! जिन्होंने यहाँ जन्म लिया था, वे सभी भगवान बचे नहीं थे न! कृष्ण भगवान पैर चढ़ाकर ऐसे सो रहे थे। तो उस शिकारी ने देखा और उसे ऐसा लगा कि यह हिरण-विरण वगैरह है, और तीर मारा! मृत्यु किसी को भी छोड़ती नहीं, क्योंकि यह अपना स्वरूप नहीं है। अपने स्वरूप में कोई नाम भी नहीं लेगा। यदि 'आप' शुद्धात्मा हो, तो कोई नाम लेनेवाला नहीं है, तो 'आप' परमात्मा ही हो! परंतु यहाँ किसी के ससुर बनना हो तब मुश्किल!

प्रश्नकर्ता : देह जब छूटना हो तब छूटे, हमारी इच्छा नहीं है, ऐसा कहने का क्या आशय है?

दादाश्री : वह तो देह के प्रति तिरस्कार उत्पन्न नहीं हो इसलिए कहते हैं कि हमारी इच्छा नहीं है!

प्रश्नकर्ता : ये दो वाक्य कहनेवाला कौन है?

दादाश्री : वह तो जो मृत्यु से परे है, उसी के होंगे न!

प्रश्नकर्ता : वह प्रतिष्ठित आत्मा कहलाता है?

दादाश्री : नहीं, प्रतिष्ठित आत्मा तो मृत्युवाला है, यह सब प्रज्ञा का काम है! प्रतिष्ठित आत्मा मरनेवाला है, वह तो बोलेगा ही नहीं न ऐसा?

प्रश्नकर्ता : जिसमें प्रज्ञा उत्पन्न नहीं हुई हो, सभी में प्रज्ञा तो उत्पन्न नहीं हुई होती है, फिर भी ऐसा बोले, तो कौन बोलता है?

दादाश्री : वह मरनेवाले से अलग ही होता है। मरनेवाला खुद ऐसा नहीं कहता कि मैं मर जाऊँ, वहाँ पर बुद्धि का कुछ भाग ऐसे भाववाला होता है! स्थितप्रज्ञा की दशा का कहते हैं न, वह भाग, लेकिन किसी को ही ऐसा विचार आता है, सभी को तो नहीं आता न!

आपका बिगाड़नेवाला कौन?

आपको जल्दबाज़ी हो और 'जल्दी जल्दी खाना परोसो' ऐसा कहते हो, तो दाल निकालने जाते हुए और पूरी पतीली गिर जाए, वहाँ पर क्या दशा होगी? उस घड़ी ज़रा जागृत रहना है। क्योंकि जो आपके लिए बनानेवाले हैं, उन्होंने आपको खिलाने के लिए बनाई है। उसमें बनानेवाले की भूल नहीं है। फिर भी आप क्या कहते हो? कि 'तूने ढोल दी।' अरे, उन्होंने नहीं ढोली है, उन्होंने तो तेरे लिए बनाई है। ढोलनेवाली शक्ति दूसरी है, परंतु हुआ इनके माध्यम से।

इसलिए आपका कोई बिगाड़ सके, ऐसा नहीं है। इस दुनिया में किसी में बिगाड़ने की शक्ति ही नहीं है। इस दुनिया में कोई ऐसा जन्मा ही नहीं कि कोई हमारा बिगाड़ सके।

ये तो सारी कुदरती शक्तियाँ काम कर रही हैं। जब कि ये लोग मुझे कहते हैं कि ये चोर लोग क्यों आए होंगे? इन सब जेब काटनेवालों की क्या ज़रूरत है? भगवान ने किसलिए उन्हें जन्म दिया होगा? अरे, वे नहीं होंगे तो तुम्हारी जेब कौन खाली करेगा? भगवान खुद आएँगे? आपका चोरी का

धन कौन ले जाएगा? आपका धन गलत होगा तो कौन ले जाएगा? वह तो, उनकी भी ज़रूरत है। वे निमित्त हैं बेचारे! इन सभी की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : किसी की पसीने की कमाई चली जाती है।

दादाश्री : वह जो पसीने की चली जाती है, उसके पीछे भी रहस्य है। वह इस जन्म की पसीने की लगती है, परंतु सारा पहले का हिसाब है। बहीखाते सब बाक़ी हैं इसलिए। नहीं तो कभी भी अपना कोई कुछ ले नहीं सकता। किसी की ऐसी शक्ति ही नहीं है। और यदि ले ले तो जानना कि अपना ही कोई आगे-पीछे का हिसाब है। इतना अधिक नियमवाला यह जगत है। साँप भी छूए नहीं, यह सारा आँगन साँप से भरा हुआ हो परंतु कोई भी साँप उसे छू नहीं सकेगा, इतना अधिक नियमवाला जगत् है। बहुत सुंदर जगत् है। संपूर्ण न्यायस्वरूप है, फिर भी लोगों को समझ में नहीं आए और खुद की भाषा में बोलें तो क्या होगा?

प्रीकॉशन, वही 'चंचलता'

प्रश्नकर्ता : यदि बरसात हो जाए तो 'ऐसा करेंगे' ऐसा हो, तो क्या वह विकल्प कहलाता है? सहज भाव से सब सोचना तो पड़ेगा न? सोचने के बाद जो हो वह ठीक है, परंतु ऐसे सोचना, वह क्या दख़ल किया, ऐसा कहा जाएगा या विकल्प किया, ऐसा कहा जाएगा?

दादाश्री : जिसने 'ज्ञान' नहीं लिया हो, उसके लिए वह सब विकल्प ही कहलाएगा। जिसने 'ज्ञान' लिया हो और समझ गया हो, उसे फिर विकल्प नहीं रहते। शुद्धात्मा के तौर पर 'हमें' ज़रा सा भी सोचना ही नहीं होता। अपने आप ही जो आएँ, उन विचारों को जानना होता है!

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ ऐसा हुआ कि कोई प्रिकॉशन लेनी ही नहीं चाहिए?

दादाश्री : प्रिकॉशन तो होती होंगी? अपने आप हो जाए, वही प्रिकॉशन। इसमें प्रिकॉशन लेनेवाला कौन रहा अब?

दिन दहाड़े आप ठोकर खाते हो (चिंता, कषाय, मतभेद होते हैं)!

उसमें प्रिकॉशन लेनेवाले आप कौन? क्या मनुष्य प्रिकॉशन ले सकता है? उसमें संडास जाने की स्वतंत्र शक्ति भी नहीं, वहाँ पर?

पूरा जगत् प्रिकॉशन लेता है, फिर भी क्या एक्सिडेन्ट नहीं होते? जहाँ प्रिकॉशन नहीं होते, वहाँ क्या एक्सिडेन्ट नहीं होते! प्रिकॉशन लेना, वह एक प्रकार की चंचलता है! ज़रूरत से ज़्यादा चंचलता है। उसकी ज़रूरत ही नहीं है। जगत् अपने आप सहज रूप से चलता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सावधानी कर्ताभाव से नहीं, परंतु ऑटोमेटिक तो होगी न?

दादाश्री : वह तो अपने आप हो ही जाती है।

प्रश्नकर्ता : कर्ता नहीं, परंतु विचार सहज रूप से आएँ तो फिर विवेकबुद्धि से करना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : नहीं, अपने आप ही सब हो जाता है। 'आपको' 'देखते' रहना है कि क्या होता है? अपने आप सबकुछ ही हो जाता है! अब बीच में आप कौन रहे, वह मुझे बताओ? आप 'शुद्धात्मा' हो या 'चंदूभाई' हो?

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि बीच में आप कौन? तो बीच में मन तो है न?

दादाश्री : मन के लिए हमने कहाँ मना किया है? मन में तो अपने आप ही कुदरती रूप से विचार आते रहते हैं! और कभी विचार नहीं भी आते!

ऐसा है, मन तो अंतिम अवतार में भी प्रतिक्षण चलता रहता है, सिर्फ इतना ही कि तब मन गाँठवाला नहीं होता। जैसे उदय आएँ, वैसा होता है!

ज्ञान के बाद आप 'शुद्धात्मा' हो और व्यवहार से 'चंदूभाई' हो! अब 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ', उसे व्यवहार में विकल्प कहा जाता है, परंतु वास्तव में यह विकल्प नहीं है। यह तो डिस्चार्ज स्वरूप है। यदि खुद मान बैठे कि 'मैं ही चंदूभाई हूँ', तो वह विकल्प कहलाएगा। 'ज्ञान' के बाद 'मैं शुद्धात्मा हूँ', तो वह निर्विकल्प हो जाता है।

[२३]

बुद्धिशाली तो कैसा होता है?

प्रश्नकर्ता : बुद्धिशाली किसे कहा जाता है?

दादाश्री : जो अपने घर में, व्यवसाय में, चाहे कहीं भी कम से कम टकराव खड़ा हो, इस प्रकार से व्यवहार करे, वह बुद्धिशाली कहलाता है।

वर्ना सामनेवाले को राज़ी रखने के लिए पंडिताई करे, वह एक प्रकार का ओवरवाइज़पन है। बुद्धि से सामनेवाले को हेल्प होनी चाहिए।

सुबह चाय और मिठाई आई, तो हम मिठाई खाकर चाय पीएँ और फिर शोर मचाएँ कि 'चाय क्यों फीकी है', तो उसे बुद्धिशाली कैसे कहेंगे? और शायद कभी चाय फीकी आई भी हो, तब भी क्यों शोर मचाएँ? चार आने की चाय के लिए शोर मचाने से घर में बेचारे कितने लोग काँप जाते हैं!

बुद्धिशाली तो उसे कहते हैं कि कोई व्यक्ति उससे घबराए नहीं, उस तरह बुद्धि का उपयोग करता हो। और जहाँ पर दूसरा कोई घबरा जाता है, वहाँ पर कुबुद्धि है। उससे भयंकर पाप बंधते हैं। यानी कि बुद्धि के भाग तो समझने चाहिए न?

हमसे घर पर किसी की हेल्प नहीं मिले, मतभेद नहीं घटें, तो उस बुद्धि का क्या करना है?

और व्यवसाय में भी घाटा हो जाए, वह स्वाभाविक है, परंतु व्यवसाय की मरम्मत में भूल नहीं होनी चाहिए। आपको क्या लगता है?

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : हम तो यहाँ पर स्पष्टता करने के लिए बैठे हैं। 'ठीक है', ऐसा कहलवाने के लिए नहीं।

प्रश्नकर्ता : किसी जगह पर कपट हो रहा हो, घर में या बाहर तो धमकाना पड़ता है न?

दादाश्री : अपने धमकाने से यदि सामनेवाले का कपट मिटे तो धमकाना चाहिए, परंतु कपट हमेशा बना रहे तो डराने का कोई अर्थ नहीं। आपको धमकाना नहीं आता। ऐसा करके आपको जेल में डाल देना चाहिए कि 'इन्हें क्यों धमकाया?'

प्रश्नकर्ता : धमकाएँ नहीं, तो और क्या करें?

दादाश्री : वह किस तरह से सुधरे, वह देखना।

प्रश्नकर्ता : अपने साथ कोई कपट करे तो स्वाभाविक रूप से उसके ऊपर गुस्सा तो आएगा न?

दादाश्री : पाँच बार गुस्सा होने से उसका कपट यदि चला जाता हो तो ठीक है, और नहीं जाए तो आपको जेल में डाल देना चाहिए। इस दवाई से उसे ठीक नहीं होता! बल्कि ऐसी दवाई पिलाकर उसे मार डालते हो?

प्रश्नकर्ता : वह मनुष्य उसी तरह चलता है। फिर उसका क्या उपाय करें?

दादाश्री : यह आपका उपाय ही हानिकारक है। यह उपाय नहीं है। यह तो एक प्रकार का इगोइज़म है। मैं इसे ऐसे सुधारूँ, वैसे सुधारूँ, यह इगोइज़म है। हम क्या कहना चाहते हैं कि 'पहले तू सुधर।' सिर्फ आप ही बिगड़े हुए हो, वह तो सुधरा हुआ ही है! यह तो आप सभी को डराकर परेशान करते हो, वह आपको शोभा नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर क्या करूँ?

दादाश्री : खुद को बदलना है। खुद ऐसा बन जाए कि कभी भी

कोई उसके पास कपट करे ही नहीं। मेरे पास कोई कपट करता ही नहीं। अपने मन में कपट हो तभी सामनेवाला व्यक्ति कपट करता है। अपने मन में कपट नहीं हो तो कोई कपट करता ही नहीं! अपना ही फोटो है यह सारा!

प्रश्नकर्ता : अपना लेन-देन होगा, इसलिए सामनेवाला कपट करता है?

दादाश्री : हिसाब को तो हम लेट गो करते हैं। हिसाब का निवारण हो सके, ऐसा नहीं है। हिसाब तो, जो मुझे मिला है, उसका भी निवारण नहीं हो सकता।

आपसे कुछ भी बदला जा सके, ऐसा नहीं है। यह शोर मचाने का अर्थ ही क्या है फिर? उसका कपट तो वैसे का वैसा ही रहता है, बल्कि वह उसे बढ़ाता जाता है। आपने शोर मचाया तो वह मन ही मन कहेगा कि 'इनमें कुछ बरकत नहीं है और बेकार ही शोर मचा रहे हैं!' ऐसे वह खुद की भूल बढ़ाता ही जाता है और आपको पी जाता है!

प्रश्नकर्ता : उसका रास्ता क्या?

दादाश्री : उस पर अपना ऐसा प्रभाव पड़े कि वह कपट ही नहीं करे। हमें ये दूसरे सब तरीके अपनाने की ज़रूरत नहीं है। गुस्सा करते हो, इसके बदले मौन रहो न। गुस्सा, वह हथियार नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कपट से कोई व्यक्ति माल की चोरी करता हो, तो हमें देखते रहना है?

दादाश्री : उसके लिए गुस्सा, वह हथियार नहीं है। अन्य किसी हथियार का उपयोग करो और बैठाकर उसे समझाओ, विचारणा करने को कहो, तो सब ठिकाने पर आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : डॉक्टर ने कहा कि, 'आपको ब्लड प्रेशर है', तो उसे कुछ चीज़ें नहीं खानी चाहिए, फिर भी वह नहीं माने और खाए, तो मुझे डॉक्टर के पास दौड़ना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : मेरा कहना है कि डॉक्टर को ही ब्लड प्रेशर होता है न!

'वह किस आधार पर खाता है' वह आप जानते नहीं हो। आप तो एक बार कहकर देखो कि 'डॉक्टर ने आपको मिर्च खाने के लिए मना किया है'। फिर यदि आपका प्रभाव पड़ा तो ठीक और नहीं पड़ा तो भी ठीक। आपका भी प्रभाव नहीं पड़ेगा और डॉक्टर का भी प्रभाव नहीं पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : हम मिर्च खाते रहें और दूसरे की मिर्च बंद करवाएँ तो उसका प्रभाव नहीं पड़ेगा न?

दादाश्री : वैसा मैं करवाता ही नहीं। मुझे जितना त्याग बरतता है, उतना ही त्याग मैं आपसे करवाता हूँ, और वह भी आपकी इच्छा हो तब, नहीं तो मैं कहता हूँ कि शादी कर ले भाई। ले शादी कर!

हम कच-कच करें कि अचार मत खाना, मिर्ची मत खाना। तो वे मन में चिढ़ते रहते हैं कि यह कहाँ से सामने आया?

आपके मन में कभी ऐसा होता है कि मैं नहीं होऊँगा तो क्या होगा? तो फिर 'हम नहीं ही हैं' ऐसा मान लो! बिना बात के इगोइज़म करने के बजाय!

'मिर्ची मत खाना' डॉक्टर का वह ज्ञान हमें हाज़िर करना चाहिए। परंतु उसे स्वीकार करना या नहीं करना, वह तो उसकी मर्ज़ी की बात है।

मैंने किसी से कहा हो कि, ऐसा करना। तब वह कुछ अलग ही करता है। तब मैं उससे कहता हूँ कि, 'ऐसा करने से भला क्या फायदा होगा?' तब वह कहता है कि अब से नहीं करूँगा।

उसके बदले मैं यदि ऐसा कहूँ, 'तू क्यों करता है? तू ऐसा है और तू वैसा है।' तब वह ढँकेगा, ओपन नहीं करेगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसी कुशलता क्या एकदम से आ जाती है?

दादाश्री : नहीं, वह तो ऐसा सुना हुआ हो, तो कभी आ सकती है। ज्ञान सुना हुआ हो तो काम आएगा। मैं अपनी तरह से कैसे 'जगत्‌जीत' बना हूँ, वह आपको बताता हूँ। अंत में जगत् को जीतना तो पड़ेगा ही न?

दख़ल नहीं, 'देखते' रहो!

चलती गाड़ी में दख़ल नहीं करनी चाहिए। अपने आप ही वह चलती रहेगी। उसमें कुछ रुकेगा नहीं।

प्रश्नकर्ता : इसने इन्टरफियर(दख़ल) किया ऐसा कहते हैं, वही दख़ल का अर्थ है?

दादाश्री : इन्टरफियर तो होता ही नहीं चाहिए। उसे दख़ल ही कहा जाएगा। दख़ल होती है, तब गड़बड़ हो जाती है। जो चल रहा है उसे चलते रहने देना पड़ेगा। अपनी यह ट्रेन चल रही हो और उसमें कुछ खटक-खटक हो रहा हो तो उस घड़ी हमें ज़ंजीर खींचकर शोर मचाना चाहिए? नहीं, उसे चलते ही रहने देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यह ज़रा चूँ-चूँ बोल रही हो तो भी नीचे फिर ऑइल डालने जाता है।

दादाश्री : हाँ, जाता है। दख़ल करने की ज़रूरत नहीं है। क्या चल रहा है, उसे 'देखते' रहना। और हम यदि दख़ल करें, तब हमारी तो क्या दशा होगी? जो होता है उसे चलने देना।

प्रश्नकर्ता : गलत हो तो भी चलने दें?

दादाश्री : आप क्या गलत और सही को चलानेवाले थे? मनुष्यों में चलाने की शक्ति ही नहीं है। यह तो झूठा अहंकार करता है कि मैं गलत चलने ही नहीं दूँगा, उससे बल्कि झगड़े होते हैं, दख़ल होती हैं। किसी से गलत हो रहा हो तो हमें उसे समझाना चाहिए, नहीं तो मौन रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : परंतु हमारे प्रति अन्याय हो रहा हो तो?

दादाश्री : अन्याय हुआ तो मार खाओ न आराम से! नहीं तो फिर भी, जाओगे कहाँ? कोर्ट में जाकर वकील ढूँढ निकालो, वकील मिल जाते हैं न?

प्रश्नकर्ता : वकील लाएँ, वह दख़लअंदाज़ी कहलाएगी न?

दादाश्री : फिर वकील आपको झिड़केगा, 'बेअक्ल मूर्ख लोग! साढ़े दस बजे आए, जल्दी क्यों नहीं आए?' वह फिर ऐसे गालियाँ देगा। इसलिए फिर सीधे रहकर आप अपना झटपट निपटा दो न।

दख़ल में उतरने जैसा नहीं है। यह काल विचित्र है। अच्छी तरह बोलते हुए मैंने किसी को देखा ही नहीं। ऐसा बोलते हैं कि हमें हेडेक हो जाए। यह तो कहीं भाषा कहलाती होगी?

प्रश्नकर्ता : तो इस हिसाब से तो अच्छा कहना या गलत कहना, वह भी दख़लअंदाज़ी हुई न?

दादाश्री : कुछ बोलना ही मत। वह पूछे उतना ही जवाब देना। लंबा झंझट मत करना। हमें क्या लेना-देना? इसका अंत ही नहीं आएगा।

[२४]

अबला का क्या पुरुषार्थ?

प्रश्नकर्ता : क्रोध आए तो दबाना चाहिए या निकाल देना चाहिए?

दादाश्री : क्रोध दबाने से दबाया जा सके, ऐसी चीज़ नहीं है। वह तो आज दबाया, कल दबाया, स्प्रिंग को बहुत दबाएँ तो क्या होगा? एक दिन वह पूरी उछल जाएगी। अभी आप क्रोध को तात्कालिक दबाते हो वह ठीक है, परंतु कभी न कभी वह नुकसानदेह होगा। भगवान ने क्या कहा था कि क्रोध का विचारपूर्वक पृथ्थकरण कर दो। हालाँकि विचारपूर्वक करने में तो कई अवतार निकल जाएँगे। विचार करने के अवसर से पहले तो क्रोध हो जाता है। वह तो बहुत जागृति हो, तभी क्रोध नहीं होता, परंतु वह जागृति, अपने यहाँ पर जब 'ज्ञान' देते हैं, तब उत्पन्न होती है। फिर क्रोध-मान-माया-लोभ उनकी 'बाउन्ड्री' में आ जाते हैं। जागृति उत्पन्न हो जाती है। इसलिए आपको क्रोध होने से पहले ही जागृति आ जाती है और पृथ्थकरण होकर सबकुछ समझ में आ जाता है कि कौन गुनहगार है। हकीकत में यह क्या हुआ? सब समझ में आ जाता है, फिर क्रोध करता ही नहीं न?

क्रोध करना और दीवार पर सिर मारना, ये दोनों एक समान हैं। उसमें बिल्कुल भी फर्क नहीं है। ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सब कमज़ोरी कही जाती हैं, और वह कमज़ोरी जाए तो परमात्मा प्रकट होंगे। कमज़ोरी रूपी आवरण हैं। और 'प्रिज्युडिस' बहुत रहता है। एक व्यक्ति को जैसा मान बैठे हों, वह हमें वैसे का वैसा ही लगता रहता है। हमेशा के लिए वह वैसा नहीं रहता। प्रति सेकन्ड पर परिवर्तन होता है। पूरा जगत् परिवर्तनशील है। निरंतर परिवर्तन होता ही रहता है।

यह कमज़ोरी खुद निकालने जाओगे तो एक भी नहीं जाएगी, बल्कि दो और घुस जाएँगी, इसलिए जिनकी कमज़ोरी निकल गई है, उनके पास जाओ तो वहाँ पर आपका हल आ जाएगा। संसार का हल आएगा ही नहीं। पूरा जगत् भटक रहा है। इसका कारण यही है कि तरण तारणहार पुरुष मिलने चाहिए। आपको पार उतरना है, वह तय है न?

सुलझा हुआ व्यवहार, वही सरल मोक्षमार्ग

दादाश्री : अब वे जो कमज़ोरियाँ हैं, क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष, वे क्या-क्या काम करते हैं? क्या भूमिका अदा करते हैं?

प्रश्नकर्ता : हैरान-परेशान कर देते हैं। गुस्सा आ जाता है। बाद में जागृति आती है कि हमने यह गलत किया है। बाद में क्या उसके प्रतिक्रमण करना ज़रूरी है?

दादाश्री : अपने गुस्से से सामनेवाले को दुःख हुआ हो या सामनेवाले को कुछ भी नुकसान हुआ हो, तब आपको चंदूभाई से कहना चाहिए कि, 'हे चंदूभाई, प्रतिक्रमण कर लो, माफ़ी माँग लो।' सामनेवाला व्यक्ति यदि सरल नहीं हो, और उसके हम पैर छूने जाएँ तब वह ऊपर से हमें सिर पर मारेगा कि देखो अब ठिकाने आया!

बड़े ठिकाने लानेवाले आए ये लोग! ऐसे लोगों के साथ झंझट कम कर देना चाहिए, परंतु उसका गुनाह तो माफ़ कर ही देना चाहिए। वे कितने भी अच्छे भाव से या खराब भाव से आपके पास आया हो, परंतु उसके साथ कैसा व्यवहार रखना, वह आपको देखना है। सामनेवाले की प्रकृति टेढ़ी हो तो उस टेढ़ी प्रकृति के साथ भेजाफोड़ी नहीं करनी चाहिए। प्रकृति से ही यदि वह चोर हो, आप दस वर्ष से उसे चोरी करते हुए देख रहे हों और वह आकर आपके पैर छू जाए तो आपको क्या उस पर विश्वास रखना चाहिए? विश्वास नहीं रख सकते। चोरी करे, उसे हम माफ़ कर दें कि 'तू जा, अब तू छूट गया, तेरे लिए मेरे मन में कुछ नहीं रहेगा।' परंतु उस पर विश्वास नहीं रखना चाहिए और उसका फिर संग भी नहीं रखना चाहिए। फिर भी यदि संग रखा और फिर विश्वास नहीं रखो तो

वह भी गुनाह है। वास्तव में संग रखना ही मत और रखो तो उसके लिए पूर्वग्रह रहना ही नहीं चाहिए। 'जो भी हो, वह ठीक है' ऐसा रखना।

यह तो बहुत सूक्ष्म 'साइन्स' है। अभी तक ऐसा 'साइन्स' प्रकट नहीं हुआ। हर एक बात बिल्कुल नई 'डिज़ाइन' में है और फिर पूरे 'वर्ल्ड' को काम में आए ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : इससे पूरा व्यवहार सुधर जाएगा?

दादाश्री : हाँ, व्यवहार सुधर जाएगा और लोगों का 'मोक्षमार्ग' सरल हो जाएगा। व्यवहार सुधारना, वही सरल मोक्षमार्ग है। यह तो मोक्षमार्ग लेने जाते हुए व्यवहार बिगाड़ते रहते है और दिनों दिन व्यवहार उलझा दिया है।

बड़ौदा से अहमदाबाद जाते हुए उत्तर में ८० मील होगा, ऐसा कहा हो, परंतु लोग दक्षिण की तरफ़ चलें तो कितने मील बढ़ जाएँगे? ठेठ कन्याकुमारी तक कितने मील हो जाएगा? गाड़ी की स्पीड चाहे जितनी भी बढ़ाए परंतु अहमदाबाद दूर जाएगा या नज़दीक आएगा?

प्रश्नकर्ता : दूर जाएगा।

दादाश्री : इसी तरह लोगों ने व्यवहार उलझा दिया है। तरह-तरह के जप-तप किसलिए हैं? इसीलिए तो 'अखा भगत' चिल्ला उठे थे कि 'त्याग-तप, वह टेढ़ी गली।' टेढ़ी गली में घुसा कि खत्म हो गया। अब उस टेढ़ी गलीवाले से पूछें तो वह कहेगा कि, 'नहीं, हम मोक्षमार्ग में हैं।' इस ओर भगवान आएँ और उन्हें पूछें कि, 'यह कैसा है साहब? ये दोनों अलग-अलग तरह का बोल रहे हैं। इनमें से कौन सही है?' तब भगवान कहेंगे कि, ''इसे टेढ़ी गली' कहते हैं, वह भी गलत है और ये लोग 'सही मोक्षमार्ग है', ऐसा कहते हैं, वह भी गलत है!''

भगवान का कहने का भावार्थ क्या है कि, 'भाई, वह टेढ़ी गली में हो तो उसमें तेरा क्या गया? तू अपनी तरह से दर्शन करने जा न? भगवान बहुत सयाने होते हैं। उनमें बहुत सयानापन होता है, थोड़ी भी भूल नहीं होती!

कषायों से कर्म बंधन

प्रश्नकर्ता : नाम के प्रति मोह किस लिए है?

दादाश्री : कीर्ति के लिए! उसी की तो सारी मार खाई है अब तक! नाम का मोह, वह कीर्ति कहलाता है। कीर्ति के लिए मार खाई। अब, जब कीर्ति के बाद अपकीर्ति आए, तब भयंकर दुःख होता है। इसलिए कीर्ति-अपकीर्ति से हमें परे होना है। नाम का भी मोह नहीं चाहिए। खुद अपने आप में ही अपार सुख है!

मान और क्रोध, वे दोनों द्वेष हैं और लोभ व माया, वे राग हैं। कपट, राग में जाता है।

प्रश्नकर्ता : किसी के भय की वजह से कपट करना पड़े तो?

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। वह दूसरे को बहुत नुकसान करनेवाला नहीं है न? कपट, 'सामनेवाले को कितना नुकसान करता है', उस पर आधार रखता है। अभी आप सत्संग में जाने के लिए कपट करो तो वह कपट नहीं माना जाएगा, क्योंकि कुसंग तो भरपूर पड़ा हुआ है ही।

प्रश्नकर्ता : यह कपट का निमित्त आया, तभी कपट का भाव हुआ न?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : क्या भावकर्म बँधवाने के लिए कपट का निमित्त आता है?

दादाश्री : सिर्फ कपट ही नहीं, उसमें क्रोध-मान-माया-लोभ, चारों ही आ जाते हैं। उससे उसका अंधा दर्शन खड़ा हो जाता है। इसलिए ऐसे दर्शन के आधार पर ही वह सारे काम करता है। यह जब हम ज्ञान देते हैं, तब उस दर्शन को तोड़ते हैं। कितने ही पाप भस्मीभूत होने पर वह दर्शन टूटता है, और वह दर्शन टूटा कि काम हो गया!

इन क्रोध-मान-माया-लोभ के कारण संसार खड़ा रहा है, विषयों

के कारण नहीं खड़ा है। संसार का 'रूट कॉज़' ये क्रोध-मान-माया-लोभ हैं।

प्रश्नकर्ता : क्रोध-मान-माया-लोभ आएँ, उस समय स्वयं जागृत अवस्था में रहे, तो फिर उसका बँध नहीं पड़ता न?

दादाश्री : जागृति रहे किस तरह? वह खुद ही अंधा है, उसने दूसरों को अंधा बनाया है। जब तक उजाला नहीं होता, समकित नहीं होता, तब तक जागृत नहीं कहलाएगा न! समकित हो जाने के बाद काम होता है। जब तक समकित नहीं होता तब तक संयम भी नहीं है। वीतरागों का कहा हुआ संयम कहीं भी नहीं है, यह तो लौकिक संयम है।

प्रश्नकर्ता : वह स-राग चारित्र है?

दादाश्री : स-राग चारित्र तो बहुत ऊँची वस्तु है, ज्ञानी स-राग चारित्र में हैं। और जब ज्ञानी संपूर्ण वीतराग हो जाते हैं, फिर वीतराग चारित्र आता है।

संयम किसे कहते है? विषयों के संयम को त्याग कहा है। भगवान ने सिर्फ कषाय के संयम को संयम कहा है। कषायों के संयम से ही यह छूटता है, असंयम से तो बंधन है। विषय तो समकित होने के बाद भी रहते हैं, परंतु वे विषय गुणस्थानक में आगे नहीं बढ़ने देते, फिर भी उसमें हर्ज नहीं है, ऐसा कहा है। क्योंकि उससे कहीं समकित चला नहीं जाता।

'देखत भूली' टले तो...

'अक्रम विज्ञान' क्या कहता है?

फर्स्ट क्लास हाफूज़ आम देखने में हर्ज नहीं, तुझे सुगंध आई उसमें भी हर्ज नहीं, परंतु भोगने की बात मत करना। ज्ञानी भी आम को देखते हैं, सूंघते हैं। यानी ये विषय जो भोगे जाते हैं न, वे 'व्यवस्थित' के हिसाब से भोगे जाते हैं, वह तो 'व्यवस्थित' है ही! परंतु बिना काम के बाहर आकर्षण हो उसका क्या अर्थ? जो आम घर पर आनेवाले नहीं हैं, उन पर भी आकर्षण रहता है। और सब जगह आकर्षण हो, वह जोखिम है सारा। उससे कर्म बँधते हैं!

देखने में परेशानी नहीं है, भाव की परेशानी है। आपको भोगने का भाव उत्पन्न हुआ कि परेशानी हुई। देखने में, सुगंध लेने में कोई हर्ज नहीं है। संसार में 'खाओ, पीओ, सबकुछ करो', परंतु हमें उस पर भाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए।

इसलिए कृपालुदेव ने कहा है कि, 'देखत भूली टले, तो सर्व दु:खों का क्षय हो जाएगा।' देखे और भूल जाए, उसके लिए यह अपना 'ज्ञान' दिया है। बाद में देखत भूली बंद हो जाती है! हम तो सामनेवाले व्यक्ति में 'शुद्धात्मा' ही देखें, फिर हमें दूसरा भाव क्यों उत्पन्न होगा? नहीं तो मनुष्यों को तो कुत्ते पर भी राग हो जाता है, बहुत अधिक सुंदर हो तो उस पर भी राग हो जाता है। हम शुद्धात्मा देखेंगे तो राग होगा? यानी हमें शुद्धात्मा ही देखने है। यह देखत भूली टले ऐसी है नहीं और यदि टल जाए तो सब दु:खों का क्षय हो जाए। यदि दिव्यचक्षु हों तो देखत भूली टल सकती है, नहीं तो किस तरह टल सकती है?

प्रश्नकर्ता : 'देखत भूली' टल जाए तो क्या होगा?

दादाश्री : 'देखत भूली' टले तो सर्व दु:खों का क्षय होगा, मोक्ष होगा।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ यह कि राग भी नहीं होना चाहिए और भूल जाना चाहिए?

दादाश्री : अपना यह ज्ञान ऐसा है न कि राग हो, ऐसा तो है ही नहीं, परंतु आकर्षण हो उस घड़ी उसके शुद्धात्मा देखो तो आकर्षण नहीं होगा। 'देखत भूली' अर्थात् देखे और भूल कर बैठे! देखा नहीं हो तब तक भूल नहीं होती। जब तक आप कमरे में बैठे रहो, तब तक कुछ नहीं होता, परंतु विवाह समारोह में गए और देखा कि फिर भूलें होती हैं वापस। वहाँ आप शुद्धात्मा देखते रहोगे, तो दूसरा कोई भाव उत्पन्न नहीं होगा और भाव उत्पन्न हो गया हो, उसके पूर्वकर्म के धक्के से, तो उसका प्रतिक्रमण कर देना, यही उपाय है। यहाँ घर में बैठे थे, तब तक मन में कुछ भी खराब विचार नहीं आ रहे थे और कहीं विवाह में गए कि विषय के विचार

उत्पन्न हुए। संयोग मिला कि विचार उत्पन्न होते हैं। यह 'देखत भूली' सिर्फ दिव्यचक्षु से ही टले, ऐसा है। दिव्यचक्षु के बिना नहीं टल सकती।

प्रश्नकर्ता : यह तो संयोगों को टालने की बात हुई न? इसका मतलब एक ही जगह पर बैठे रहें?

दादाश्री : नहीं, अपना विज्ञान तो अलग ही तरह का है, हमें तो 'व्यवस्थित' में जो हो वह भले हो, परंतु वहाँ पर आज्ञा में रहना चाहिए। जहाँ पर अंगारे हों, वहाँ पर आज्ञा में नहीं रहते? अंगारों को भूल से भी नहीं छूते न? ऐसा ही उसे यहाँ पर विषय के बारे में सँभाल लेना चाहिए कि ये अंगारे हैं, प्रकट अग्नि है। इस जगत् में जो वस्तु आकर्षणवाली है वह प्रकट अग्नि है, वहाँ सावधान हो जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ यह कि हम जो देखते है, वह अपना नहीं है फिर भी वहाँ पर भाव हो जाता है, वह नहीं होना चाहिए, ऐसा?

दादाश्री : अपना वह है ही नहीं, *पुद्गल* अपना होता ही नहीं। यह अपना *पुद्गल* 'अपना' नहीं है, तो उसका *पुद्गल* अपना कैसे होगा?

आकर्षण, वह प्रकट अग्नि है। भगवान ने आकर्षण को तो मोह कहा है। मोह का मूल ही आकर्षण है। आप तो सामनेवाले में शुद्धात्मा देखते हो, परंतु फिर वापस भाव उत्पन्न हो गया हो, आकर्षण हो गया हो तो प्रतिक्रमण करने से उखड़ जाएगा। ऐसा सबकुछ जानकर लक्ष्य में रखना चाहिए न! दवाई की जानकारी तो रखनी चाहिए न कि इसकी क्या दवाई है?

यह विज्ञान है। संपूर्णभाव से विज्ञान है। अंगारों को क्यों नहीं छूते? वहाँ क्यों चौकन्ने रहते हो? क्योंकि उसका फल तुरंत ही मिलता है। और विषय में तो लालच हो जाता है, इसलिए लालच से फँस जाता है। इन अंगारों को छूना अच्छा है, उसका उपाय है। फिर कुछ भी चुपड़ें तो ठंडा पड़ जाता है। परंतु विषय तो अभी लालच में फँसाकर और वापस अगला जन्म दिखाएगा। यह तो अपने ज्ञान को भी धक्का मारे ऐसा है। इतना बड़ा विज्ञान है। इसे भी धक्का मारे ऐसा है, इसलिए सावधान रहना।

खाने-पीने के आकर्षणों में हर्ज नहीं है। आम खाना हो तो खाना। जलेबी, लड्डू खाना। उसमें सामने कोई दावा करनेवाला नहीं है न? 'वन साइडेड' में हर्ज नहीं है। यह 'टू साइडेड' होगा तो ज़िम्मेदारी रहेगी। आप कहोगे कि मुझे अब नहीं चाहिए, तो वह कहेगी कि मुझे चाहिए। आप कहो कि मुझे माथेरान नहीं जाना है, तो वह कहेगी कि मुझे माथेरान जाना है। इससे तो *उपाधि* हो जाएगी। अपनी स्वतंत्रता खो जाती है। इसलिए सावधान रहना! यह बहुत समझने जैसी चीज़ है। इसे सूक्ष्मता से समझकर रखो तो काम निकल जाए!

प्रश्नकर्ता : यह पिक्चर, नाटक, साड़ी, घर, फर्निचर आदि का जो मोह है, उसमें हर्ज नहीं है न?

दादाश्री : उसमें कुछ नहीं। बहुत हुआ तो उसके लिए आपको मार पड़ेगी। 'इस' (आत्म) सुख को आने नहीं देगा। परंतु ये सब सामने दावा नहीं करेंगे न? और विषयवाला तो 'क्लेम' करता है, इसलिए सावधान रहो।

'वाह-वाह' का 'भोजन'

प्रश्नकर्ता : मैं जो दान देता हूँ उसमें मेरा भाव धर्म का, अच्छे काम का होता है। उसमें लोग वाह-वाह करें तो वह पूरा खत्म नहीं हो जाता?

दादाश्री : इसमें बड़ी रकम का उपयोग हो, तो उसका पता चल जाता है और उसकी वाह-वाह की जाती है। और ऐसी रकम भी दान में जाती है कि जिसे कोई जानता नहीं और वाह-वाह नहीं करता, तो उसका लाभ रहता है! हमें उसकी सिरदर्दी में पड़ने जैसा नहीं है। हमारे मन में ऐसा भाव नहीं है कि लोग 'भोजन' करवाएँ! इतना ही भाव होना चाहिए! जगत् तो महावीर की भी वाह-वाह करता था! परंतु उसे वे 'खुद' स्वीकारते नहीं थे न? इन दादा की भी लोग वाह-वाह करते हैं, परंतु हम उसे स्वीकारते नहीं और ये भूखे लोग तुरंत ही स्वीकर कर लेते हैं। दान का पता चले बिना रहता ही नहीं न? लोग तो वाह-वाह किए बगैर रहेंगे नहीं,

परंतु खुद उसे नहीं स्वीकारे तो फिर क्या परेशानी है? स्वीकारे तब रोग घुसेगा न? जो वाह-वाह नहीं स्वीकारते, उन्हें कुछ भी नहीं होता। वाह-वाह को खुद स्वीकार नहीं करता, इसलिए उसे कोई नुकसान नहीं होता और जो तारीफ करते हैं, उन्हें पुण्य बँधता है। सत्कार्य की अनुमोदना का पुण्य बँधता है। यानी ऐसी सब अंदर की बात है। ये तो सब कुदरती नियम हैं।

जो लोग तारीफ करते हैं, उनके लिए वह कल्याणकारी है। और जो सुनते हैं, उनके मन में भी अच्छे भाव के बीज डलते हैं कि 'यह भी करने जैसा है तो सही। हम तो ऐसा जानते ही नहीं थे!'

प्रश्नकर्ता : हम अच्छा काम तन, मन, धन से करते हों परंतु कोई अपना खराब ही बोले, अपमान करे तो उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : जो अपमान करता है, वह भयंकर पाप बाँध रहा है। अब इसमें अपना कर्म धुल जाता है और अपमान करनेवाला तो निमित्त बना।

प्रतिक्रमण की गहनता

प्रश्नकर्ता : इसमें कभी हमें बुरा लग जाता है कि मैं इतना सब करता हूँ, फिर भी यह मेरा अपमान कर रहा है?

दादाश्री : आपको उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए। यह तो व्यवहार है। इसमें सभी प्रकार के लोग हैं। वे मोक्ष में नहीं जाने देते।

प्रश्नकर्ता : वह प्रतिक्रमण हमें किस चीज़ का करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण इसलिए करना है कि 'इसमें मेरे कर्म का उदय था और आपको ऐसा कर्म बाँधना पड़ा। उसका प्रतिक्रमण करता हूँ और फिर से ऐसा नहीं करूँ कि जिसके कारण किसी को मेरे निमित्त से ऐसा कर्म बांधना पड़े।'

जगत् किसी को मोक्ष में जाने दे, ऐसा नहीं है। सभी प्रकार से ये आंकड़े हमें खींचकर ले ही आते हैं। इसलिए, यदि हम प्रतिक्रमण करें

तो आंकड़ा छूट जाएगा। इसलिए महावीर भगवान ने आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, ये तीनों चीज़ें एक ही शब्द में दी हैं। दूसरा कोई रास्ता है ही नहीं। अब खुद प्रतिक्रमण कब कर सकता है? खुद को जागृति हो तब, 'ज्ञानीपुरुष' के पास से ज्ञान प्राप्त हो, तब वह जागृति उत्पन्न होती है।

आपको तो प्रतिक्रमण कर लेना है, ताकि आप ज़िम्मेदारी में से छूट जाओ।

मुझे शुरूआत में सब लोग 'अटेक' करते थे न? परंतु फिर सब थक गए! अपना यदि उसके सामने आक्रमण हो तो सामनेवाले नहीं थकते!

यह जगत् किसी को मोक्ष में जाने दे, ऐसा नहीं है। इतना अधिक बुद्धिवाला जगत् है। इसमें से यदि सावधानीपूर्वक चलेगा, समेटकर चलेगा तो मोक्ष में जाएगा!

शुद्धात्मा और प्रकृति परिणाम

'निज स्वरूप' का भान होने के बाद, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा बोला तब से निर्विकल्प होने लगता है और उसके अलावा अगर और कुछ बोला कि, 'मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ', वे सब विकल्प है। उससे पूरा संसार खड़ा हो जाता है, और शुद्धात्मा बोलनेवाला निर्विकल्प पद में जाता है। अब इसके बावजूद भी इन 'चंदूभाई' के तो दोनों कार्य चलते ही रहेंगे, अच्छे और बुरे दोनों कार्य चलते ही रहेंगे। यों उल्टा भी करेगा और सीधा भी करेगा, यह प्रकृति का स्वभाव है। सिर्फ उल्टा या सिर्फ सीधा कोई कर ही नहीं सकता। कोई थोड़ा बहुत उल्टा करता है तो कोई अधिक उल्टा करता है!

प्रश्नकर्ता : नहीं करना हो तो भी हो ही जाएगा?

दादाश्री : हाँ, हो ही जाएगा, इसलिए 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा तय करके यह सब उल्टा-सुल्टा देख! तुझे उल्टा-सुल्टा अंदर आए, तब तुझे मन में ऐसी कल्पना नहीं करनी है कि 'मुझसे उल्टा हो गया, मेरा शुद्धात्मा बिगड़ गया!' शुद्धात्मा अर्थात् मूल तेरा ही स्वरूप है। यह जो उल्टा-सीधा

होता है, ये तो परिणाम आए हैं। पहले भूलें की थीं, उनके ये परिणाम हैं। वे परिणाम 'देखते' रहो। और उल्टा-सुल्टा तो यहाँ पर लोगों की भाषा में है। भगवान की भाषा में उल्टा-सुल्टा कुछ है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : उल्टा-सुल्टा यदि भगवान की भाषा में नहीं है तो फिर माथापच्ची करने को रहा ही कहाँ?

दादाश्री : कुछ भी माथापच्ची नहीं करनी है। इसलिए मैं कहता हूँ कि ''देखो'। और यदि किसी को दुःख नहीं हो, और दुःख हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण करना, ऐसा भगवान ने कहा है।''

प्रश्नकर्ता : उल्टा-सीधा भगवान की भाषा में रहा ही नहीं, तो फिर प्रतिक्रमण करने को रहा ही कहाँ?

दादाश्री : सामनेवाले को दुःख होता है, इसलिए। 'सामनेवाले को दुःख नहीं होना चाहिए', यह भगवान की भाषा है न?

प्रश्नकर्ता : परंतु अपना आशय अच्छा होता है, फिर भी दुःखी होते है?

दादाश्री : आशय अच्छा हो, चाहे जो हो, परंतु उसे दुःख नहीं होना चाहिए। अर्थात् सामनेवाले को दुःख हुआ, तभी से (कर्म) चिपकेगा। इसलिए सामनेवाले को दुःख नहीं हो, उस तरह से काम लेना।

प्रश्नकर्ता : लोगों को सच्ची बात पसंद ही नहीं आती, फिर कहने को रहा ही कहाँ?

दादाश्री : नहीं, सच्ची बात पसंद नहीं आए, ऐसा है ही नहीं। ऐसा है न कि सच्ची बात को, सच्ची बात कब माना जाता है? सिर्फ सत्य की तरफ ही नहीं देखना है। उसके दो-तीन पहलू होने चाहिए। वह हितकर होना चाहिए, सामनेवाला खुश हो जाना चाहिए। फिर आपकी बात उल्टी हो या सीधी हो परंतु सामनेवाला खुश हो जाना चाहिए, लेकिन उसमें आपकी खराब नियत नहीं होनी चाहिए और सत्य बोलने से सामनेवाले को यदि दुःख होता हो तो आपको बोलना ही नहीं आता। सत्य तो प्रिय,

हितकर और मित होना चाहिए। मित अर्थात् सामनेवाले को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि 'ये चाचा बेकार ही बोलते जा रहे हैं!' सामनेवाले को जो पसंद आई, वही वाणी सत्य है। जिस किसीने इस सत्य की पूँछ पकड़ी, उन सभी ने वह मार खाई है।

प्रश्नकर्ता : मस्का मारना, उसका नाम सत्य है? गलत 'हाँ' में हाँ मिलानी?

दादाश्री : वह सत्य नहीं कहलाता। मस्का मारने जैसी वस्तु ही नहीं है। यह तो खुद की खोजबीन है, खुद की भूल के कारण दूसरों को मस्का मारता है यह। सामनेवाले को फिट हो जाए, ऐसी अपनी वाणी बोली जानी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : 'सामनेवाले को क्या होगा', ऐसा विचार करने बैठें तो कब पार आएगा?

दादाश्री : उसका विचार आपको नहीं करना है। आपको तो चंदूभाई से कहना है कि प्रतिक्रमण करो। बस इतना ही कहना है। यह 'अक्रम विज्ञान' है। इसलिए प्रतिक्रमण रखना पड़ा है। बात को सिर्फ समझना ही है। यह तो विज्ञान है। इसलिए बात ही समझ लें तो कुछ स्पर्श कर सके ऐसा नहीं है और चंदूभाई को आप जब पूछो, आप शुद्धात्मा हो या चंदूभाई? तब कहते हैं 'मैं शुद्धात्मा हूँ', बस! फिर और क्या पूछने को रहा? फिर वह टेढ़ा करे तो उसका सुख रुक जाएगा, बस इतना ही।

जगत् में आप सभी को पसंद आओगे तो काम आएगा। जगत् को आप पसंद नहीं आए, तो वह आपकी ही भूल है। इतना समझ लेने की ज़रूरत है। इसलिए 'एडजस्ट एवरीव्हेर।' इस झंझट का तो अंत ही नहीं आएगा न? मैं अलग कहूँ, यह अलग कहे, तो लोग तो सुनेंगे ही नहीं न? लोग तो क्या कहते हैं कि आपकी बात हमें फिट होनी चाहिए।

हमें बहुत लोग कहते हैं कि, 'दादा, आपको यह आता होगा और वह आता होगा', तब मैं कहता हूँ कि, 'अरे भाई, मुझे तो कुछ भी नहीं आता। इसीलिए तो यह मैं आत्मा का सीख गया।'

हमें बिना बात के लप्पन-छप्पन (ज़रूरत से ज़्यादा बातचीत करना) क्यों बघारनी है? लप्पन-छप्पन करेंगे तो आते हुए भी शादी (आपसी व्यवहार करते-करते हिसाब बंधना) होगी और जाते हुए भी शादी होगी। यानी सबकुछ सही तरीके से होना चाहिए, बहुत अतिशय में उतरने जैसा नहीं है।

हमें तो सबको फिट हो, ऐसा रखना चाहिए। मेरा किसी के साथ मतभेद नहीं पड़ता। मतभेद पड़े तब से जान जाता हूँ कि मेरी भूल है और वहाँ मैं तुरंत जागृत हो जाता हूँ। आप मेरे साथ चाहे कितना भी टेढ़ा बोलो, परंतु उसमें आपकी भूल नहीं है। भूल तो मेरी है, सीधा बोलनेवाले की है। क्योंकि मैं यह ऐसा कैसा बोला कि इसे मतभेद पड़ा! यानी जगत् को 'एडजस्ट' किस तरह हों, वह देखना है। आप सामनेवाले का हित चाहते हों, जैसे कि अस्पताल में कोई मरीज़ हो, आप उसके संपूर्ण हित में हो, इस वजह से आप उसे 'ऐसा करो, ऐसा मत करो' ऐसा कहते रहते हो, परंतु पेशन्ट ऊब जाता है कि यह क्या झंझट बिना बात का?

यानी जिस पानी से मूँग पकें, उस पानी से मूँग पकाने हैं। आजवा (बड़ौदा का एक सरोवर) के पानी से नहीं पकें तो हमें दूसरा पानी डालना चाहिए, कुएँ का डालें और फिर भी नहीं पकें तो गटर का पानी डालकर भी मूँग पकाओ, हमें तो मूँग पकाने से काम है!

सामनेवाले को समाधान दो

हम सभी को सीखना क्या है, कि मतभेद नहीं पड़े ऐसा बर्ताव करें। मतभेद पड़ा कि आपकी ही भूल है, आपकी ही कमज़ोरी है। सामनेवाले को हमसे समाधान होना ही चाहिए। सामनेवाले के समाधान की ज़िम्मेदारी अपने सिर पर है।

आपसे सामनेवाले का समाधान नहीं हो तो आप क्या समझते हो? सामनेवाले में कम समझ है, ऐसा ही समझते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आपका विवाद हो जाए, उस समय बात को घुमा-फिराकर भी उसे असमाधान न रहे, आपको उस तरह से काम लेना चाहिए। यदि आप समझदार हो तो आप पलट जाओ और समाधान करवाओ। यदि आप नहीं पलटते तो आप समझदार नहीं हो। बाकी सामनेवाला तो पलटेगा नहीं। इसलिए मैं किसी को भी नहीं पलटता। मैं ही उससे कहता हूँ कि, 'भाई, मैं ही पलट जाऊँगा।' हमें सीधा रखना है।

ग्यारह बजे आप मुझे कहो कि, 'आपको भोजन कर लेना पड़ेगा।' मैं कहूँ कि 'थोड़ी देर बाद भोजन करूँ तो नहीं चलेगा?' तब आप कहो कि, 'नहीं, भोजन कर लीजिए, तो काम पूरा हो।' तो मैं तुरंत ही भोजन करने बैठ जाऊँगा। मैं आपके साथ 'एडजस्ट' हो जाऊँगा। अब 'एडजस्ट' नहीं होनेवाले को तो लोग मूर्ख कहेंगे। हर एक चीज़ में 'एडजस्ट' नहीं होंगे, तो सामनेवाला मनुष्य आपके लिए क्या अभिप्राय देगा?

समझ किसे कहते है? फिट हो जाए वही समझ! फिर वह ठीक है या नहीं, वह नहीं देखना है। और नासमझी किसे कहते है कि जो फिट नहीं हो। यही एक बात समझ लेनी है।

प्रश्नकर्ता : चेतनता इन्द्रिय समझ से तो बहुत आगे है न? चेतनता हो तो टकराव हो ही नहीं सकेगा।

दादाश्री : नहीं, टकराव तो होना ही नहीं चाहिए। जहाँ टकराव हो, वहीं पर हमारी नासमझी है। इसमें चेतनता का सवाल ही नहीं है। चेतन तो चेतन ही है। यह तो नासमझी भरी हुई है, इसलिए! नामसझी किस लिए खड़ी होती है? अंदर 'इगोइज़म' का मूल है इसलिए! जब तक उस अहंकार का मूल होता है, तब तक ऊँचा-नीचा होता ही रहता है। परेशान करता है, हैरान कर देता है, चैन नहीं लेने देता। इसलिए तब हमें धीरे से उसका मूल उखाड़ देना पड़ेगा। कोई कुछ बोले तो पहले तो अंदर उस अहंकार का मूल खड़ा होता है, फिर चैन से बैठने नहीं देता। बहुत दबाने का प्रयत्न करने पर भी बैठने नहीं देता।

इसके बजाय तो 'हम कुछ नहीं जानते' ऐसा भाव आया, तो बस,

हम सब 'शुद्धात्मा' के तौर पर ज्ञानी हैं और व्यवहारिक तौर पर इस तरह से है।

असमाधानों में एडजस्टमेन्ट या प्रतिक्रमण?

प्रश्नकर्ता : कोई व्यक्ति आज्ञापूर्वक कहे कि आप ऐसा करो, और यदि उस व्यक्ति पर विश्वास नहीं हो न, तो वहाँ प्रकृति 'एडजस्ट' नहीं होती, तब क्या करें?

दादाश्री : विश्वास के बिना तो इस ज़मीन पर दो पैर भी नहीं पड़ सकते! 'यह ज़मीन पोली है' ऐसा जान जाए, तो फिर कोई वहाँ पर जाएगा ही नहीं न! इस स्टीमर में छेद है, ऐसा जानने पर कोई उसमें बैठेगा?

प्रश्नकर्ता : परंतु ज्ञान के बाद जो सहजता रहनी चाहिए और सामनेवाले के साथ एडजस्ट होना चाहिए। यदि वैसा नहीं हो पाए तो क्या करें?

दादाश्री : वैसा हो तो उसे 'देखना'! 'चंदूभाई' क्या करते हैं, 'हमें' उसे सिर्फ देखना है। ऐसा अपना ज्ञान कहता है।

प्रश्नकर्ता : हम सामनेवाले के साथ 'एडजस्ट' नहीं हों, तो वह अपनी *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) कहलाएगी?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। जैसा सामनेवाले का हिसाब हो उसके अनुसार सब होता है।

प्रश्नकर्ता : परंतु सामनेवाले मनुष्य को दुःख तो होगा न कि यह मेरा मान नहीं रखता।

दादाश्री : तो उसका आपको 'चंदूभाई' के पास से प्रतिक्रमण करवाना चाहिए, उसमें और कोई परेशानी नहीं है।

इन सब्ज़ियों में कितनी जातियाँ हैं?

प्रश्नकर्ता : बहुत सारी।

दादाश्री : वैसे ही यह सब भी सब्ज़ी की तरह ही अलग-अलग तरह का है। सिर्फ प्रतिक्रमण ही इसका उपाय है।

प्रश्नकर्ता : तो ऐसे समय में हमें अपनी बात छोड़ देनी चाहिए या पकड़कर रखनी चाहिए?

दादाश्री : क्या होता है उसे 'देखना'।

प्रश्नकर्ता : कई बार तो हमारी पकड़ दो-दो, तीन-तीन दिनों तक चलती है। उस समय प्रकृति 'एडजस्ट' नहीं हो पाती, उसका अफसोस रहा करता है।

दादाश्री : आपकी प्रकृति किसी को बाधक होती हो तो प्रतिक्रमण करवाना। प्रकृति तो तरह-तरह का बहुत सारा दिखाती है।

प्रश्नकर्ता : परंतु ऐसे समय में मान लीजिए कि हम 'एडजस्ट' नहीं हों और सामनेवाले को दु:ख होता रहे, तो फिर क्या करें? हम 'एडजस्ट' हो जाएँ?

दादाश्री : हमें तो सिर्फ प्रतिक्रमण ही करना है। 'एडजस्ट' होना भी नहीं है और हुआ भी नहीं जाता। हमें 'एडजस्ट' होना हो तो भी नहीं हो पाते, टिकट चिपकती ही नहीं। तू चिपकाता रहे, फिर भी उखड़ जाती है! अत: सामनेवाले को आपसे दु:ख हो या सुख हो, आपको प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए।

किसी को दु:ख हो रहा है, उस कारण से हमें 'एडजस्ट' हो जाना है, ऐसा लिखा हुआ नहीं है। ऐसे 'एडजस्ट' हुआ भी नहीं जाता। ऐसा भाव ही, अभिप्राय ही नहीं होना चाहिए कि 'एडजस्ट' होना है।

प्रश्नकर्ता : यह समझ में नहीं आया, फिर से समझाइए!

दादाश्री : 'एडजस्ट' होने का अभिप्राय ही नहीं होना चाहिए। जहाँ 'एडजस्ट' ही नहीं हुआ जा सके ऐसा हो, वहाँ पर 'एडजस्ट' होने के अभिप्राय को क्या करना है? इसके बजाय तो प्रतिक्रमण कर लेना, वह

सब से अच्छा है! 'एडजस्ट' होने का भाव भी अच्छा नहीं है। वह सब संसार है। इस रूप में या उस रूप में, सारा संसार ही है। इसमें न तो धर्म है, न ही आत्मा।

प्रश्नकर्ता : 'फाइलों का समभाव से *निकाल*' नहीं हो तो सामनेवाले व्यक्ति को दुःख होगा?

दादाश्री : उसका *निकाल* दस दिन बाद होगा, आज महँगाई में नहीं होगा तो जब सस्ता हो जाएगा, उस समय होगा। उसके लिए हमें रातों को जागने की ज़रूरत नहीं है। हम 'शुद्धात्मा' हैं, पहले खुद का काम कर लेना है और दूसरों को दुःख हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण कर लेना है। दूसरे सभी झंझटों में नहीं पड़ना चाहिए। जैसा तू करने को कहता है, वैसा यदि 'ज्ञानीपुरुष' करें, तो उसका कब अंत आएगा? ऐसे कितने लफड़े?

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि सामनेवाले के साथ एडजस्टमेन्ट रखने का भाव भी नहीं होना चाहिए। उसका अर्थ यह है कि दूसरे को एडजस्टमेन्ट देने के भाव में तन्मयाकार होने की ज़रूरत नहीं है, सुपरफ्लुअस रूप से करना है, ऐसा आप कहना चाहते हैं?

दादाश्री : एडजस्टमेन्ट बहुत प्रकार के होते हैं। कुछ एडजस्टमेन्ट तो लेने जैसे ही नहीं होते। कुछ एडजस्टमेन्ट लेने जैसे होते हैं। परंतु उनके लिए भाव रखने की भी ज़रूरत नहीं है। 'क्या होता है' उसे 'देखते' रहना। इतना करने से एक जन्म में छूटा जा सकेगा। थोड़ा-बहुत उधार रहेगा तो अगले जन्म में चुक जाएगा।

इससे मन *आमळे नहीं चढ़े*, इतना रखना। जिस बात से अपना मन *आमळे चढ़े* (विचारों का बवंडर उठना, बहुत विचार आने से अभाव होना) तो उस बात को बंद रखना। मन *आमळे चढ़े* तो भीतर दुःख होता है, घबराहट होती है और बहुत *आमळे चढ़े* तो चिंता होती है। इसलिए मन के *आमळे चढ़ने* से पहले हमें बात को बंद कर देना चाहिए। यह इसका लेवल है।

प्रश्नकर्ता : इसमें कईबार क्या होता है कि सामनेवाले व्यक्ति को दु:ख होता है और उसके मन का समाधान नहीं होता न!

दादाश्री : समाधान तो शायद एक वर्ष तक भी नहीं हो, तो उसके लिए हम क्या कह सकते हैं? अपने मन में ऐसा भाव रखना कि सामनेवाले का समाधान हो जाए, ऐसी वाणी निकलनी चाहिए। वाणी यदि उल्टी निकली हो, तो उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए। वर्ना इस संसार का तो अंत ही नहीं आएगा। ये तो बल्कि हमें घसीट ले जाएँगे। सामनेवाला तालाब में गिर गया होगा तो वह तुझे भी उसमें ले जाएगा! हमें अपनी सेफसाइड रखकर काम लेना चाहिए सारा। अब इस संसार में गहरे उतरने जैसा है ही नहीं। यह तो संसार है! जहाँ से काटो वहाँ से अंधेरे और सिर्फ अंधेरे की ही स्लाइस निकलेगी! इस प्याज़ को काटें तो उसकी सभी स्लाइस प्याज़ की ही होंगी न?

प्रतिक्रमण करने पर भी किसी को समाधान नहीं हो तो अगले जन्म में चुकेगा, परंतु अभी तो हमें अपना कर लेना है। सामनेवाले का सुधारते हुए अपना नहीं बिगड़े, सब से पहले इसका ध्यान रखो! सब अपना-अपना सँभालो!

प्रश्नकर्ता : संसार व्यवहार करते हुए शुद्ध आत्महेतु को किस तरह सँभालकर रखें?

दादाश्री : वह सँभला हुआ ही है। तुझे सँभालने की ज़रूरत नहीं है। 'तू' 'तेरी' जात को सँभाल! 'चंदूभाई' खुद की जात को सँभालेंगे!

प्रश्नकर्ता : ऐसी जागृति हो जाने के बाद वह फिर जाएगी नहीं न?

दादाश्री : नहीं, वह फिर जाएगी नहीं, परंतु यह काल विचित्र है। धूल उड़ाए न, तो भी जागृति कम हो जाए ऐसा है और साथ-साथ यह 'अक्रम विज्ञान' है, यानी कि कर्मों को खपाए बिना मिला हुआ विज्ञान है। इन कर्मों को खपाते हुए आप पर यह धूल उड़ेगी। मुझे तो परेशानी नहीं होती, क्योंकि मेरे बहुत कर्म बाकी नहीं रहे। अपना यह 'अक्रम विज्ञान' तो सभी कर्मों को खत्म कर दे ऐसा है, परंतु अपनी तैयारी चाहिए।

पूरी दुनिया के तूफ़ान को खत्म कर दे, ऐसा यह विज्ञान है, लेकिन हम यदि इसमें स्थिर रहें तो! हम यदि ज्ञान में स्थिरता पकड़ लें तो कोई नाम नहीं देगा।

यह तो जागृति का मार्ग है, हमें जागृत रहना है। सामनेवाले को दु:ख हुआ, उसका प्रतिक्रमण करने का हमारे पास इलाज है। और क्या करना है? बाकी तो ये देह, मन, वाणी सब 'व्यवस्थित' के ताबे में हैं।

अप्रतिक्रमण दोष, प्रकृति का या अंतराय कर्म का?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण नहीं हो पाते, यह प्रकृतिदोष है या यह अंतरायकर्म है?

दादाश्री : यह प्रकृतिदोष है। और यह प्रकृतिदोष सभी जगह पर नहीं होता। कुछ जगह पर दोष हो जाते हैं और कुछ जगह पर नहीं होते। प्रकृतिदोष की वजह से प्रतिक्रमण नहीं हो पाएँ, उसका हर्ज नहीं है। हमें तो इतना ही देखना है कि अपना भाव क्या है? हमें और कुछ नहीं देखना है। आपकी इच्छा प्रतिक्रमण करने की है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पूरी-पूरी।

दादाश्री : इसके बावजूद यदि प्रतिक्रमण नहीं हो पाएँ, तो वह प्रकृतिदोष है। प्रकृतिदोष में आप जोखिमदार नहीं हो। किसी समय प्रकृति बोलती भी है और न भी बोले, यह तो बाजा है। बजे तो बजे, नहीं तो नहीं भी बजे, इसे अंतराय नहीं कहते।

कई लोग मुझे कहते हैं कि, 'दादा, समभाव से *निकाल* करने जाता हूँ, परंतु हो नहीं पाता।' तब मैं कहता हूँ, ''अरे भाई, *निकाल* नहीं करना है! तुझे समभाव से *निकाल* करने का भाव ही रखना है। समभाव से *निकाल* हो जाए या नहीं भी हो पाए। वह तेरे अधीन नहीं है। तू मेरी आज्ञा में रह न! उससे तेरा काफी कुछ काम पूरा हो जाएगा, और पूरा नहीं हो पाए तो वह 'नेचर' के अधीन है।''

हम तो इतना ही देखते हैं कि 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है',

इतना तू नक्की कर। फिर वैसा हुआ या नहीं हुआ वह हमें नहीं देखना है। कब तक यह नाटक देखने बैठे रहें? इसका अंत ही कब आएगा? हमें तो आगे चलने लगना है। शायद समभाव से *निकाल* नहीं भी हो। होली नहीं जली है तो आगे जाकर जलाएँगे। इस तरह उछलकूद करने से थोड़े ही जलेगी? इसका कब अंत आएगा? आप दियासलाई जलाना, और कुछ जलाना, बाद में आपको इससे क्या काम? छोड़ो इसे और आगे चलो।

प्रश्नकर्ता : यदि प्रतिक्रमण हो पाएँ, तो वह धर्मध्यान में गया या शुक्लध्यान में गया?

दादाश्री : नहीं, वह धर्मध्यान में नहीं जाता और शुक्लध्यान में भी नहीं जाता। यह प्रतिक्रमण, कोई ध्यान नहीं है। प्रतिक्रमण आपको चोखा (खरा, अच्छा, शुद्ध, साफ) बनाते हैं। वास्तव में आत्मा प्राप्त करने के बाद प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत ही नहीं है, परंतु यह तो 'अक्रम विज्ञान' है। आपको रास्ते चलते आत्मा प्राप्त हो गया है। इसलिए पिछले दोषों को धोने के लिए प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। इतने सारे दोषों के बीच यदि प्रतिक्रमण नहीं करोगे तो वे दोष खूब उछलकूद करेंगे! ये कपड़े बिगड़ जाएँ, तो उन्हें धोने तो पड़ेंगे ही न? और क्रमिक मार्ग में तो कपड़े चोखे करने के बाद आत्मा प्राप्त होता है। उसमें उन्हें दाग़ ही नहीं पड़नेवाला न?

अक्रम मार्ग से एकावतारी

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करेंगे तो नया चार्ज नहीं होगा?

दादाश्री : आत्मा खुद कर्ता बने तभी कर्म बंधेंगे, वर्ना इस ज्ञान में तो प्रतिक्रमण होते ही नहीं। परंतु यह तो चौथी कक्षावाले को ग्रेज्युएट बनाते हैं, तो फिर बीच की कक्षाओं का क्या होगा? इसलिए इतना प्रतिक्रमण हमने बीच में रखा है।

इस 'अक्रम ज्ञान' को प्राप्त करने के बाद एक या दो जन्मों में हल आ जाए, ऐसा है। अब जन्म बाकी रहना या नहीं रहना, वह ध्यान पर आधारित

है। निरंतर सिर्फ शुक्लध्यान ही रहता हो तो दूसरा जन्म होगा ही नहीं, परंतु अक्रम मार्ग में शुक्लध्यान और धर्मध्यान दोनों रहते हैं। अंदर शुक्लध्यान रहता है और बाहर धर्मध्यान रहता है। धर्मध्यान किससे होता है?

'दादाजी' के कहे अनुसार आज्ञा का पालन करना होता है इसलिए। आज्ञा पालन करना, वह शुक्लध्यान का काम नहीं है, वह धर्मध्यान का काम है। इसलिए धर्मध्यान के कारण एक या दो जन्मों जितना चार्ज होता है।

[२५]

आराधना करने जैसा... और जानने जैसा...!

प्रश्नकर्ता : अब यह जो 'रियल' देखते हैं, तब 'रियल' के प्रति जो प्रेम उत्पन्न होना चाहिए, वह नहीं होता और 'रिलेटिव' उपचार स्वरूप हो गया है, तो यह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : यदि प्रेम होगा तो सामने द्वेष उत्पन्न होगा। प्रेम उत्पन्न करने की ज़रूरत नहीं है। आराधन करने जैसा, रमणता करने जैसा सिर्फ यह 'रियल' ही है! 'शुद्धात्मा' की रमणता अर्थात् निरंतर शुद्धात्मा का ध्यान रहे, वह! अब स्व-रमणता करनी है, और कुछ नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : 'रिलेटिव' को जानना है और 'रियल' को भी जानना है?

दादाश्री : नहीं, 'रियल' का आराधन करना है और 'रिलेटिव' को जानना है। जानने जैसा सिर्फ 'रिलेटिव' ही है। यह 'रियल' तो हमने आपको बता दिया है!

अब यह पूरा जगत् 'ज्ञेय' स्वरूप है और आप 'ज्ञाता' हो। आपको 'ज्ञायक' स्वभाव उत्पन्न हुआ है, फिर अब बाकी क्या रहा? 'ज्ञायक' स्वभाव उत्पन्न होने के बाद 'ज्ञेय' को देखते ही रहना है!

आपको अब शुद्धात्मा के प्रति प्रेम रखने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि आप उस रूप हो ही चुके हो। अब किसके साथ प्रेम करोगे? आपको ज्ञान-दर्शन और चारित्र शुरू हो गया है! नहीं तो 'देखने-जानने' पर राग-द्वेष होता! देखे-जाने उस पर राग-द्वेष नहीं हो, वह वीतराग चारित्र कहलाता है।

अब तो आपका चारित्र भी उच्च हो गया है। यह तो आश्चर्य हो गया है! परंतु अब उसे सँभालकर रखो तो अच्छा! कोई चोकलेट देकर

चूड़ियाँ नहीं छीन ले तो अच्छा। अब तो आपको ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप सबकुछ ही चलता रहेगा। परंतु तप का आपको पता नहीं रहता कि कहाँ पर तप हो रहा है! हमारी 'आज्ञा' ही ऐसी है कि तप करना ही पड़े!

हम मोटर में घूमते हैं परंतु किसी के साथ बात नहीं करते, क्योंकि हम उपयोग में ही रहते हैं। हम थोड़ा भी उपयोग नहीं चूकते!

इतना अच्छा विज्ञान हाथ में आने के बाद कौन छोड़े? पहले तो दो-पाँच मिनिट भी उपयोग में नहीं रहा जाता था। एक *गुंठाणा* सामायिक करनी हो तो अति-अति कष्टपूर्वक रह पाते थे और यह तो सहज ही आप जहाँ जाओ वहाँ उपयोगपूर्वक रहा जा सकता है, ऐसा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : वह समझ में आता है, दादा।

दादाश्री : अब ज़रा भूलों को रोको, यानी कि प्रतिक्रमण करो। आपको तय करके निकलना है कि आज ऐसा ही करना है! शुद्ध उपयोग में रहना है, ऐसा तय नहीं करोगे तो फिर उपयोग चूक जाओगे! और अपना विज्ञान तो बहुत अच्छा है। दूसरा कोई झंझट नहीं!

निजवस्तु रमणता

प्रश्नकर्ता : 'निजवस्तु' रमणता किस प्रकार से होती है?

दादाश्री : रमणता तो दो-चार प्रकार से होती है। और कोई रमणता नहीं आए तो 'मैं शुद्धात्मा हूँ', 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा घंटे-दो घंटे बोलेंगे तो भी चलेगा, ऐसे करते-करते रमणता आगे बढ़ेगी!

प्रश्नकर्ता : रमणता तो अलग-अलग तरह की होती हैं न?

दादाश्री : वह तो जिसे जैसा आए, वैसा वह करता है। स्थूल में हो तो, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', 'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलता रहे, या फिर किताब लेकर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा लिखता रहे। उससे क्या होता है, तो यह कि देह भी रमणता करता है, वाणी भी रमणता करती है, मन भी उसमें आ जाता है।

पहले स्थूल रूप से करे न, तब फिर *पुद्गल* रमणता छूटने लगती

है। ऐसे करते-करते सूक्ष्म होता है और यदि उसके गुण ही बोलता रहे, तो वह सच्ची रमणता कहलाती है। वह तुरंत ही, ऑन द मोमेन्ट फल देती है! खुद का सुख अनुभव में आता है।

प्रश्नकर्ता : जिस तरह इस *पुद्गल* के रस हैं, उसी तरह आत्मा के रस, आनंद प्रकट होना चाहिए न?

दादाश्री : ऐसा है कि आप अपरिग्रही किस आधार पर हो? 'अक्रम विज्ञान' के आधार पर! परंतु व्यवहार से अपरिग्रही नहीं हो, यानी कि जब तक अपरिग्रही दशा नहीं होती, तब तक अंतिम 'वस्तु' हाथ में नहीं आती!

प्रश्नकर्ता : तब तक सच्चा रस, आनंद प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : 'मैं अनंत ज्ञानवाला हूँ', 'मैं अनंत दर्शनवाला हूँ', 'मैं अनंत सुख का धाम हूँ', 'मैं अनंत शक्तिवाला हूँ'... बोलो, तो सच्चा रस उत्पन्न हो जाएगा! आत्मा तो खुद आनंदमय ही है, यानी वह 'वस्तु' सर्वरसमय ही है और वह खुद में होता ही है। परंतु खुद अपनी जागृति की कमी के कारण, वह कहाँ से आ रहा है, उसका पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* के रसों को दबाएँ, तो आत्मा के रस उत्पन्न होंगे?

दादाश्री : नहीं, दबाने का कोई अर्थ ही नहीं है। वे तो अपने आप ही फीके पड़ जाएँगे। आत्मा के गुण एक-एक घंटे तक बोलो तो तुरंत बहुत अधिक फल देंगे। यह तो नक़द फलवाली वस्तु है, या तो हर एक के भीतर 'शुद्धात्मा' देखते-देखते जाओ, तो भी आनंद आए ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले व्यक्ति में शुद्धात्मा देखें, तो सामनेवाले व्यक्ति को आनंद होना चाहिए न?

दादाश्री : नहीं होगा। क्योंकि उसकी वृत्तियाँ उस समय न जाने किसमें पड़ी होंगी! वह न जाने कौन से विचारों में पड़ा होगा! हाँ, उसमें

'शुद्धात्मा' देखने से आपको बहुत फायदा होगा। सामनेवाले को फायदा तो सिर्फ 'ज्ञानीपुरुष' ही कर सकते हैं!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने चार प्रकार की रमणता बताई। वे ज़रा फिर से बताइए न!

दादाश्री : कुछ लोग 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा बोलते हैं। कुछ लोग लिखते हैं कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' तो ऐसा करने से देह भी रमणता में आ गया, ऐसा कहा जाएगा। देह-वाणी और मन, तीनों ही लिखते समय हाज़िर रहते हैं, जबकि कुछ लोग, बाहर का व्यवहार चल रहा हो उसके बावजूद भी यदि मन से वास्तव में 'शुद्धात्मा' के गुणों में रमणा करते हैं, वे हैं। शुद्धात्मा के गुणों में रमणा करना जैसे कि, 'मैं अनंत ज्ञानवाला हूँ, मैं अनंत शक्तिवाला हूँ...' उसे सिद्धस्तुति कहते हैं। वह बहुत फलदायी है!

प्रश्नकर्ता : दादा, आप जिस प्रकार दूसरों के सुख के लिए प्रयत्न करते हैं और कितनों को भयंकर दुःखों की यातना में से परम सुखी बना देते हैं, तो हमें यदि वैसा बनना हो तो बन सकते हैं या नहीं?

दादाश्री : हाँ, बन सकते हो। परंतु आपकी उतनी सारी केपेसिटी हो जानी चाहिए। आप निमित्त रूप बन जाओ। उसके लिए मैं आपको तैयार कर रहा हूँ, वर्ना आप करने या बनने जाओगे, तो कुछ भी हो पाए ऐसा नहीं है!

प्रश्नकर्ता : तो निमित्त रूप बनने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : यही सब जो मैं बता रहा हूँ वह और निमित्त रूप बनने से पहले कुछ प्रकार का कचरा निकल जाना चाहिए।

उसमें किसी पर गुस्से होने का, किसी पर चिढ़ने का ऐसे सब हिंसकभाव नहीं होने चाहिए। हालाँकि वास्तव में आपमें ये हिंसकभाव नहीं हैं, ये आपके डिस्चार्ज हिंसकभाव हैं, परंतु जो डिस्चार्ज हिंसकभाव हैं, वे खत्म हो जाएँगे तब ये सब शक्तियाँ हैं, वे ओपन होंगी। डिस्चार्ज चोरियाँ,

डिस्चार्ज अब्रह्मचर्य, ये सभी डिस्चार्ज खाली हो जाएँगे, उसके बाद औरों के लिए निमित्त बनने की शक्ति उत्पन्न होगी! यह सब खाली हो जाए, तो आप परमात्मा ही बन गए! हमारा यह सब खाली हो गया है, इसीलिए तो हम निमित्त बने हैं!

प्रश्नकर्ता : यानी पहले हमें 'ज़ंग' खाली करने का काम करना है।

दादाश्री : पुरुषार्थ करने से सबकुछ होगा! पुरुष हुआ इसलिए पुरुषार्थ में आ सकता है, ऐसा सब हमने कर दिया है! अब आप अपनी तरह से जितना पुरुषार्थ करो, उतना आपका!

प्रश्नकर्ता : मैं मेरे शुद्धात्मा में रहूँ, परंतु साथ-साथ सामनेवाले के शुद्धात्मा के साथ संधान होना चाहिए न?

दादाश्री : सामनेवाले के शुद्धात्मा देखने से क्या फायदा है कि यह अपनी खुद की शुद्धि बढ़ाने के लिए है, न कि सामनेवाले व्यक्ति को लाभ पहुँचाने के लिए! खुद की शुद्ध दशा बढ़ाने के लिए सामनेवाले में शुद्धात्मा देखो, ताकि खुद की दशा बढ़ती जाए!

प्रश्नकर्ता : एक शुद्धात्मा का दूसरे शुद्धात्मा के साथ संधान होता है या नहीं?

दादाश्री : संधान कुछ भी नहीं है, यह स्वभाव है। यह 'लाइट', यह 'लाइट' और यह 'लाइट' - ये तीनों 'लाइटें' इकट्ठी करें फिर भी उनमें से हर एक लाइट का खुद का व्यक्तित्व तो अलग रहेगा। उसमें एक-दूसरे को कोई कुछ फ़ायदा नहीं पहुँचाता।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सामनेवाले के लिए हमें जो गलत भाव हैं, खराब भाव हैं, वे प्रतिक्रमण करने से कम हो जाएँगे क्या?

दादाश्री : अपने खराब भाव टूट जाते हैं, अपने खुद के लिए ही है, यह सब। सामनेवाले को अपने से साथ कोई लेना-देना नहीं है।

[२६]

शुद्धात्मा और कर्मरूपी पच्चड़

'स्वरूपज्ञान' प्राप्त होने के बाद फिर बाकी क्या बचा? सभी में शुद्धात्मा दिखता है, खुद में शुद्धात्मा दिखता है, तब फिर बाकी क्या बचा? कर्मरूपी पच्चड़ (मकान या फर्नीचर बनाते समय दो चीज़ों के बीच जगह रखने के लिए उपयोग किया जानेवाला बाँस का टुकड़ा; अड़चन; रुकावट)। खुद परमात्मा हो गए, सबकुछ जानते हैं, परंतु क्या होता है? तब कहे कि कर्मरूपी पच्चड़ बाधक हैं। कर्मरूपी पच्चड़ किससे निकलेगी? 'फाइल' का समभाव से *निकाल* करने से।

राग-द्वेष किए बिना आ पड़ी फाइलों का समभाव से *निकाल* करना, वही उसका, कर्मरूपी पच्चड़ को निकालने का उपाय है। पच्चड़ की सभी क्रियाएँ हमसे हो सकती हैं। अरे, यदि किसी को अपना हाथ भी लग जाए, फिर भी राग-द्वेष नहीं होते। 'फाइल' आने से पहले ही आपने निश्चित किया होता है कि इसका समभाव से *निकाल* करना है। खुद के पूर्व में लिखे हुए बहीखाते, वही कर्मरूपी पच्चड़ कहलाते हैं। कर्मरूपी पच्चड़ जिस समय घेर लेती है न, उस घड़ी बेकार ही आपको उलझाती रहती है। उसे आप 'जानो' कि आज इसने चंदूभाई को बहुत उलझाया। क्या आपको पता नहीं चलेगा?

सबकी कर्मरूपी पच्चड़ अलग-अलग होती हैं या एक ही प्रकार की? अलग-अलग होती हैं। क्योंकि सबके चेहरे अलग-अलग तरह के होते हैं। ये माँजी, इन बहन को सिखलाने जाएँ, तो वह कैसे हो सकेगा? दादाजी समझ जाते हैं कि माँजी में यह पच्चड़ है और बहन में यह पच्चड़ है। हमें तो उसका भी पता चल जाता है कि किस वजह से इन लोगों की कर्मरूपी पच्चड़ उत्पन्न हुई है। वह तो उस व्यक्ति का निरीक्षण करके

पहचाना जा सकता है कि इन भाई की पहलेवाली पच्चड़ कैसी है। अभी का निरीक्षण ऐसा कहता है कि यह सब गलत है, यह झंझट हमारा है ही नहीं। परंतु पहले की पच्चड़ों की मुहर लग चुकी है, उनका क्या होगा? उन्हें तो भोगे बिना चारा नहीं! वे पच्चड़ें कड़वे-मीठे रस चखाकर जाती हैं! घड़ीभर में मीठा रस देती हैं तो घड़ीभर में कड़वा रस देती हैं! मीठा रस पसंद है आपको?

जब तक मीठा रस पसंद है, तब तक कड़वे के प्रति नापसंदगी रहेगी। मीठा पसंद आना बंद हो जाएगा न, तो कड़वे के प्रति नापसंदगी भी बंद हो जाएगी। यह मीठा कब तक अच्छा लगता है? तब कहे, मोक्ष में ही सुख है, ऐसा पूरा-पूरा अभिप्राय अभी तक मज़बूत नहीं हुआ है। अभी तो अभिप्राय कच्चा रहता है, इसलिए ऐसा बोलते रहना कि, 'सच्चा सुख मोक्ष में ही है, और यह सब झूठा है, ऐसा है, वैसा है।' इस तरह से थोड़ी-थोड़ी देर में 'आपको' 'चंदूभाई' को समझाते रहना है। कोई रूम में नहीं हो, आप अकेले हों, तब उपदेश भी दे सकते हो कि, 'चंदूभाई! बैठो, बात को समझ जाओ न!' जब कोई नहीं हो तब आप ऐसा करोगे तो किसी को क्या पता चलेगा कि आप क्या नाटक कर रहे हो? कोई हो तब तो वह आपको क्या कहेगा कि यह घनचक्कर हो गया है कि क्या? 'अरे, घनचक्कर नहीं हुआ। घनचक्कर हो चुका था उसे मैं निकाल रहा हूँ!' तो भी वह तो ऐसा ही कहेगा कि, 'आप चंदूभाई के साथ बात करते हो तो आप कैसे इन्सान हो? आप खुद ही चंदूभाई नहीं हो?' इसलिए जब आप अकेले हों, तभी रूम बंद करके चंदूभाई से कहना, 'बैठो चंदूभाई, हम थोड़ी बातचीत करेंगे। आप ऐसा करते हो, वैसा करते हो, उसमें आपको क्या फायदा? हमारे साथ एकाकार हो जाओ न? हमारे पास तो अपार सुख है!' यह तो उन्हें जुदाई है, इसलिए आपको कहना पड़ता है। जिस तरह इस छोटे बच्चे को समझाना पड़ता है, कहना पड़ता है, वैसे ही 'चंदूभाई' को भी कहना पड़ता है, तभी सीधा चलेगा।

अरीसा सामायिक

आप कभी अरीसा (दर्पण) में देखकर चंदूभाई को डाँटते हो? हम

दर्पण के सामने चंदूभाई को बैठाकर कहें कि, 'आपने किताबें छपवाईं, ज्ञानदान किया, वह तो बहुत अच्छा काम किया, लेकिन इसके अलावा आप ऐसा करते हो, वैसा करते हो, वह किसलिए करते हो?' ऐसा खुद अपने आप से कहना पड़ेगा या नहीं? सिर्फ दादा ही कहते रहें, उसके बजाय आप भी कहो तो वे बहुत मानेंगे, आपका अधिक मानेंगे! मैं कहूँ तब आपके मन में क्या होगा? मेरे साथवाले पड़ोसी हैं 'वे' मुझे नहीं कहते, और ये दादा मुझे क्यों कह रहे हैं? अतः आपको खुद को ही उलाहना देना है।

औरों की सभी भूलें निकालनी आती हैं और खुद की एक भी भूल निकालनी नहीं आती। परंतु आपको तो भूलें नहीं निकालनी हैं, आपको तो चंदूभाई को डाँटना ही है ज़रा। आप तो खुद की सभी भूलें जान गए हो। इसलिए अब 'आपको' चंदूभाई को उलाहना देना है, वे नरम भी हैं, फिर 'मानी' भी उतने ही हैं, हर प्रकार से 'मानवाला' है। इसलिए उन्हें ज़रा पटाएँ तो बहुत काम हो जाए।

अब यह डाँटने का अभ्यास हमें कब करना चाहिए? अपने घर पर एक-दो लोग डाँटनेवाले रखें, परंतु वे सचमुच के डाँटनेवाले नहीं होंगे न? सचमुच के डाँटनेवाले होंगे तो काम का है, तभी परिणाम आएगा। नहीं तो झूठा बनावटी डाँटनेवाला होगा तो काम का परिणाम नहीं आएगा। हमें कोई डाँटनेवाला हो तो हमें उसका लाभ लेना चाहिए न? यह तो ऐसा सेट करना नहीं आता है न!

प्रश्नकर्ता : डाँटनेवाले होंगे तो हमें अच्छा नहीं लगेगा।

दादाश्री : वे पसंद नहीं हैं, परंतु रोज़-रोज़ डाँटनेवाले मिल गए हों, फिर तो हमें *निकाल* करना आना चाहिए न कि यह रोज़ का हो गया है, तो कैसे ठिकाना पड़ेगा? इसके बजाय तो आप अपनी 'गुफा' में घुस जाओ न?

अरीसा में *ठपका* सामायिक

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि, 'मैं जीव नहीं हूँ, परंतु शिव हूँ।' लेकिन वह अलग नहीं होता।

दादाश्री : वह उसका भाव छोड़ता नहीं न? वह अपना हक़ छोड़ेगा क्या? इसलिए हमें उसे समझा-समझाकर, पटा-पटाकर काम लेना पड़ेगा। क्योंकि वह तो भोला है। *पुद्गल* का स्वभाव कैसा है? भोला है। तो उसे इस प्रकार कलापूर्वक करेंगे तो वह पकड़ में आ जाएगा। जीव और शिव भाव दोनों अलग ही हैं न? अभी जीवभाव में आएगा, उस घड़ी आलूबड़ा वगैरह सब खाएगा और शिवभाव में आएगा तब दर्शन करेगा!

प्रश्नकर्ता : परंतु जीव का मन स्वतंत्र है?

दादाश्री : बिल्कुल स्वतंत्र है। मन आपका विरोध करे, ऐसा आपने देखा है या नहीं? अरे, 'मेरा' मन होगा तो, वह मेरा विरोधी किस तरह बनेगा? इस तरह विरोध करे, तब पता नहीं चल जाएगा कि वह स्वतंत्र है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : वाणी पर कंट्रोल नहीं है, इसलिए मन पर भी कंट्रोल नहीं है।

दादाश्री : जो विरोध करे उस पर हमारा कंट्रोल नहीं है।

पहले तो आप, 'मैं जीव हूँ' ऐसा मानते थे। अब वह मान्यता टूट गई है और 'मैं शिव हूँ' ऐसा पता चल गया। परंतु जीव कभी उसका भाव छोड़ेगा नहीं, उसका हक़-वक़ कुछ भी छोड़ेगा नहीं। परंतु उसे यदि पटाएँ तो वह सबकुछ छोड़ दे ऐसा है। जिस प्रकार कुसंग के प्रभाव से कुसंगी हो जाता है और सत्संग के प्रभाव से सत्संगी हो जाता है, उसी तरह उसे समझाएँ तो वह सबकुछ छोड़ दे ऐसा समझदार है। अब आपको क्या करना है कि आपको चंदूभाई को बैठाकर उनके साथ बातचीत करनी पड़ेगी कि आप सड़सठ साल की उम्र में रोज़ सत्संग में आते हो, उसका बहुत ध्यान रखते हो, वह बहुत अच्छा काम करते हो! परंतु साथ ही साथ यह भी समझाना, और सलाह देना कि, 'देह का इतना ध्यान क्यों रखते हो? देह में ऐसा होता है, वह भले ही हो। आप हमारे साथ यों टेबल पर आ जाओ न! हमारे पास अपार सुख है।' ऐसा आपको चंदूभाई से कहना चाहिए। चंदूभाई को ऐसे दर्पण के सामने बैठाया हो तो वह आपको एक्ज़ेक्ट दिखेंगे या नहीं दिखेंगे?

प्रश्नकर्ता : अंदर बातचीत तो मेरी घंटों तक चलती है।

दादाश्री : परंतु अंदर बातचीत करने में और अन्य फोन ले लेते हैं, इसलिए उन्हें सामने बैठाकर ऊँची आवाज़ में बातचीत करनी चाहिए, ताकि अन्य कोई फोन ले ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : खुद को सामने किस तरह बैठाएँ?

दादाश्री : तू 'चंदूभाई' को सामने बैठाकर डाँट रहा हो तो 'चंदूभाई' बहुत समझदार बन जाएँगे। तू खुद ही डाँटे कि, 'चंदूभाई, ऐसा तो होता होगा? यह आपने क्या लगा रखा है? और कर रहे हो तो अब सीधा करो न?' ऐसा आप कहो तो क्या बुरा है? कोई और झिड़के तो अच्छा लगेगा? इसलिए हम आपको चंदूभाई को डाँटने का कहते हैं। नहीं तो बिल्कुल अंधेर ही चलता रहेगा! यह *पुद्गल* क्या कहता है कि 'आप तो 'शुद्धात्मा' हो गए, परंतु हमारा क्या?' वह दावा दायर करता है, वह भी हक़दार है। वह भी इच्छा रखता है कि 'हमें भी कुछ चाहिए।' इसलिए उसे पटा लेना चाहिए। वह तो भोला है। भोला इसलिए है कि मूर्ख की संगत मिले तो मूर्ख बन जाता है और समझदार की संगत मिले तो समझदार बन जाता है। चोर की संगत मिले तो चोर बन जाता है! जैसा संग वैसा रंग! परंतु वह खुद का हक़ छोड़ दे, ऐसा नहीं है।

तुझे 'चंदूभाई' को दर्पण के सामने बैठाकर ऐसा प्रयोग करना चाहिए। दर्पण में तो मुँह वगैरह सब दिखता है। फिर आप 'चंदूभाई' से कहें 'आपने ऐसा क्यों किया? आपको ऐसा नहीं करना है। पत्नी के साथ मतभेद क्यों करते हो? तो फिर आपने शादी क्यों की? शादी करने के बाद ऐसा क्यों करते हो?' ऐसा सब कहना पड़ेगा। ऐसे दर्पण में देखकर उलाहना दोगे, एक-एक घंटा, तो बहुत शक्ति बढ़ जाएगी। यह बहुत बड़ी सामायिक कहलाती है। आपको चंदूभाई की सभी भूलों का पता चलता है न? जितनी भूलें दिखें उतनी आपने चंदूभाई को दपर्ण के सामने एक घंटे तक बैठाकर कह दीं तो वह सब से बड़ी सामायिक!

प्रश्नकर्ता : हम दर्पण में न करें और ऐसे ही मन के साथ अकेले-अकेले बात करें, तब वह नहीं हो सकता?

दादाश्री : नहीं, वह नहीं होगा। वह तो दर्पण में आपको चंदूभाई दिखने चाहिए। अकेले-अकेले मन में करोगे तो नहीं आ पाएगा। अकेले-अकेले करना, वह तो 'ज्ञानीपुरुष' का काम। परंतु आपको तो ऐसे ही बालभाषा में सिखलाना पड़ेगा न? और यह दर्पण है तो अच्छा है, नहीं तो लाख रुपये का दर्पण खरीदकर लाना पड़ता। ये तो सस्ते दर्पण हैं! ऋषभदेव भगवान के समय में अकेले सिर्फ भरत चक्रवर्ती ने ही शीशमहल बनवाया था! और अभी तो इतने बड़े-बड़े दर्पण सब जगह दिखते हैं!

यह सब परमाणु की थ्योरी है। परंतु यदि दर्पण के सामने बैठाकर करो न तो बहुत काम निकल जाए, ऐसा है। परंतु कोई करता नहीं है न? हम कहें तब एक-दो बार करता है और फिर वापस भूल जाता है!

अरीसाभवन में केवलज्ञान!

भरत राजा को, ऋषभदेव भगवान ने 'अक्रम ज्ञान' दिया और अंत में उन्होंने अरीसाभवन (शीशमहल) का आसरा लिया, तब जाकर उनका काम हुआ। अरीसाभवन में अंगूठी निकल गई थी, उँगली को खाली देखी तब उन्हें हुआ कि सभी उँगलियाँ ऐसी दिखती हैं और यह उँगली क्यों ऐसी दिख रही है? तब पता चला कि अंगूठी निकल गई है, इसलिए। अंगूठी के कारण उँगली कितनी सुंदर दिख रही थी, फिर चला अंदर तूफान! वह ठेठ 'केवलज्ञान' होने तक चला! विचारणा में उतर गए कि अंगूठी के आधार पर उँगली अच्छी दिख रही थी? मेरे कारण नहीं? तो कहा कि तेरे कारण कैसा? वह फिर 'यह नहीं है मेरा, नहीं है मेरा, नहीं है मेरा' ऐसे करते-करते 'केवलज्ञान' प्राप्त किया! अर्थात् हमें अरीसाभवन का लाभ लेना चाहिए। अपना 'अक्रम विज्ञान' है। जो कोई इसका लाभ लेगा, वह काम निकाल लेगा, परंतु इसका किसी को पता ही नहीं चलता न? भले ही आत्मा नहीं जानता हो, फिर भी अरीसाभवन की सामायिक ज़बरदस्त हो सकती है।

प्रश्नकर्ता : कुछ लोगों को आप ज्ञान देते हैं, उनमें से कुछ को तो तुरंत ही फिट हो जाता है और कईंयों को कितनी ही माथापच्ची करते हैं तो भी वह फिट नहीं होता। तो क्या उनमें शक्ति कम होती होगी?

दादाश्री : वह शक्ति नहीं है। वे तो कर्म की पच्चड़ें टेढ़ी-मेढ़ी लाए होते हैं, तो कुछ लोगों की पच्चड़ें सीधी होती हैं। वे सीधी पच्चड़वाले तो खुद ही खींच लेते हैं और टेढ़ी पच्चड़वाले को अंदर जाने के बाद टेढ़ा होता है, वे ऐसे खींचे तो भी वह निकलता नहीं है। आंकड़े टेढ़े होते हैं। हमारी पच्चड़ें सीधी थीं इसलिए झटपट निकल गईं। हमें टेढ़ा नहीं आता। हमारा तो एकदम सीधा-सीधा और खुल्लमखुल्ला! और आप तो कुछ टेढ़ा सीखे होंगे। हो तो आप अच्छे घर के, परंतु बचपन में टेढ़ापन घुस गया तो क्या हो? भीतर टेढ़ी कीलें हों तो खींचते हुए ज़ोर आएगा और देर लगेगी! स्त्री जाति भीतर थोड़ा कपट रखती है, उनमें भीतर का साफ नहीं होता, कपट के कारण ही तो स्त्री जन्म मिला है। अब 'स्वरूपज्ञान' की प्राप्ति के बाद स्त्री जैसा कुछ रहा नहीं न? परंतु कीलें ज़रूर टेढ़ी हैं, उन्हें निकालने में ज़रा देर लगेगी न! वे कीलें सीधी होतीं तो फिर देर ही नहीं लगती न! पुरुष ज़रा भोले होते हैं। उसे स्त्री ज़रा समझाए तो वह समझ जाता है। और स्त्री भी समझ जाती है, कि भाई समझ गए और अभी जाएँगे बाहर। पुरुषों में भोलापन होता है। थोड़ा सा कपट किया था, तो मल्लिनाथ को तीर्थंकर के जन्म में स्त्री बनना पड़ा था! एक थोड़ा सा कपट किया था, फिर भी! कपट छोड़ता नहीं न! फिर भी अब स्वरूपज्ञान होने के बाद अपने में स्त्रीपना और पुरुषपना नहीं रहा। 'हम' 'शुद्धात्मा' हो गए!

कुसंग का रंग...

खुद की इच्छा नहीं हो फिर भी लोग बाहर जाते हैं और कुसंग में पड़ ही जाते हैं, कुसंग लगे बगैर रहता ही नहीं। कई लोग कहते हैं कि मैं शराबी के साथ घूमता हूँ, परंतु मैं शराब पीऊँगा ही नहीं। लेकिन तू घूम रहा है, यानी तभी से तू शराब पीने लगेगा। एक दिन संगत अपना स्वभाव दिखाए बिना रहेगी ही नहीं। इसलिए संगत छोड़।

वास्तव में आपको शुद्धात्मा की प्रतीति तो हो चुकी है, परंतु हुआ क्या है कि सच्चे अनुभव का जो स्वाद है, उसे नहीं आने देता।

आपका सही टेस्ट हुआ कब कहलाएगा कि घर में सामनेवाला व्यक्ति उग्र हो जाए और आपमें भी उग्रता उत्पन्न हो जाए तो समझना कि आपमें कमी है।

[२७]

अटकण से लटकण और लटकण से भटकण...

दादाश्री : कभी आपको *गलगलिया* (वृत्तियों को गुदगुदी होना) हो चुके हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : रविवार आए और रेस का टाइम होता है, तब अंदर *गलगलिया* हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, क्यों शनिवार को नहीं और रविवार को ही वैसा होता है? द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव, चारों ही इकट्ठे हो जाएँ तभी *गलगलिया* होता है।

अनंत काल से लटके हुए हैं, सब अपनी-अपनी *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) से लटके हैं! अनादि से क्यों लटक पड़ा है? अभी तक उसका *निकाल* क्यों नहीं आता? तब क्या कहते हैं कि खुद को *अटकण* पड़ी होती है, हर एक में कुछ न कुछ अलग-अलग तरह की *अटकण* होती है, उसके आधार पर लटका हुआ है!

यह *अटकण* आपको समझ में आई? ये घोड़ागाड़ी जा रही हो, घोड़ा मज़बूत हो, और रास्ते में कोई कब्र हो, और उस कब्र के ऊपर हरा कपड़ा ढँका हुआ हो तो, घोड़ा उसे देखते ही खड़ा रह जाता है। वह किसलिए? क्योंकि कब्र के ऊपर जो हरा कपड़ा देखता है, वह नई तरह का लगा। इसलिए घबरा जाता है, फिर उसे चाहे जितना मारे, तब भी वह नहीं हिलता। फिर भले ही मालिक मारकर, समझा-बुझाकर, आँखों पर हाथ रखकर ले जाए, वह बात अलग है। परंतु दूसरे दिन वापस वहीं पर अटक जाता है, क्योंकि *अटकण* पड़ गई है, उस समय वह सान-भान-ज्ञान सबकुछ भूल जाता है। उसे अगर मारने जाओ तो वह घोड़ागाड़ी को भी उलट दे!

इसी तरह मनुष्य किसी जगह पर मूर्छित हो गया, किसी चीज़ में मूर्छित हो गया यानी कि *अटकण* पड़ चुकी होती है। उसकी वह *अटकण* जाती नहीं, यानी किसी भी जगह पर मूर्छित नहीं हो, ऐसा व्यक्ति भी *अटकण* की जगह आते ही वहाँ पर वह मूर्छित हो जाता है। ज्ञान, भान सबकुछ खो देता है, और उससे कुछ उल्टा हो जाता है। इसलिए कविराज कहते हैं :

'अटकणथी लटकण, लटकणथी भटकण,
भटकणनी खटकण पर, छांटो चरण-रजकण।'

अब भटकन में से छूटना हो तो छिड़को 'चरण-रजकण'! चरण-रजकण छिड़ककर इसका हल ले आओ अब, ताकि फिर से उस *अटकण* का भय नहीं रहे।

अटकण, अनादि की!

यानी हर एक को *अटकण* पड़ी हुई है, उसी से ये सब अटके हुए हैं और कौन सी *अटकण* पड़ी हुई है, अब उसे ढूँढ निकालना चाहिए। कब्रिस्तान के सामने *अटकण* होती है या कहाँ पर *अटकण* होती है? उसे ढूँढ निकालना चाहिए। अनंत जन्मों की भटकन है। वह सिर्फ *अटकण* ही है, और कुछ नहीं! *अटकण* अर्थात् मूर्छित हो जाना! स्वभान खो देना! सभी जगह पर *अटकण* नहीं होती, घर से निकला वह कहीं सभी जगह मारपीट नहीं करता, राग-द्वेष नहीं करता, परंतु उसे *अटकण* में राग-द्वेष है! इस घोड़े का उदाहरण तो आपको समझाने के लिए बता रहा हूँ! खुद की *अटकण* ढूँढ निकालेगा, तब फिर पता चलेगा कि 'कहाँ पर मूर्छित हो गया हूँ, मूर्छित होने की जगह कहाँ पर है?'

प्रश्नकर्ता : यह *अटकण* यानी पकड़?

दादाश्री : नहीं, पकड़ नहीं। पकड़ तो आग्रह में आता है। *अटकण* से तो मूर्छित हो जाता है। ज्ञान, भान सभीकुछ खो देता है। जब कि आग्रह में ज्ञान-भान सबकुछ होता है!

मनुष्य मात्र में कमज़ोरी तो होती ही है न? इन कमज़ोरी के गुणों के कारण मनुष्यपन कायम है। मनुष्य की कमज़ोरी जाए तब मुक्त हो जाएगा। परंतु यह कमज़ोरी जाए ऐसी नहीं है। उसे कौन निकाले? 'ज्ञानीपुरुष' के अलावा और कोई भी कमज़ोरी नहीं निकाल सकता न! उस कमज़ोरी का 'ज्ञानीपुरुष' खुद विवेचन कर देते हैं और उसे निकाल देते हैं। 'ज्ञानीपुरुष' तो, घोड़ा भले ही कितना भी अटक गया हो तो भी उसे आगे ले जाते हैं। कान में फूंक मारकर, समझाकर, मंत्र पढ़कर भी आगे ले जाते हैं। वर्ना मार डालो फिर भी घोड़ा नहीं खिसकता। घोड़ा तो क्या, अरे बड़े-बड़े हाथी हों, वे भी जहाँ पर *अटकण* आ जाए, वहाँ पर हिलते नहीं।

प्रश्नकर्ता : परंतु भगवन, पिछले जन्म के कुछ तीव्र संस्कार होंगे कि जिससे हम आपके चरणों में आए हैं?

दादाश्री : संस्कार के आधार पर ही तो यह मिलता है, लेकिन इसे छुड़वाता कौन है? *अटकण* छुड़वा देती है, *अटकण* जुदा कर देती है! इसलिए *अटकण* को पहचान लेना कि *अटकण* कहाँ पर है? फिर वहाँ पर सावधान और सावधान ही रहना। तू *अटकण* को पहचान गया है? चारों ओर से पहचान गया है? ऐसे पीछे से जा रहा हो तो भी पता चले कि यह *अटकण* चली अपनी! हाँ, इतना अधिक सावधान रहना चाहिए!

अटकण तो ज्ञानी ही ढूँढ सकते हैं, और कोई नहीं ढूँढ सकता। भोले मनुष्य की *अटकण* भोली होती है, वह जल्दी छूट जाती है, और कपटी मनुष्य की*अटकण* कपटी होती हैं और वह तो बहुत विकट होती हैं!

अटकण से अटका अनंत सुख

अब बिल्कुल 'क्लीयरन्स' अंदर हो जाना चाहिए। यह 'अक्रम ज्ञान' मिला और खुद को निरंतर सुख में रहना हो तो रहा जा सकता है, ऐसा हमारे पास 'ज्ञान' है। इसलिए अब किस तरह से *अटकण* से छूटे, किस तरह उससे हम छूट जाएँ, ऐसा हल ले आना। उसके लिए आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करके भी हल ले आना चाहिए। पहले सुख

नहीं था, तब तक मनुष्य *अटकण* में ही पड़ेगा न? परंतु शाश्वत सुख उत्पन्न होने के बाद फिर किसलिए? सच्चा सुख किसलिए उत्पन्न नहीं होता? वह इस *अटकण* के कारण नहीं आता!

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, चौबीसों घंटे आत्मा का अनुभव, लक्ष्य और प्रतीति रहती हो, तो फिर *अटकण* का प्रश्न रहेगा क्या?

दादाश्री : नहीं, ऐसा सभी को रहता है, परंतु *अटकण* तो अंदर होती है न, *अटकण* तो ढूँढ निकालनी चाहिए कि *अटकण* कहाँ पर है?

अटकण जाने के बाद जगत् आप पर आफ़रीन होता जाएगा। आपको देखते ही जगत् के जीवों को आनंद होता जाएगा। यह तो *अटकण* के कारण आनंद नहीं होता।

यह दर्पण है, वह एक ही व्यक्ति का चेहरा दिखाता है या सभी के चेहरे दिखाता है? जो कोई चेहरा सामने रखे, उसे दिखाता है। वैसा ही, दर्पण जैसा क्लीएरन्स हो जाए, तब काम का!

इस *अटकण* के कारण लोगों को अट्रेक्शन नहीं होता, अट्रेक्शन होना चाहिए, फिर उसका शब्द ही 'ब्रह्मवाक्य' कहलाता है। इसलिए कहाँ पर *अटकण* है, वह ढूँढ निकालो। अनुभव-लक्ष्य और प्रतीति तो अन्य सभी को भी रहती है, परंतु अट्रेक्शन किसलिए नहीं बढ़ता? अट्रेक्शन होना तो चाहिए न जगत् में? नक़द अर्थात् नक़द। वह उधार तो नहीं दिखना चाहिए न? यानी भीतर में कारण ढूँढ निकालने चाहिए। *अटकण* तो, दस दिनों तक होटल नहीं दिखे तब तक कुछ भी नहीं होता। परंतु होटल दिखा तो घुस जाता है! संयोग मिले कि *गलगलिया* हो जाते हैं!

आपने एक व्यक्ति की शराब छुड़वाई हो, तो वह फिर सत्संग में बैठे तो शांति में रहता है। कई दिनों तक वह शराब को भूल जाता है, फिर किसी दिन आपके साथ घूमने गया और दुकान का बोर्ड पढ़ा कि, 'दारू ची दुकान' कि तुरंत उसके अंदर सबकुछ बदल जाता है, उसे अंदर *गलगलिया* हो जाता है। तब वह आपसे क्या कहेगा, ''चंदूभाई, मैं 'मेकवोटर' करके आता हूँ।' अरे मुए, रास्ते में मेकवोटर करने की बात

करता है? तब हम समझ जाते हैं कि इसे *गलगलिया* हो गया है। कुछ न कुछ समझाकर वह दुकान में पीछे से घुस जाता है और ज़रा सी गटक लेता है, तभी छोड़ता है!

इस *अटकण* के बारे में आपको समझ में आया न? वह *अटकण* हमें मूर्छित कर देती है। इसलिए ज्ञान-दर्शन सभी कुछ उतने टाइम तक, पाँच-दस मिनिट तक पूरा मूर्छित कर देती है।

जोखमी, निकाचित कर्म या *अटकण*?

प्रश्नकर्ता : जिसे निकाचित कर्म कहते हैं, वही *अटकण* है न?

दादाश्री : *अटकण* तो निकाचित कर्म से भी बहुत भारी होती है। निकाचित कर्म तो छोटा शब्द है। निकाचित कर्म यानी कि उस कर्म को भोगना ही पड़ता है। *अटकण* को भोगना ही पड़ता है, उतना ही नहीं परंतु आगे के लिए भी भोगने का बीज डाल देती है। ज्ञान हो फिर भी निकाचित कर्म को तो भोगे बिना चारा नहीं है। आपकी कोई इच्छा नहीं होती भोगने की, फिर भी भोगना ही पड़ता है। यानी इन निकाचित कर्म में हर्ज नहीं है। निकाचित कर्म तो एक प्रकार का दंड है हमारे लिए। जितना दंड होना है वह हो जाता है। परंतु इस *अटकण* की तो बहुत परेशानी है।

प्रश्नकर्ता : वेदान्त में क्रियमाण कहते हैं, वही है न?

दादाश्री : क्रियमाण नहीं, कुछ कर्म ऐसे हैं कि सोचने मात्र से कर्म छूट जाते हैं, ध्यान से कर्म छूट जाते हैं और कुछ कर्म ऐसे हैं कि नहीं भोगना हो, इच्छा नहीं हो फिर भी भोगने ही पड़ते हैं! उन्हें निकाचित कर्म कहा जाता है। उन्हें भारी कर्म कहा जाता है। और यह *अटकण* तो ऐसी है कि वह दूसरा तूफ़ान खड़ा कर देती है! यानी इस *अटकण* का तो बहुत सोच-समझकर रास्ता निकालना चाहिए। इसलिए ये लड़के छोटी उम्र में ही पुरुषार्थ में लग पड़े हैं कि किस तरह से यह *अटकण* टूटे?

अटकण को छेदनेवाला - पराक्रम भाव

प्रश्नकर्ता : *अटकण* को तोड़ने के लिए उसके पीछे पड़े तो ज़बरदस्त पराक्रमभाव उत्पन्न हो जाएगा न?

दादाश्री : वह पराक्रम होगा, तभी *अटकण* के पीछे पड़ा जा सकेगा। *अटकण* के पीछे पड़ते हैं, वही पराक्रम कहलाता है। पराक्रम के बिना *अटकण* टूट सके, ऐसा नहीं है। यह 'पराक्रमी पुरुष' का काम है। यह आपको ज्ञान दिया है, तो पराक्रम हो सकता है!

निकाचित तो भोगना ही पड़ेगा। उसमें कुछ चल सके, ऐसा नहीं है। परंतु उसमें दूसरा तूफ़ान खड़ा नहीं होगा, क्योंकि उसमें खुद की इच्छा जैसा कुछ नहीं रहता। आम मिला तो खा लेगा, नहीं मिला तो कोई बात नहीं। आम भोगना ही पड़ता है, खाना ही पड़ता है। भोगना नहीं है फिर भी भोगना पड़ता है, क्योंकि वह *पुद्गल* स्पर्शना है, उसमें किसी का कुछ चलता नहीं। परंतु *अटकण* में तो अंदर छुपी-छुपी भी, लेकिन इच्छा रही हुई है! इसलिए इस काल में इन 'ज्ञानीपुरुष' की हाज़िरी में रहकर, खुद की जो *अटकण* हो उसे जड़मूल से उखाड़कर एक ओर रख देना। और उसे एक ओर रखा जा सके, ऐसा है। इन 'ज्ञानीपुरुष' की हाज़िरी से सभी रोग मिट जाते हैं! तमाम रोगों को मिटाए, वह 'ज्ञानीपुरुष' की हाज़िरी! आपको *अटकण* प्रिय है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, *अटकण* का पता चलने के बाद तो (आँख में) कण की तरह चुभेगी। फिर कहाँ से वह प्रिय होगी?

दादाश्री : हाँ, चुभेगी! उसे 'मायाशल्य' कहते हैं!

प्रश्नकर्ता : एक तरफ *अटकण* चल रही होती है और उसका ख़्याल रहता है, दूसरी तरफ एक मन को अच्छा लगता है और एक मन को अच्छा नहीं लगता, ऐसा सब साथ में होता है।

दादाश्री : हाँ, परंतु *अटकण* यानी *अटकण*। उसे उखाड़कर एक ओर रख देना। फिर से बीज के रूप में उगे नहीं, इस तरह उसकी मुख्य जड़ निकाल देनी पड़ेगी और पराक्रम से वह हो सकेगा, ऐसा है!

प्रश्नकर्ता : यह *अटकण* जब आती है, तब 'दादा' भी हाज़िर होते हैं? हम कहें कि दादा, देखिए यह सब आ रहा है, तो?

दादाश्री : *अटकण* तो मूर्छित कर देती है। उस समय 'दादा' लक्ष्य में नहीं रहते, *अटकण* तो दादा भी भुलवा देती है। आत्मा भुला देती है और मूर्छित कर देती है हमें! जागृति ही नहीं रहती। 'दादा' हाज़िर रहें तो उसे *अटकण* नहीं कहते, परंतु निकाचित कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : *अटकण* का बाद में पता चले, तो उसका क्या उपाय करना चाहिए?

दादाश्री : वह मूर्छा है, वैसा हमें देख लेना चाहिए। उसकी सामायिक करनी पड़ेगी। यहाँ पर ये सब करते हैं न, उस तरह सामायिक में स्टेज पर रखना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : छोटे बच्चे को बेट-बॉल नहीं मिले तब तक मन में वही रहता है, हंगामा मचाए तो वह उसकी *अटकण* कहलाएगी?

दादाश्री : नहीं, वह उसकी *अटकण* नहीं कहलाएगी। *अटकण* तो अनादि से जिससे भटका है, वह है! ये बेट-बॉल तो उतने समय के लिए ही हैं, वह तो पाँच-सात साल की उम्र है, तभी तक वह रहेगा! वह बाल अवस्था है, तभी तक उसे वह रहेगा। और फिर व्यापार में लग जाए तो उसे फिर इसके लिए कुछ भी नहीं रहेगा। और *अटकण* तो निरंतर रहती है, वह पंद्रह वर्ष से लेकर बूढ़ा हो जाए तब तक *अटकण* रहती है!

प्रश्नकर्ता : पुरुषार्थ से, पराक्रम से *अटकण* का *निकाल* हो सकता है न?

दादाश्री : हाँ, सबकुछ हो सकता है। इसीलिए तो हम चेतावनी देते हैं कि जहाँ पर आत्मा प्राप्त हुआ, जहाँ पर पुरुष बने हो, पुरुषार्थ है, पराक्रम किया जा सके वैसा है, तो अब काम निकाल लो। फिर से अटकना जोखिमवाला है, वहाँ पर हल निकाल लो!

खुद का किसी प्रकार का सुख नहीं हो तब कैसी भी *अटकण* पड़

जाती है, परंतु अब खुद का स्वयंसुख उत्पन्न हुआ है, अब आपको अन्य किसी सुख के अवलंबन की ज़रूरत नहीं है। इसलिए उन सुखों को एक ओर रख देना। यह सुख और वह सुख दोनों एक साथ उत्पन्न नहीं होते। इसलिए *अटकण* को ढूँढ निकालो।

अनुभव, लक्ष्य और प्रतीति तो सभी को रहती है। वह पुरुषार्थ का फल नहीं है। वह तो 'दादाई' कृपा का फल है। अब पुरुषार्थ और पराक्रम कब कहलाएगा? जिससे आप लटके हो वह लटकानेवाली डोरी टूट जाए तब! अब, पराक्रम आपको करना है। यह तो आपको जो प्राप्त हो गया है, वह आपके पुण्य के आधार पर ज्ञानी की कृपा प्राप्त हुई और कृपा के आधार पर यह प्राप्त हुआ है!

आपकी यह *अटकण* छूटे तो आपकी बात सभी को इतनी पसंद आएगी! बात गलत नहीं होतीं, बातें क्यों अच्छी नहीं निकलती, तो कहें '*अटकण* के कारण!' *अटकण* से वाणी में खिंचाव रहता है! *अटकण* से मुक्त हास्य भी उत्पन्न नहीं होता। *अटकण* के खत्म होने के बाद वाणी अच्छी निकलेगी, हास्य अच्छा निकलेगा। इसलिए सभी *अटकण* निकालकर जगत् का कल्याण करो!

ये तीन चीज़ें मनोहर हो जानी चाहिए - वाणी, वर्तन और विनय। ये तीन चीज़ें अपने में मनोहर उत्पन्न हुई, यानी कि सामनेवाले के मन का हरण करे वैसे हो गए तो समझना कि 'दादा' जैसे होने लगे हैं। फिर परेशानी नहीं है। फिर सेफसाइड है! यानी कि यह वाणी, वर्तन और विनय, ये प्रत्यक्ष लक्षण दिखने चाहिए। लक्षण के बिना तो सच्ची वस्तु पहचान नहीं पाते न?

अटकण का अंत लाओ

नाश्ता-वाश्ता करो, वह तो करना ही होता है। नाश्ते के लिए 'दादा' ने आपत्ति नहीं उठाई। परंतु किस आधार पर लटके थे, उस *अटकण* का पता लगाओ और अभी भी वह तार हो तो मुझे कहो और नहीं कहा जा सके ऐसा हो तो आप उसे ढूँढकर उसके पीछे पराक्रम करोगे तो भी

चलेगा। उसके लिए यहाँ पर विधि करके मन में माँग करो, तो भीतर शक्ति उत्पन्न हो जाएगी। और कुछ है नहीं!

निकाचित से तो बच ही नहीं सकते। निकाचित का अर्थ ऐसा है कि अपनी इच्छा न हो, बिल्कुल-बिल्कुल भी इच्छा नहीं हो, फिर भी भोगना ही पड़ता है। खुद के मन में 'मुझे अब कुछ नहीं चाहिए', ऐसा हो तो भी कर्म उसे उठाकर ले जाते हैं, इसका नाम निकाचित। जैसे भाव से बंधन किया था, वैसे भाव से छूटा! इसलिए निकाचित कर्म की भी आपत्ति नहीं है। निकाचित तो, यह संसार सारा निकाचित ही है। अब आपको स्त्री की इच्छा नहीं हो या स्त्री को पुरुष की इच्छा नहीं हो, फिर भी भोगना ही पड़ता है, यह निकाचित कर्म ही कहलाता है, परंतु *अटकण* का हर्ज है! अभी भी कहाँ पर उसे *गलगलिया* हो जाता है, वह देखने की ज़रूरत है! जहाँ *गलगलिया* हो, वहाँ पर वह मूर्छित हो जाता है! *गलगलिया* शब्द समझ में आया आपको?

प्रश्नकर्ता : शब्द सुना हुआ है, परंतु एक्ज़ेक्ट समझ में नहीं आया।

दादाश्री : एक खानदानी लड़के को नाटक में नाच करने की आदत पड़ी हो, उससे हम वह छुड़वा दें और दूसरे किसी परिचय में रखें, फिर वर्ष-दो वर्ष तक कोई परेशानी नहीं होती, परंतु जब वह नाटक के थियेटर के आगे से जा रहा हो और वह बोर्ड पढ़े तो उसे *गलगलिया* हो जाता है। पिछला अज्ञान सब घेर लेता है। उसे मूर्छित कर देता है और चाहे कैसे भी, झूठ बोलकर भी वह अंदर घुस जाता है। उस घड़ी क्या झूठ बोलना, उसका कुछ ठिकाना नहीं रहता।

अर्थात् जब तक आत्मा का सुख नहीं हो तब तक किसी न किसी सुख में डूबा हुआ ही रहता है। परंतु आत्मज्ञान के बाद, आपका सुख कितना सुंदर रहता है! जैसा रखना हो वैसा रहे, समाधि में रहा जा सके, ऐसा है। यानी पुरानी सभी वस्तुएँ खत्म की जा सकें, ऐसा है। अपना 'ज्ञान' ऐसा है कि यदि पाँच 'आज्ञा' में निरंतर रहे तो महावीर भगवान जैसी स्थिति रह सकती है। वैसे रह नहीं पाते, उसका क्या कारण है? पूर्वकर्म के उदय के धक्के लगते हैं। हमें जाना हो उत्तर में परंतु नाव दक्षिण की ओर जाती है। फिर

भी हमें उसे जानना है। लक्ष्य में होता है कि हमें जाना है उत्तर में, लेकिन ले जा रही है दक्षिण में। वह लक्ष्य कभी भी चूकना नहीं चाहिए। परंतु रास्ते में कोई दूसरा नाव वाला मिले और शीशियाँ दिखाए तो अंदर *गलगलिया* हो जाता है, उसकी परेशानी है। फिर वह उत्तर दिशा को बिल्कुल भूल जाता है और वहीं पर मुकाम कर लेता है। यह सब *अटकण* कहलाती है।

इसलिए हम कहते हैं कि सब तरफ से आप छूट जाओ। अब 'पुरुष' बने हो आप, इसलिए पराक्रम कर सकोगे। नहीं तो मनुष्य पूर्णरूप से प्रकृति के अधीन है, लट्टू स्वरूप है! उस लट्टू की दशा में से मुक्त होकर पराक्रमी बने हो, स्व-पुरुषार्थ और स्व-पराक्रम सहित हो! और 'ज्ञानीपुरुष' की छत्रछाया आप पर है। फिर आपको क्या डर है?

प्रश्नकर्ता : इसके लिए आपके साथ रहने की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : नहीं, साथ में रहने का तो सवाल ही नहीं है, परंतु अधिक टच में तो रहना ही पड़ेगा न! टच में रहोगे तो निकल गया, ऐसा पता चलेगा न? आप दूर होंगे, तो कैसे पता चलेगा? और टच में रहोगे तो यह रोग निकालने की शक्ति भी उत्पन्न होगी न! खुद की शक्ति से *अटकण* निकालनी और पराक्रम करना, वह कुछ आसान नहीं है। 'यहाँ से' शक्ति लेकर करो, तभी पराक्रम होगा।

पहले तो, ये *अटकणें* पहचान में ही नहीं आतीं कि उनके रूप कैसे होते हैं, उनका चरित्तर (पाखंड से भरा हुआ वर्तन) कैसा होता है! इसलिए उस *अटकण* को ढूँढ निकालना है कि यह *गलगलिया* कहाँ पर हो जाते हैं, शान-भान कहाँ पर खो देते हैं? इतना ही देख लेना है! 'आपको' ध्यान कितना रखना है इस चंदूभाई का! उससे कहना कि 'तुम सबकुछ खाना, पीना, दादा की आज्ञा के अनुसार चलना, उसमें कमी रही तो देख लेंगे।' परंतु चंदूभाई को कहाँ पर *गलगलिया* होते हैं, इसका 'हमें' ध्यान रखना है। C.I.D. की तरह उस पर नज़र रखना। क्योंकि अनादिकाल से *अटकण* से ही इस जगत् में लटका हुआ है, और फिर वह *अटकण* छूटती भी नहीं! वह तो अभी ये 'ज्ञानीपुरुष' हैं, ये *अटकण* छुड़वा देंगे!

सब से बड़ी *अटकण,* विषय से संबंधित!

कृपालुदेव को लल्लूजी महाराज ने सूरत से पत्र लिखा था कि हमें आपके दर्शन करने के लिए मुंबई आना है। तब कृपालुदेव ने कहा कि, 'मुंबई तो मोहमयी नगरी है। साधु-आचार्यों के लिए यह काम की नहीं है। यहाँ पर तो जहाँ-तहाँ से मोह घुस जाएगा, आपके मुँह में से नहीं घुसेगा तो कान में से घुस जाएगा, आँख में से घुस जाएगा। आखिर में ये हवा जाने के छिद्र हैं, उनमें से भी मोह घुस जाएगा! इसलिए यहाँ पर आने में फायदा नहीं है।' इसका नाम कृपालुदेव ने क्या रखा? 'मोहमयी नगरी!' उसमें मैंने आपको यह ज्ञान दिया है, अब क्या वह मोहमयी कुछ उड़ गई है? क्या बी-ओ-एम-बी-ए-वाय - बोम्बे हो गया? नहीं। मोहमयी ही है इसीलिए हम आपसे कहते हैं कि दूसरे पाँच इन्द्रियों के विषय नहीं, परंतु स्त्रियों को और पुरुषों को इतना ही कहते हैं कि जहाँ पर स्त्री विषय या पुरुष विषय संबंधी विचार आया कि तुरंत वहीं के वहीं आपको प्रतिक्रमण कर देना चाहिए। ऑन द स्पॉट तो कर ही देना चाहिए, परंतु फिर बाद में उसके सौ-दो सौ प्रतिक्रमण कर लेना।

कभी होटल में नाश्ता करने गए हों और उसका प्रतिक्रमण नहीं किया हो तो चलेगा। मैं उसका प्रतिक्रमण करवा लूँगा, परंतु यह विषय संबंधी रोग नहीं घुसना चाहिए। यह तो भारी रोग है। इस रोग को निकालने की औषधि क्या? तब कहे कि, हर एक मनुष्य को जहाँ पर *अटकण* हो, वहाँ पर यह रोग होता है। किसी पुरुष को, यदि कोई स्त्री जा रही हो तो वह उसे देखे और तुरंत ही उसके अंदर वातावरण बदल जाता है। अब ये सब वैसे तो हैं तरबूजे ही, परंतु उसने तो विस्तारपूर्वक उसका रूप ढूँढ निकाला होता है! इस फूट (एक प्रकार की ककड़ी) के ढेर पर क्या उसे राग होता है? परंतु मनुष्य है इसलिए उसे रूप की पहले से आदत है। 'ये आँखें कितनी सुंदर हैं! बड़ी-बड़ी आँखें हैं!' ऐसे कहता है। अरे, बड़ी-बड़ी अच्छी आँखें तो उस भैंस के भाई की भी होती हैं। वहाँ पर क्यों राग नहीं होता तुझे?' तब कहता है कि, 'वह तो भैंसा है और यह तो मनुष्य है।' अरे, यह तो फँसने की जगह है!

काम निकाल लो

इसलिए जहाँ-जहाँ, जिस-जिस दुकान में अपना मन उलझे, उस दुकान के भीतर जो शुद्धात्मा हैं, वे ही हमें छुड़वानेवाले हैं। इसलिए उन से माँग करनी चाहिए कि 'मुझे इस अब्रह्मचर्य विषय से मुक्त करें।' और सभी जगह आप छूटने के लिए भटको, वह नहीं चलेगा, उसी दुकान के शुद्धात्मा आपको इस विधि द्वारा छुड़वानेवाले हैं!

अब ऐसी किसी की बहुत सारी 'दुकानें' नहीं होतीं। थोड़ी ही 'दुकानें' होती हैं, जिन्हें बहुत 'दुकानें' हों उन्हें अधिक पुरुषार्थ करना पड़ेगा, वर्ना जिनकी थोड़ी सी ही 'दुकानें' हों उन्हें तो साफ करके 'एक्ज़ेक्ट' कर लेना चाहिए। खाने-पीने में कोई हर्ज नहीं है परंतु इस विषय की परेशानी है। स्त्री विषय और पुरुष विषय, ये दोनों बैर खड़े करने के कारखाने हैं, इसलिए जैसे-तैसे करके हल लाओ।

प्रश्नकर्ता : इसीको आप 'काम निकाल लेना' कहते हैं?

दादाश्री : और क्या फिर? ये सब जो रोग हैं वे निकाल देने हैं! इनमें से मैं आपको कुछ भी 'करने' को नहीं कहता हूँ। सिर्फ 'जानने' को कहता हूँ। यह 'ज्ञान' 'जानने' योग्य है, 'करने' योग्य नहीं है। जो ज्ञान जाना, वह परिणाम में आए बगैर रहेगा ही नहीं। इसलिए आपको कुछ भी नहीं करना है। भगवान महावीर ने कहा था कि वीतराग धर्म में 'करोमि, करोसि और करोति' नहीं होता। अपनी यह *अटकण* है, आपको उसका पता चलता है या नहीं चलता?

प्रश्नकर्ता : तुरंत ही पता चल जाता है।

दादाश्री : जिस प्रकार लफड़े को लफड़ा जानने से वह छूट जाता है, वैसे ही *अटकण* को *अटकण* जानोगे तब वह छूट जाएगी। भगवान ने कहा है कि 'तूने *अटकण* को जाना?' तब कहे, 'हाँ।' तब भगवान कहते हैं, 'तो तू मुक्त है।' फिर आपको कौन-से 'रूम' में बैठना है, वह आपको देखना है! बाहर कंकड़ उड़ रहे हों तो 'आपको' अपने 'रूम' में बैठ जाना चाहिए और 'क्लीयरन्स' की बेल बजे तब बाहर निकलना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : पुरुषार्थ भाग जो है वह, उसमें सूक्ष्म समझ का भाग, वही पुरुषार्थ कहलाता है? इन्द्रियों की लगाम छोड़ देनी, वह क्या इसमें आ जाएगा?

दादाश्री : आप सुबह से बोलो कि आज इन्द्रियों के घोड़े की लगाम छोड़ देते हैं, इस प्रकार पाँच बार शुद्ध भाव से बोलो। फिर अपने आप ही छूटी हुई लगाम को देखो तो सही, एक रविवार का दिन बीतने तो दो! यह तो 'क्या हो जाएगा, क्या हो जाएगा?' 'अरे, कुछ भी नहीं होगा, तू तो भगवान है। क्या होनेवाला है भगवान को?' खुद अपने आपमें इतनी हिम्मत नहीं आनी चाहिए कि मैं भगवान हूँ? 'दादा' ने मुझे भगवान पद दिया है! ऐसा ज्ञान है, फिर भगवान हो गए हो। परंतु अभी तक उसका पूरा-पूरा लाभ नहीं मिलता! उसका कारण क्या है? कि आप उसे आज़माइश की तरह लेते ही नहीं न! उस पद का उपयोग ही नहीं करते और यदि थोड़ा-बहुत ऐसा रहे तो?

प्रश्नकर्ता : हमें इन पाँच इन्द्रिय के विषयों में अरुचि से रहना अर्थात् अभिप्राय के बिना रहना है, ऐसा?

दादाश्री : अभिप्राय तो पूरा ही छूट जाना चाहिए। अभिप्राय तो बिल्कुल होना ही नहीं चाहिए। किंचित्मात्र भी अभिप्राय हो, किसी जगह पर रह गया हो, तो उसे तोड़ देना चाहिए! 'इस संसार में सुख है, इन पाँच इन्द्रियों में सुख है', ऐसा अभिप्राय तो रहना ही नहीं चाहिए! और वे अभिप्राय, वे हमारे नहीं हैं! वे अभिप्राय सब चंदूभाई के! 'मैं तो दादा का दिया हुआ शुद्धात्मा हूँ', और शुद्धात्मा, वही परमात्मा है! इतना समझ लेने की ज़रूरत है! ये पाँच आज्ञाएँ दी हैं, वे शुद्धात्मा के प्रोटेक्शन के लिए हैं!

बैर का कारखाना

यह समभाव से *निकाल* करने का नियम क्या कहता है, कि तू, किसी भी तरह से उसके साथ बैर नहीं बंधे, इस प्रकार से *निकाल* कर दे! बैर से मुक्त हो जा! अपने यहाँ तो यही एक चीज़ करने जैसी है,

कि बैर नहीं बढ़े! और बैर बढ़ने का मुख्य कारखाना कौन सा है? यह स्त्री-विषय और पुरुष-विषय!

प्रश्नकर्ता : उसमें बैर किस तरह बंधता है? अनंतकाल का बैरबीज पड़ता है, वह कैसे?

दादाश्री : ऐसा है न कि यह मरा हुआ पुरुष या मरी हुई स्त्री हो, तो ऐसा मानें न कि उसमें कुछ दवाई भरकर पुरुष, पुरुष जैसा ही रहता हो और स्त्री, स्त्री जैसी ही रहती हो तो उनके साथ कोई हर्ज नहीं है। उनके साथ बैर नहीं बंधेगा, क्योंकि वह जीवित नहीं है और यह तो जीवित है, वहाँ बैर बंधते हैं।

प्रश्नकर्ता : वे किसलिए बंधते हैं?

दादाश्री : अभिप्राय डिफरेन्ट हैं इसलिए! आप कहते हो कि 'मुझे अभी सिनेमा देखने जाना है।' तब वे कहेंगी कि 'नहीं, आज तो मुझे नाटक देखने जाना है!' यानी टाइमिंग नहीं मिलते! यदि एक्ज़ेक्ट टाइमिंग पर टाइमिंग मिल जाएँ, तभी विवाह करना!

प्रश्नकर्ता : फिर भी यदि कोई ऐसा हो कि जैसा वह कहे, वैसा हो भी सही।

दादाश्री : वह तो कोई ग़ज़ब का पुण्यशाली होगा तो, उसकी स्त्री निरंतर उसके अधीन रहेगी! उस स्त्री के लिए फिर और कुछ भी उसका खुद का नहीं होता, खुद का कोई अभिप्राय ही नहीं होता, वह निरंतर अधीन ही रहती है!

ऐसा है, इन संसारियों को ज्ञान दिया है। मैंने साधु बनने के लिए नहीं कहा, परंतु जो फाइलें हैं उनका 'समभाव से *निकाल*' करो, कहा है! और प्रतिक्रमण करो। ये दो उपाय बताए हैं! ये दोनों करोगे तो आपकी दशा को कोई उलझानेवाला है ही नहीं! उपाय नहीं बताए हों तो किनारे पर खड़े रह ही नहीं पाते न? किनारे पर जोखिम है!

आपको वाइफ के साथ मतभेद होता था, उस घड़ी राग होता था या द्वेष?

प्रश्नकर्ता : वह तो, दोनों बारी-बारी से होते हैं। हमें 'सूटेबल' हो तो राग होता है और 'ऑपोज़िट' हो तो द्वेष होता है।

दादाश्री : यानी कि वह सब राग-द्वेष के अधीन है। अभिप्राय एकाकार होते ही नहीं न! शायद ही कोई ऐसा पुण्यशाली होगा कि जिसकी स्त्री कहे कि 'मैं आपके अधीन रहूँगी, चाहे कहीं भी जाओगे, चिता में जाओगे तब भी आपके ही अधीन रहूँगी!' वह तो धन्यभाग ही कहलाएँगे न! परंतु ऐसा किसी को ही होता है! यानी इसमें मज़ा नहीं है। हमें कोई नया संसार खड़ा नहीं करना है। अब मोक्ष में ही जाना है। जैसे-तैसे करके फायदा-नुकसान के सभी खातों का *निकाल* करके खाता बंद करके हल ला देना है!

यह वास्तव में मोक्ष का मार्ग है! किसी काल में कोई नाम न दे, ऐसा यह ज्ञान दिया हुआ है! परंतु यदि आप जान-बूझकर उल्टा करो, तो फिर बिगड़ेगा! फिर भी कुछ समय में हल ला ही देगा! अर्थात् एक बार यह जो प्राप्त हो गया है, इसे छोड़ने जैसा नहीं है!

लोकसंज्ञा से अभिप्राय अवगाढ़

पूरा जगत् अभिप्राय के कारण चल रहा है। अभिप्राय वस्तु तो ऐसी है न कि अपने यहाँ आम आया, और सभी चीज़ें आई, अब इन्द्रियों को हमारी प्रकृति के अनुसार बहुत पसंद आता है और इन्द्रियाँ सब खाती हैं, ज़्यादा खा जाती हैं, परंतु इन्द्रियों को ऐसा नहीं है कि अभिप्राय बनाएँ। यह तो बुद्धि अंदर नक्की करती है कि यह आम बहुत अच्छा है! इसलिए उसका आम के प्रति अभिप्राय बन जाता है। फिर दूसरों को ऐसा कहता भी है, 'भाई, आम जैसी कोई चीज़ नहीं दुनिया में।' फिर उसे याद भी आता रहता है, खटकता रहता है कि आम नहीं मिल रहा। इन्द्रियों को और कोई आपत्ति नहीं है, वे तो किसी दिन आम आए तो खा लेती हैं, नहीं आए तो कुछ नहीं। ये अभिप्राय ही हैं। वे ही सब परेशान करते हैं! अब इसमें सिर्फ बुद्धि काम नहीं करती! लोकसंज्ञा इसमें बहुत काम करती है! लोगों ने जो माना हुआ है, उसे पहले खुद बिलीफ़ में रखता है, यह

अच्छा और यह खराब। फिर खुद के प्रियजन कहें तो उसकी बिलीफ़ अधिक मज़बूत होती जाती है!

उसी तरह ये अभिप्राय कोई देता नहीं है, लेकिन लोकसंज्ञा से अभिप्राय बन जाते हैं कि अपने बगैर कैसे होगा? ऐसा हम नहीं करेंगे तो कैसे चलेगा? ऐसी संज्ञा बैठ (फिट हो) गई है, इसलिए फिर हमने आपको 'व्यवस्थित' कर्ता है, ऐसा ज्ञान दिया, इससे आपका अभिप्राय बदल गया कि वास्तव में हम लोग कर्ता नहीं है, 'व्यवस्थित' कर्ता है!

लोकसंज्ञा से अभिप्राय डल गए हैं, वे ज्ञानी की संज्ञा से तोड़ डालने हैं! सब से बड़ा अभिप्राय, 'मैं कर्ता हूँ' वह तो जिस दिन ज्ञान दिया, उस दिन 'ज्ञानीपुरुष' तोड़ देते हैं। लेकिन हर किसी की प्रकृति के अनुसार अन्य छोटे-छोटे, अभिप्राय बन जाते हैं। कुछ के तो बहुत बड़े अभिप्राय होते हैं, वे *अटकण* कहलाते हैं। ऐसे तो करना ही पड़ता है न! वे सारे अभिप्राय अभी तक रहे हुए हैं वे सभी अभिप्राय निकाल देंगे न, तो वीतराग मार्ग पूरी तरह खुल जाएगा।

जब 'मगनभाई' यहाँ रूम में प्रवेश करें कि तुरंत ही आपको उसकी तरफ अभाव उत्पन्न हो जाता है, किसलिए? क्योंकि 'मगनभाई' का स्वभाव ही नालायक है, ऐसा अभिप्राय बन गया है। इसलिए 'मगनभाई' यदि कुछ अच्छा बताने आएँ, फिर भी खुद उसे टेढ़ा मुँह दिखाता है। वे अभिप्राय बन गए हैं, उन सबको निकालना तो पड़ेगा ही न?

अर्थात् किसी भी प्रकार के अभिप्राय नहीं रखने हैं। जिसके लिए खराब अभिप्राय बन गए हों, वे सब तोड़ देना। ये तो सब बेकार के अभिप्राय बन जाते हैं, गलतफहमी से बन जाते हैं।

कोई कहेगा कि, 'अपना अभिप्राय उठ गया तो भी उसकी प्रकृति क्या बदल जानेवाली है?' तब मैं क्या कहता हूँ कि 'प्रकृति भले न बदले, उससे हमें क्या मतलब?' तो कहेगा कि, 'फिर हमारे बीच टकराव तो रहेगा ही न?' तो मैं क्या कहता हूँ कि, 'नहीं, आपके जैसे परिणाम सामनेवाले के लिए होंगे, वैसे ही परिणाम सामनेवाले के हो जाएँगे।' हाँ, आपका उसके

लिए अभिप्राय टूटा और आप उसके साथ खुश होकर बात करोगे तो वह भी खुश होकर आपसे बात करेगा। फिर उस घड़ी आपको उसकी प्रकृति नहीं दिखेगी!

यानी अपने मन की छाया उस पर पड़ती है! हमारे मन की छाया सभी पर किस तरह पड़ती है! अगर घनचक्कर हो, तो भी सयाना हो जाता है! अगर अपने मन में ऐसा हो कि 'रमणभाई' पसंद नहीं है, तो रमणभाई के आने से नापसंदगी उत्पन्न होगी और उसका फोटो उस पर पड़ेगा! उसके अंदर तुरंत फोटो पड़ता है कि इनके अंदर क्या चल रहा है! अपने भीतर के वे परिणाम सामनेवाले को उलझाते हैं। सामनेवाले को खुद को पता नहीं चलता, परंतु उसे उलझाते हैं! इसलिए आपको अभिप्राय तोड़ देने चाहिए! अपने सभी अभिप्राय आपको धो देने चाहिए, ताकि आप छूट जाओ।

वर्ना सभी के लिए आपको कहीं कुछ ऐसा नहीं होता। कोई रोज़ चोरी करता हो तो आपको, 'वह चोर है', ऐसा अभिप्राय बनाने की ज़रूरत ही क्या है? वह चोरी करता है, वह उसके कर्म का उदय है! और जिसका उसे लेना है, वह उसके कर्म का उदय है, उससे हमें क्या लेना-देना? परंतु यदि उसे हम चोर कहें तो वह अभिप्राय ही है न। और वास्तव में तो वह आत्मा ही है न।

भगवान ने सबको निर्दोष देखा था। किसी को उन्होंने दोषित देखा ही नहीं और हमारी वैसी शुद्ध दृष्टि हो जाएगी, तब शुद्ध वातावरण हो जाएगा। फिर पूरा जगत् बगीचे जैसा लगेगा। वास्तव में लोगों में कोई दुर्गंध नहीं है। लोगों के बारे में स्वयं अभिप्राय बांधता है। हम चाहे किसी की भी बात करें, परंतु हमें किसी के लिए अभिप्राय नहीं रहता कि, 'वह ऐसा ही है!'

फिर अनुभव भी होता है कि अभिप्राय निकाल दिए इसलिए इस व्यक्ति में यह परिवर्तन हो गया! अभिप्राय बदलने के लिए क्या करना पड़ेगा? कि यदि वह चोर हो तो हमें 'वह साहूकार हैं', ऐसा कहना चाहिए। 'मैंने इसके लिए ऐसा अभिप्राय बनाया था, वह अभिप्राय गलत है, अब यह अभिप्राय मैं छोड़ देता हूँ', इस तरह 'गलत है, गलत है' कहना चाहिए।

'मेरा अभिप्राय 'गलत है'' ऐसा कहना, ताकि आपका मन बदले। नहीं तो मन नहीं बदलेगा।

कुछ लोगों की वाणी बहुत बिगड़ी हुई होती है, वह भी अभिप्राय के कारण होता है। अभिप्राय के कारण कठोर वाणी निकलती है, *तंतीली* (तीखी, चुभनेवाली) निकलती है! *तंतीली* अर्थात् खुद ऐसा *तंतीला* बोलता है और सामनेवाले को भी वैसा करने को उकसाता है!

अनंत जन्मों से लोकसंज्ञा से चले हैं, उसी का यह सब भरा हुआ माल है! यानी जो अभिप्राय भरे हैं, उनका झंझट है। जो अभिप्राय नहीं रखे, उनका कोई झंझट नहीं होता!

कमिशन चुकाए बिना तप

हमें तप करने ज़रूर हैं, परंतु घर बैठे आ पड़े हैं वे, बुलाने नहीं जाना पड़े! पुण्यशाली के लिए सभी चीज़ें घर बैठे आ जाती हैं। गाड़ी में कभी कोई सामने आकर झगड़ पड़े तो हमें समझना चाहिए कि यह आ पड़ा तप है! कि 'ओहोहो! मुझे ढूँढते-ढूँढते घर पर आया!' इसीलिए तप करना चाहिए उस समय। भगवान महावीर प्राप्त तप के अलावा और कोई तप नहीं करते थे। जो प्राप्त तप आ पड़ा हो, उस तप को धकेलते नहीं थे! ये तो क्या करते हैं? नहीं आया हो उसे बुलाते हैं कि 'परसों से मुझे तीन दिन के उपवास करने हैं', और जो आया हो, उसका तिरस्कार करते हैं। कहेंगे, 'मेरा पैर दुःख रहा है, किस तरह सामायिक करूँ? यह पैर ही ऐसा है।' और फिर पैर को गालियाँ भी देते हैं! 'मेरा पैर ऐसा है' ऐसा कोई किस तरह जानेगा? किसी को जानने दिया, तो वह तप नहीं कहलाएगा। ऐसा यदि कोई जान गया, तो वह तप में से हिस्सा ले गया, ऐसा कहा जाएगा। तप हम करें, और फायदे में से दो आने वह खा जाए, ऐसा किस काम का? उसने हमारी बात सुनी उसके बदले उसे दो आने मिल जाते हैं। ऐसे आश्वासन लेकर कमिशन कौन दे?

मुंबई से बड़ौदा कार में आना था और बैठते ही कह दिया कि, 'सात घंटे एक ही जगह पर बैठे रहना है। तप आया है!' हम आपके साथ

तो बाते करते हैं, परंतु हमारे भीतर हमारी बात चलती ही रहती हैं।' कि 'आज आपको प्राप्त तप आया है। इसलिए एक अक्षर भी बोलना नहीं है।' लोग तो दिलासा देना चाहते हैं कि, 'दादा, आपको ठीक लग रहा है या नहीं?' तो कहें, 'बहुत अच्छा लग रहा है।' परंतु कमिशन हम किसी को भी नहीं देते, क्योंकि भोगते हैं हम! एक अक्षर भी बोले, वे दादा कोई और! उसे प्राप्त तप किया कहा जाता है!

उद्गीरणा, पराक्रम से प्राप्य!

प्रश्नकर्ता : यह *उद्गीरणा* (भविष्य में फल देनेवाले कर्मों को समय से पहले जगाकर वर्तमान में खपाना) करते हैं न, वह खरा तप नहीं कहलाता?

दादाश्री : *उद्गीरणा,* वह तो पुरुषार्थ माना जाता है! परंतु पुरुष होने के बाद का पुरुषार्थ है! वास्तव में तो यह पराक्रम में आता है! सातवें *गुंठाणे* के नीचे कोई कर नहीं सकता, यह पराक्रमभाव है! आपसे इस ज्ञान के बाद अब सभी *उद्गीरणाएँ* हो सकती हैं! आपको बीस वर्ष बाद जो कर्म आनेवाले हों, तो आज आप वे सब भस्मिभूत कर सकते हो!

प्रश्नकर्ता : परंतु वह किस तरह पता चलेगा कि बीस वर्ष बाद आनेवाला है?

दादाश्री : क्यों, वह गाँठ विलय हो गई तो फिर खतम, फिर तो 'एविडेन्स' इकट्ठे होंगे, बस उतना ही, परंतु दुःखदायी नहीं रहा!

प्रश्नकर्ता : हम जो ये प्रतिक्रमण करते हैं, वह *उद्गीरणा* होती है न?

दादाश्री : उसमें *उद्गीरणा* ही होगी। क्योंकि आज अड़चन नहीं आई, फिर भी किसलिए कर रहा हूँ? वह मौजमज़े के लिए नहीं है! फिर भी प्रतिक्रमण करते-करते जो आनंद होता है, वह लाभ अतिरिक्त है।

अपनी यह 'अक्रम' की 'सामायिक' आप करते हो, उसमें सभी कर्मों की *उद्गीरणाएँ* हो जाएँ, ऐसा है। हम लोग चरम शरीरी नहीं हैं, इसलिए

जिन्हें ये कर्म रहने देने हों, वे रहने दें, परंतु चरम शरीरी को तो *उद्दीरणा* करनी ही पड़ती है। क्योंकि उसे लगता है कि अब आयुष्य का अंत नज़दीक आ रहा है और दुकान में माल ढेर सारा पड़ा हुआ दिख रहा है! अब वह माल खपाए बिना किस तरह जाया जा सकेगा? एक तरफ मुद्दत पूरी हो रही है, इसलिए भगवान कुछ उपाय कीजिए। तब भगवान कहते हैं, 'कर्म का विपाक करो। विपाक यानी उसे पकाओ। जैसे हम आम को घास में रखकर पकाते हैं न, वैसे ही कर्मों को आप पकाओ।' तब वे उदय में आएँगे। *उद्दीरणा* अर्थात् कर्मों का उदय आने से पहले कर्मों को बुलाकर खपा देना।

प्रश्नकर्ता : उसे पराक्रम कहा जाता है न?

दादाश्री : वह बहुत बड़ा पराक्रम कहलाता है। पुरुषार्थ में तो खुद है ही, परंतु यह पराक्रम कहलाता है। यह तो उससे भी बहुत आगे का है।

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा है न कि कर्मों का नाश कर देते हैं, तो जो संचित कर्म हैं, उनका क्या करना चाहिए?

दादाश्री : संचित कर्म तो जब समय हो जाए, तब अपने आप परिपक्व होंगे, तब अपने समक्ष आकर खड़े रहेंगे। हमें उन्हें ढूँढने जाने की ज़रूरत नहीं है। संचित कर्म अपना फल देकर चले जाते हैं। और जो पुरुष हो चुके हैं, वे अमुक योग करके अमुक कर्मों को खत्म कर सकते हैं, लेकिन वह पुरुष होने के बाद में ही। आप अभी जिस दशा में हो, उस दशा में वैसा नहीं हो सकता। अभी आपको वैसा ताल नहीं बैठेगा। अभी तो आपको प्रकृति नचा रही है और आप नाचते हो। पुरुष होने के बाद जिस योग द्वारा कर्मों को खत्म करते हैं, उसे *उद्दीरणा* कहा जाता है।

उद्दीरणा अर्थात् क्या? कच्चे फल को पकाकर झाड़ देना। कर्म का विपाक हुए बिना, खिचड़ी कच्ची हो तो क्या करते हैं? वैसे ही कर्म कच्चे हों और जाने का समय हो जाए तो क्या करेंगे? इसलिए फिर उसे पका

देते हैं। और उन कर्मों की *उद्दीरणा* होती है। परंतु पुरुष होने के बाद ही यह पुरुषार्थ हो सकता है। पुरुषार्थ होने के बाद इतना अधिकार है उसे!

उद्दीरणा से दो लाभ होते हैं। एक तो *उद्दीरणा* करने के लिए आपको आत्मस्वरूप होना पड़ता है। और दूसरा, कर्मों की *उद्दीरणा* होती है!

आत्मस्वरूप कब हो सकते हैं? जब सामायिक और कायोत्सर्ग दोनों हो जाएँ, तब आत्मस्वरूप हो सकते हैं। अपने यहाँ तो सिर्फ सामायिक से ही आत्मस्वरूप हो जाते हैं, उससे *उद्दीरणा* हो जाती है। यह 'अक्रमज्ञान' है, इसलिए आप आत्मस्वरूप हो सकते हैं और तभी पुरुषार्थ और पराक्रम हो पाता है।

वर्ना जगत् जिसे पुरुषार्थ मानता है, उसे ये दादा कहते हैं कि, 'उसके बारे में तो ज़रा सोचो।' यह नीम पत्ते-पत्ते में कड़वा होता है, डाली-डाली में कड़वा होता है, उसमें नीम का क्या पुरुषार्थ? वैसे ही यह तप, त्याग करते हैं, उसमें उसका क्या पुरुषार्थ?

खुद है लट्टू, वह *उद्दीरणा* करने कैसे बैठ गया? पुरुष हुए नहीं हैं, इसलिए लट्टू कहा है। परंतु लट्टू का और *उद्दीरणा* का, दोनों का मेल किस तरह बैठेगा?

निकाचित कर्म तो हमेशा कड़वे लगते हैं। मीठा निकाचित कर्म हो परंतु जब वह आख़िर में उकताकर कड़वा लगे, तब भान होता है कि यह यहाँ से अब हटे तो अच्छा!

निकाचित कर्म दो प्रकार के होते हैं : एक कड़वा और दूसरा मीठा। मीठे कर्म भी यदि बहुत आएँ, तब फँस जाते हैं। अतिशय आइस्क्रीम दें तो आप कितनी खाओगे? अंत में उससे भी उकता जाओगे न? और कड़वे में तो बहुत ही उकता जाते हैं। उसमें तो कुछ पूछने को रहा ही नहीं न! लेकिन भोगे बिना चारा ही नहीं।

निकाचित कर्म अर्थात् जो भुगतने ही पड़ें। और बाकी सब कर्म ऐसे हैं जो खत्म हो सकें। जिसे *उद्दीरणा* कहते हैं, उसे तप कहें तो चल

सकता है। वह तप भी नैमित्तिक तप है। यदि वह खुद कर कर सकता, तब तो वह कर्ता कहलाता। अर्थात् वह नैमित्तिक तप है। यानी कि उदय में तप आए तो वे कर्म खत्म हो जाते हैं, वर्ना वैसा होता नहीं। वह तप करने जाए कि कल करूँगा, तो वह नहीं हो पाएगा और ऐसे करते-करते अर्थी निकल जाएगी! और फिर किसी के कंधे पर चढ़कर जाना पड़ता है। *उद्दीरणा* नहीं हो, तो ऋण चुकाने आना पड़ेगा।

उद्दीरणा का अर्थ क्या कि जो विपाक नहीं हुए हों, ऐसे कर्मों का विपाक करके उदय में लाना। जो चरम शरीरी हों, वे ला सकते हैं। यदि चरम शरीरी के कर्म अधिक हों, तो वह *यह उद्दीरणा* कर सकता है। परंतु वह कैसा होना चाहिए? सत्ताधीश होना चाहिए। पुरुषार्थ सहित होना चाहिए। पुरुष हुए बगैर सभी लट्टू कहलाते हैं। नामधारी मात्र, लट्टू कहलाते हैं। इस लट्टू में यहाँ से श्वास अंदर गया कि लट्टू घूमा, फिर उसकी डोरी खुलती जाती है। वह हमें दिखता भी है कि डोरी खुल रही है। इसीलिए तो हमने पूरे वर्ल्ड को लट्टूछाप कहा है। उसके खुलासे की ज़रूरत हो तो कर देंगे। हम जितने शब्द बोलते हैं, उन सभी का खुलासा देने के लिए बोलते हैं। इन दादा ने जो ज्ञान देखा है, उस ज्ञान और अज्ञान को, दोनों को बिल्कुल अलग-अलग देखा है।

पुरुषार्थ उदयाधीन नहीं होता, पुरुषार्थ तो जितना करो उतना आपका। हमारे महात्मा पुरुष बने, उनके भीतर निरंतर पुरुषार्थ हो रहा है। पुरुष, पुरुषधर्म में आ चुका है और इसीलिए प्रज्ञा चेतावनी देती है! पूरे जगत् को हम लट्टू कहते हैं। लट्टू का खुद का क्या पुरुषार्थ? ये यहाँ से श्वास अंदर गया तो लट्टू घूमता रहेगा और यदि श्वास दब गया तो लट्टू गिर जाएगा! और अपने महात्मा तो पुरुष बने हैं, इसीलिए उनका श्वास नहीं चले और जब अंदर घबराहट होती है, तब फिर खुद की गुफा में चले जाते हैं कि 'चलो, अपनी 'सेफसाइड'वाली जगह में।' अर्थात् खुद अमरपद के भानवाले हैं ये!

पराक्रमभाव

प्रश्नकर्ता : 'चार्ज पोइन्ट' के अलावा वह जो सर्जक शक्ति है, वह क्या है? पुरुषार्थ है?

दादाश्री : सर्जक शक्ति यानी हम क्या कहना चाहते हैं कि सूर्योदय कब होता है कि जब साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स मिल जाएँ तब उदय होता है। यह घड़ी चार बजाए, उसकी घड़ी में भी चार बजें, मुंबई की बड़ी घड़ी में भी चार बजें और यहाँ सूर्यनारायण आ जाएँ ऐसा नहीं होता। सूर्यनारायण को जल्दबाज़ी हो फिर भी उनसे यहाँ आया नहीं जा सकेगा! उनका सूर्योदय कब होगा? जब सभी 'एविडेन्स' मिल जाएँगे तब! अर्थात् जो उदयकर्म हैं, वे सर्जक शक्ति के अधीन है। सर्जक शक्ति, उसे हम 'चार्ज' कहते हैं। उसे पुरुषार्थ नहीं कहते।

प्रश्नकर्ता : भाव को ही पुरुषार्थ कहा जाता है न? अपना सच्चा भाव जाना, स्वभाव को गुणों से जाना, वही पुरुषार्थ है न?

दादाश्री : भावाभाव को हमने पूरा लट्टूछाप में डाल दिया है और हमें तो स्वभाव-भाव है। भावाभाव, वह कर्म है, और स्वभाव-भाव में ज्ञाता-दृष्टा और परमानंद होता है। अपने महात्मा स्वभाव भाव में रहते हैं, इसलिए भीतर उन्हें आनंद रहता ही है, परंतु वे चखते नहीं। जब उसे चखने का समय आता है, तब वे गए होते हैं दूसरे कहीं होटल में, इसलिए पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : यानी महात्मा उसे किस लक्षण से चखते हैं? बिना जाने चखते हैं, वह पुरुषार्थ लक्षण से या उदय लक्षण से?

दादाश्री : पुरुषार्थ तो उनका चल ही रहा है, परंतु पराक्रम की दृष्टि से चखते हैं।

प्रश्नकर्ता : महात्माओं में पराक्रम खड़ा नहीं हुआ है। यानी उसका अर्थ यह है कि उनको यथार्थ पुरुषार्थ नहीं है।

दादाश्री : पुरुषार्थ है ही सभी महात्माओं में, परंतु वे अभी तक पराक्रम भाव में नहीं आए हैं। कुछ सामायिक करके पराक्रम में आते हैं। पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ होगा ही न! वह तो स्वाभाविक रूप से होता है।

प्रश्नकर्ता : इसमें कोई नियम नहीं है न? कईबार सामायिक में

बैठे होते हैं, तब (आत्मा में) बिल्कुल एकाकार नहीं हुआ जाता और रास्ते में अचानक ही एकाकार हो जाते हैं और आनंद-आनंद हो जाता है। तो वह किस प्रकार से आया? वह उदय से आया?

दादाश्री : यह भी उदय से आता है और वह भी उदय से आता है। दोनों उदय से ही आते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ यह है कि पराक्रम भाव बिल्कुल अलग है?

दादाश्री : हाँ, पराक्रम भाव अलग ही है। पराक्रम में खुद को कुछ भी नहीं करना होता। खुद का भाव, पराक्रम भाव उत्पन्न होता है। इसलिए फिर प्रज्ञा उस भाव के अनुसार सबकुछ कर देती है।

प्रश्नकर्ता : पराक्रम भाव अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा भाव?

दादाश्री : पराक्रम भाव यानी क्या? 'मुझे पराक्रम भाव में आना है' ऐसा भाव उन्हें नहीं होता। मूल जो भाव होते हैं, यह पराक्रम भाव उससे अलग चीज़ है। यह 'एलर्टनेस' है। मुझे 'एलर्टनेस' में ही रहना है। ऐसा जिसे नक्की हो, उसके लिए फिर प्रज्ञा सभी व्यवस्था कर देती है।

प्रश्नकर्ता : पराक्रम भाव क्या स्ट्रोंग निश्चय में आता है?

दादाश्री : हाँ, और क्या, निश्चय अपना होना ही चाहिए न? मुझे स्वभाव में ही रहना है। फिर जो हो सो। उसे फिर कौन रोकनेवाला है? फिर प्रज्ञाशक्ति उसमें ज़ोर लगाएगी। उसके भीतर अज्ञाशक्ति भी अपना ज़ोर लगाती है। परंतु अंत में अज्ञाशक्ति हार जाएगी, क्योंकि भगवान इनके पक्ष में है।

[२८]

'देखना' और 'जानना' है जहाँ, परमानंद प्रकट होता है वहाँ!

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा का लक्ष्य निरंतर रहता है, फिर भी बहुत बार मन 'डिप्रेस' हो जाता है, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : अपना ज्ञान तो क्या कहता है कि 'चंदूभाई' को क्या हो रहा है, वह देखते रहो। दूसरा कोई उपाय है ही नहीं न! अधिक कचरा भरकर लाया है, वैसा हमें पता चल जाता है न?

प्रश्नकर्ता : उस समय ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध नहीं रह पाता, और 'इस मन-वचन-काया से मैं अलग ही हूँ' ऐसा उस समय नहीं रह पाता।

दादाश्री : वह ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध नहीं रहे, तो तुझे पता ही नहीं चलेगा कि चंदूभाई का यह चला गया है! यह पता किसे चलता है? इसलिए यह बिल्कुल जुदा रहता है तुझे! एक-एक मिनट का पता चलता है।

प्रश्नकर्ता : परंतु पता चल जाने के बाद वह बंद हो जाना चाहिए न? और वापस आत्मा की तरफ़ मुड़ जाना चाहिए न?

दादाश्री : वह मोड़ने से मुड़ जाए ऐसा नहीं है। आप क्या, मोड़ लो ऐसे हो?

प्रश्नकर्ता : तब तो दादा, इस तरह 'मशीनरी' उल्टे रास्ते पर चलती ही रहेगी और हमें उसे 'देखते' ही रहना है सिर्फ?

दादाश्री : और दूसरा क्या करना है? उल्टा रास्ता और सीधा रास्ता दोनों रास्ते ही हैं, उन्हें 'देखते' ही रहना है।

प्रश्नकर्ता : परंतु उल्टे रास्ते पूरा जन्म बेकार जाएगा न?

दादाश्री : परंतु उसमें ऐसे झिकझिक करो तो क्या होगा? उसे 'देखते रहना' वही पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ समझ में नहीं आने के कारण आप उलझ जाते हो। यह तो सिर्फ 'सफोकेशन' ही है।

प्रश्नकर्ता : अंत में फिर उकता जाते हैं कि यह सब क्या हो रहा है?

दादाश्री : उकताहट हो तो चंदूभाई को होगी। 'आपको' थोड़े ही होती है? और 'आपको' चंदूभाई को डाँटना चाहिए और उससे शाम को प्रतिक्रमण करवाना चाहिए।

आत्मा का स्वभाव ऐसा है कि इतना सा भी जाने बगैर रहेगा नहीं। क्या-क्या हुआ, वह सारा ही यह जानता है! ये बाहरवाले सभी कोई शिकायत करने क्यों नहीं आते कि मुझे आज ऐसा हो रहा है, वैसा हो रहा है?

प्रश्नकर्ता : उन्हें समाधि रहती होगी?

दादाश्री : आत्मा प्रकट है ही नहीं, वहाँ फिर समाधि किस तरह हो सकती है? अहंकार ही काम करता रहता हो, वहाँ पर आत्मा प्रकट ही नहीं है। आपको तो आत्मा प्रकट हो गया है! इसलिए यह सब पता चलता है। नहीं तो और कोई क्यों ऐसा नहीं बोलता?

प्रश्नकर्ता : फिर खुद का परमानंद, खुद का अनंत सुख, वह चला नहीं जाना चाहिए न?

दादाश्री : परंतु ये अंतराय आते हैं, इसलिए सुख चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : कौन से अंतराय, दादा?

दादाश्री : यह व्यापार के लिए तू जाता है, वहाँ चंदूभाई क्या-क्या करते हैं, उसे 'तू' अच्छी तरह 'देखता' नहीं है, इसलिए सब टूट जाता है। सभी यदि पद्धतिपूर्वक हो रहा हो तो कुछ भी नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : 'देखता' नहीं अर्थात् क्या?

दादाश्री : तू उसे 'जानता' तो है परंतु 'देखता' नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : हम जानें और देखें तो क्या हो जाएगा फिर?

दादाश्री : 'जानना' और 'देखना', वे दोनों एक साथ होते हैं, तब परमानंद होता है।

प्रश्नकर्ता : 'जानना' और 'देखना', वह किस प्रकार से होता है?

दादाश्री : तुझे पूरे चंदूभाई दिखें। 'चंदूभाई क्या कर रहे हैं' वह सभीकुछ दिखेगा। चंदूभाई चाय पी रहे हों तो दिखेगा, दूध पी रहे हों तो दिखेगा, रो रहे हों तो दिखेगा। गुस्सा हो रहे हों तो वह भी दिखेगा, चिढ़ रहे हों तो वह भी दिखेगा, नहीं दिखेगा? आत्मा सभीकुछ देख सकता है। यह तो 'जानना' और 'देखना', दोनों साथ में नहीं होता है, इसलिए तुझे परमानंद उत्पन्न नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : 'जानना' और 'देखना', वे दोनों किस तरह हो सकता है?

दादाश्री : उसका हम अभ्यास करें, तो होगा। हर एक चीज़ में उपयोग रखें, जल्दबाज़ी या धांधली नहीं करें, शायद कभी गाड़ी में चढ़ते समय भीड़ हो तो भूलचूक हो जाए और 'देखना' रह जाए, तो उसे 'लेट गो' कर लेंगे। परंतु बाकी सब जगह तो रह सकता है न?

परमात्मयोग की प्राप्ति

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका 'ज्ञान' प्राप्त करने के बाद माया परेशान करती है, उसे निकाल दीजिए न?

दादाश्री : 'स्वरूप का ज्ञान' प्राप्त करने के बाद माया कभी भी आती ही नहीं। माया फिर खड़ी ही नहीं रहती, परंतु आप तो उसे बुलाते हो न, 'मौसी, यहाँ आइए। मौसी, यहाँ आइए!'

प्रश्नकर्ता : आप माया को मारिए न?

दादाश्री : मैं मारने आऊँ या आपको मारना है? मुझे तो आपका

थोड़ी-बहुत ही ध्यान रखना है। बाकी सारा आपको सँभालना है। अब आप पुरुष हो गए और पुरुष होने के बाद आप पुरुषार्थ में आए हो। पुरुष होने के बाद माया आए ही कैसे? यदि एक घंटे का योग शुरू किया हो तो जगत् हिल उठे, ऐसा तो मैंने आपको योग दिया है! पूरा ब्रह्मांड हिल उठे, ऐसा योग मैंने आपको दिया है! परंतु ऐसे योग का आप उपयोग नहीं करो तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : ब्रह्मांड नहीं हिलता, परंतु मैं हिल जाता हूँ।

दादाश्री : यह योग हाथ में आ जाए तो कोई छोड़ेगा नहीं। एक घंटे में तो कुछ का कुछ उड़ाकर रख दे!

प्रश्नकर्ता : आज तक मुझे ऐसा था कि दादा मुझे कभी खुद ही कहेंगे, इसलिए मैं कुछ कहता ही नहीं था।

दादाश्री : दादाजी सभी कुछ करते हैं, परंतु वह तो कोई बिल्कुल ही कमज़ोर पड़ गया हो तो वहाँ पर रक्षण रख देना पड़ता है। वर्ना ऐसे तो अंत ही नहीं आएगा न! दादा को बहुत काम करना होता है। दादा को पूरे दिन योग करना होता है। अमरीका में घूमना पड़ता है, इंग्लैन्ड में घूमना पड़ता है, दिन-रात घूमना पड़ता है। पूरे वर्ल्ड पर योग चल रहा है। पूरे वर्ल्ड में शांति होनी चाहिए। धर्म की बात तो जाने दो, परंतु शांति तो होनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हमारा तो जहाँ नहीं करना है, वहाँ होता है और जो करना है, वह नहीं हो पाता।

दादाश्री : वहीं पर पुरुषार्थ है, पुरुष बनने के बाद फिर पुरुषार्थ क्यों नहीं हो पाता? अब दिशामूढ़ नहीं होना है। अब तो एक ही दिशा, बस पुरुषार्थ, पुरुषार्थ और पुरुषार्थ!

अनंतशक्तियाँ व्यक्त हो जाएँ, ऐसा यह योग दिया है। इसलिए ज़ोरदार पुरुषार्थ करो घर जाकर! दूसरे सभी मच्छरों से कहें कि 'गेट आउट! नोट अलाउड!'

पूरा ब्रह्मांड हिल जाए, ऐसी शक्ति भीतर भरी पड़ी है। मैंने खुद देखी है, तभी तो मैंने अनावृत्त किया! परंतु आप किन लालचों में पड़ गए हो? किसलिए? पूरा ब्रह्मांड सामने आ जाए, फिर भी उसका लालच क्यों हो? इसलिए अच्छी तरह योग जमाओ, रात और दिन! अब नींद कैसे आए? अब पूरा-पूरा योग कर लो। दस लाख वर्षों में यह सहजासहज योग प्राप्त हुआ है, बीवी-बच्चों, कपड़े-लत्ते सहित! बार-बार ऐसा योग प्राप्त हो सके, ऐसा नहीं है। यह तो परमात्मयोग है! यह कोई ऐसा-वैसा योग नहीं है!

बहुत ही जागृति की ज़रूरत है, संपूर्ण जागृति! जागृति के ऊपर जागृति कि जो अंतिम प्रकार की जागृति है, वह अपने यहाँ पर है! जगत् जहाँ जगता है, वहाँ हमें सोते रहना चाहिए। हम जहाँ पर जगे हैं, वहाँ पर जगत् सोया हुआ ही है। केवलज्ञान अर्थात् संपूर्ण जागृति! कोई कमी न रहे, ऐसी जागृति! बस, जागृति की ही ज़रूरत है। जितनी जागृति बढ़ी उतना केवलज्ञान के नज़दीक आया। जागृति में खुद के सभी दोष दिखते हैं, परंतु यदि खुद निष्पक्षपाती हो चुका हो, तब! खुद शुद्धात्मा हो गया, यानी निष्पक्षपाती हो गया। 'मैं चंदूभाई हूँ' वहाँ पर पक्षपात है। खुद वकील, खुद जज और खुद ही अभियुक्त। फिर जजमेन्ट कैसा आएगा?

प्रश्नकर्ता : मैंने तो ऐसा निश्चित किया हुआ है कि मुझे यह सब चिंता करने की क्या ज़रूरत है? दादा की छत्रछाया है, फिर क्या?

दादाश्री : इससे तो सब कषाय घुस जाएँगे! वे समझेंगे कि यहाँ पर यह खोखला है! आपको पुरुष बनाया है अब। पुरुष नहीं बनाया हो, तब तक दादा हैं। अब तो पुरुषार्थ आपके हाथ में रख दिया है। दादा कभी ही, अड़चन के समय हाज़िर होते हैं, परंतु रोज़-रोज़ हाज़िर नहीं होते।

यह परमात्मयोग आपको दिया है। अब फिर से चूकना मत। किसी जन्म में नहीं मिले, ऐसा है यह। इस जन्म में ही हुआ है यह! यह ग्यारहवाँ आश्चर्य है इस काल का! यानी कि योग प्राप्त हो गया है। यह तो पुण्य से आपको योग मिल गया है, जिससे ऊपर तक देख आए हो, कुछ हद तक का तो सभी कुछ देख लिया है आपने और आपके लक्ष्य में है न कि क्या क्या देखा है आपने?

प्रश्नकर्ता : हाँ, है।

दादाश्री : और यह भट्ठी तो थी ही न? कहाँ नहीं थी? यह जूठन तो है ही न?

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा होने के बाद उसे दबाव क्यों घेर लेते होंगे?

दादाश्री : यह जो शुद्धात्मा प्राप्त हुआ है, वह आपके सभी कर्मों के *निकाल* करने के बाद प्राप्त हो तो कुछ भी अंदर पैठेगा नहीं। यह तो आपके बिना खपाए हुए कर्म अभी मौजूद है और यह प्राप्त हो गया है। मैं क्या कहता हूँ कि ऐसा प्राप्त होने के बाद इन कर्मों का *निकाल* कर दो झटपट। यह सब उधार चुका दो, नहीं तो आत्मा, शुद्धात्मा प्राप्त हुए बिना उधार चुक सके ऐसा कोई रास्ता था ही नहीं, यानी यह तो दिवालिया में से साहूकार होना है, यह उधार बहुत सारा है। और अब यदि भटक गए न, तो ८१,००० वर्षों तक भटकेंगे। इसलिए हम अभी उठा लेते हैं, तो जिस-जिसको यह योग प्राप्त हो जाए, वे सब लोग काम निकाल लें, नहीं तो स्लिप होने का काल है, फिसलनेवाला काल है। आपके उधार अपार है, उनके बीच आपको जागृत कर दिया। आपको जागृति बरतती है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : बरतती है।

दादाश्री : उस जागृति के उच्चतम शिखर पर बैठकर देखना चाहिए, अंदर कुछ भी हिला हो तो पता चल जाएगा कि अंदर क्या हिला? और वह अपने हित में है या अपना विरोधी है, वह तुरंत समझ जाना चाहिए।

पूरा जगत् खुली आँखों से सो रहा है, क्योंकि वह किसमें जागृत है? पैसों में, विषय में जागृत है। पूरा जगत् ताल बैठा-बैठाकर थक गया है, कुछ भी नहीं हो पाया। इसलिए मैं आपको क्या कहता हूँ कि सबकुछ 'व्यवस्थित' है, यानी कि आपका हिसाब है। उसे कोई बदल नहीं सकता। इसीलिए मेल बैठाने मत जाना। आप अपना काम करते रहो। 'व्यवस्थित' आपको सभी तरह की सहायता देता रहेगा।

अब माया दूर रहनी चाहिए। माया घुसनी नहीं चाहिए। यह तो छोटी-छोटी चीज़ें देकर, आपको अजगर की तरह निगल जाती है। जब कोई बड़ी घटना हो जाए, तभी आप शुद्धात्मा में जाते हो! यानी सभी चीज़ों में जागृती रहनी चाहिए। इसमें भूल हो जाए, तो वह नहीं चलेगा।

प्रश्नकर्ता : परंतु दादा, फिर से वह मार्ग से भटक नहीं जाना चाहिए न?

दादाश्री : भटक नहीं जाना चाहिए, परंतु माया अभी तक उसे परेशान करती है। माया कब तक परेशान करती है? तीन वर्षों तक। अब ये क्रोध-मान-माया-लोभरूपी माया तीन वर्ष तक अंडरग्राउन्ड रह सके वैसा है, और भूखी रह सके ऐसा है। हमने उसके हाथ की सत्ता खत्म करके आपके हाथ में सौंप दी, इसीलिए वे सब अंडरग्राउन्ड चले गए हैं। अब वे फिर से वापस आने की तैयारियाँ करते रहेंगे। अत: यदि तीन वर्षों तक यह योग रहे, दादा से दूर नहीं हो तो वे वापस नहीं पैठेंगे, चले जाएँगे। फिर 'सेफसाइड' हो जाएगी! फिर तो हमारी आज्ञा में आसानी से रहा जा सकेगा। हम जानते हैं कि ऐसा किसलिए होता है, इसलिए पहले से ही सचेत रहने को कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दैवीशक्ति और आसुरीशक्ति, दोनों हमेशा लड़ते ही हैं?

दादाश्री : हाँ, वे लड़ते ही हैं। परंतु उसमें आपको कृष्ण की तरह काम लेना चाहिए कि 'मैं तेरे पक्ष में हूँ।'

प्रश्नकर्ता : आप हमें सुदर्शन दे दीजिए न!

दादाश्री : सुदर्शन आपको दिया हुआ ही है। एक उँगली का नहीं परंतु दसों उँगलियों का दिया हुआ है। तो सभीकुछ काटकर एक घंटे में तो पूरा कौरववंश नाश कर दे ऐसा है!

मूल पुरुष की महत्ता

प्रश्नकर्ता : किसी योग्य व्यक्ति को आप अपनी शक्तियाँ देकर जाएँगे न?

दादाश्री : परंतु उसके आधार पर हमें क्या बैठे रहना है? वे देकर जाएँ, उसके बजाय तो जब तक हम हैं तब तक काम निकाल लो न! बाद में तो वारिस 'इन्टेलिजेन्शिया' होते हैं। वे मूल बात को आगे-पीछे कर देते हैं! इसलिए जब मूल पुरुष हों तब उनसे काम निकाल लेना चाहिए और उसके लिए संसार को एक ओर रख देना चाहिए!

ऐसा 'रियल' कभी ही होता है, वहाँ पर संपूर्ण पद प्राप्त होता है। वहाँ पर सच्ची आज़ादी मिलती है। भगवान भी *ऊपरी* नहीं, वैसी आज़ादी प्राप्त होती है।

पुरुष होने के बाद का पुरुषार्थ अर्थात्, एक बार दहाड़े तो कितने ही शेर और शेरनियाँ भाग जाएँ। परंतु ये तो पिल्ले भी मुँह चाट जाते हैं!

हम ज्ञान देते हैं, फिर वास्तविकता ओपन होती हैं। फिर खुद पुरुष बन जाता है। फिर आपको 'मैं परमात्मा हूँ' ऐसा भान होता है। हम पाप भस्मीभूत करवा देते हैं, दिव्यचक्षु देते हैं, इसलिए फिर सभी में परमात्मा दिखते हैं! अर्थात् ऐसा पद देने के बाद, परमात्मयोग देने के बाद आपको पाँच आज्ञा देते हैं।

यानी आपने परमात्मपद, परमात्मसुख सब देखा हुआ है। वह आपके लक्ष्य में है, तब तक आप वापस फिर असल स्टेज पर आ जाओगे। अतः फिर से ऐसा योग जमा लो, संसार का जो होना हो, वह हो। 'व्यवस्थित' के ताबे में सबकुछ सौंप देना है, और वर्तमान योग में ही रहना। भविष्य तो 'व्यवस्थित' के ताबे में है।

स्थूल पार करो, सूक्ष्मतम में प्रवेश करो

प्रश्नकर्ता : आपकी गैरहाज़िरी में एकाग्रता इधर-उधर हो जाती है, तब क्या करें?

दादाश्री : जब तक दादा खुद होते हैं, तब तक वे स्थूल हैं। स्थूल में से सूक्ष्म में जाना चाहिए। स्थूल तो मिला, परंतु अब सूक्ष्म में जाना चाहिए और दादा हाज़िर नहीं हों तब तो सूक्ष्म का ही प्रयोग शुरू कर देना चाहिए

और सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम में जाने का प्रयोग करना चाहिए। और आगे-पीछे तो होता ही नहीं है। रोज़-रोज़ यह रिकॉर्ड बजानी, वह क्या अच्छा कहलाता है?

यह जो परमात्मयोग मैंने आपको दिया है उस योग में, जितना हो सके उतने उस योग में ही रहो। आप खुद परमात्मा बनो, ऐसा योग दिया है! बीच में कोई रोक नहीं सकेगा और संसार की सारी रामायण पूरी होगी, अठारह व्यूह रचना का युद्ध जीत जाएँगे, क्योंकि शुद्धात्मा ही कृष्ण हैं और वे ही जितानेवाले हैं।

हमारी आज्ञा, वही 'हम' हैं, 'खुद' ही हैं। हमारी पाँच आज्ञा में रहने का प्रयत्न करो।

सामने आए हैं मोक्षस्वरूप

करोड़ों अवतारों में भी प्रकट नहीं हो, वैसे ये एक्सपर्ट मिले हैं, तो यहाँ पर आपका काम हो जाए, ऐसा है। यह तो 'मैं' केवलज्ञान में नापास हुआ, इसलिए आपके काम आया, मोनिटर के तौर पर!

यह आपका ही आपको दे रहा हूँ। ज्ञान तो आपका ही है। मेरा ज्ञान नहीं है। मैं तो निमित्त हूँ बीच में। यह आपका 'खुद का' ही ज्ञान है। अभी यह ठंडक बढ़ रही है, वह भी आपकी ही है। जागृति बढ़ती जाएगी, वह भी आपकी खुद की ही है। यह मेरी दी हुई जागृति नहीं है। यह सब आपका खुद का ही है!

यह थ्योरी ऑफ एब्सोल्यूटिज़म है! यह समझ में आता है आपको, नहीं समझ में आए तो ना कह दो। हमें जल्दी नहीं है। हम सब तो समझने के लिए बैठे हैं। हम किसी 'थ्योरी' को 'अडोप्ट' करने के लिए नहीं बैठे हैं। यह थ्योरी ऐसी नहीं है कि जो आपको अडोप्ट करवानी हो! 'सच्ची बात' 'समझ' में आ जाए, वही अपनी थ्योरी!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

शाता : सुख-परिणाम
अशाता : दुःख-परिणाम
पुद्गल : जो पूरण और गलन होता है
पूरण-गलन : चार्ज होना-डिस्चार्ज होना
लागणी : भावुकतावाला प्रेम, लगाव
निकाल : निपटारा
ऊपरी : बॉस, वरिष्ठ मालिक
उपाधि : बाहर से आनेवाले दुःख
राजीपा : गुरुजनों की कृपा और प्रसन्नता
अजंपा : बेचैनी, अशांति, घबराहट
दुभना : आहत होना
निर्जरा : आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना
चीकणी फाइल : गाढ़ ऋणानुबंधवाले व्यक्ति अथवा संयोग
अबंध : बंधन रहित
गारवरस : संसारी सुख की ठंडक में पड़े रहने की इच्छा
गुंठाणे : ४८ मिनट्स
वळगण : बला, पाश, बंधन
चीकणी : गाढ़
आड़ाई : अहंकार का टेढ़ापन
ठपका : उलाहना
अटकण : जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे
तंतीली : तीखी, चुभनेवाली
उद्दीरणा : भविष्य में फल देनेवाले कर्मों को समय से पहले जगाकर वर्तमान में खपाना
आमळे चढ़ना : विचारों का बवंडर उठना, बहुत विचार आने से अभाव होना
गलगलिया : वृत्तियों को गुदगुदी होना

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरुष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. अंत:करण का स्वरूप
६. जगत कर्ता कौन ?
७. भुगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. मैं कौन हूँ ?
१४. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
१५. मानव धर्म
१६. सेवा-परोपकार
१७. त्रिमंत्र
१८. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
१९. दान
२०. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
२१. दादा भगवान कौन ?
२२. सत्य-असत्य के रहस्य
२३. प्रेम
२४. अहिंसा
२५. प्रतिक्रमण
२६. पाप-पुण्य
२७. कर्म का विज्ञान
२८. चमत्कार
२९. वाणी, व्यवहार में...
३०. पैसों का व्यवहार
३१. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
३२. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
३३. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य
३४. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
३५. क्लेश रहित जीवन
३६. गुरु-शिष्य
३७. आप्तवाणी - १
३८. आप्तवाणी - ३
३९. आप्तवाणी - ४
४०. आप्तवाणी - ५
४१. आप्तवाणी - ६
४२. आप्तवाणी - ८

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी ५५ पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज : त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद- कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421. फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org

अहमदाबाद : दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408

राजकोट : त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9274111393

भुज : त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123

गोधरा : त्रिमंदिर, भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300

वडोदरा : दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : (0265) 2414142

मुंबई	: 9323528901	**दिल्ली**	: 9310022350
कोलकता	: 033-32933885	**चेन्नई**	: 9380159957
जयपुर	: 9351408285	**भोपाल**	: 9425024405
इन्दौर	: 9893545351	**जबलपुर**	: 9425160428
रायपुर	: 9425245616	**भिलाई**	: 9827481336
पटना	: 9431015601	**अमरावती**	: 9823127601
बेंगलूर	: 9590979099	**हैदराबाद**	: 9989877786
पूना	: 9860797920	**जलंधर**	: 9463542571

U.S.A. : **Dada Bhagwan Vignan Institute** :
100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606
Tel. : +1 877-505 (DADA) 3232 ,
Email :info@us.dadabhagwan.org

U.K. :	+44 (0) 330 111 DADA 3232	**UAE**	: +971 557316937
Kenya	: +254 722 722 063	**Singapore**	: +65 81129229
Australia	: +61 421127947	**NZ**	: +64 21 0376434

Website : www.dadabhagwan.org

आप्तवाणी, तमाम धर्मों का सार!

आप्तवाणी की ख्याति दिनोंदिन बहुत बढ़ेगी। पूरे जगत के खुलासे इस में से मिलेंगे। सभी धर्म इन में से प्राप्ति करेंगे, यानी इन आप्तवाणियों में से ये ही लोग तत्व निकाल लेंगे, इसी की ज़रूरत है।

आप्तवाणी पढ़कर तो कितने ही लोग कहते हैं कि हमें और कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। यानी इन आप्तवाणियों से ही चलेगा सब कुछ। अपनी पुस्तकें लोगों को बहुत हेल्प करेंगी।

इसलिए सभी से कहा है कि एक बार पुस्तकें छपवा दो। छप गई न, अब उन पर से लोग और छापेंगे, परंतु अब यह खो नही जाएगा। ये बातें खोएँगी नहीं अब।

\- दादाश्री

आत्मविज्ञानी 'ए. एम. पटेल' के भीतर प्रकट हुए

दादा भगवानना
असीम जय जयकार हो